CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सांख्य

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीशङ्करभगवत्पूज्यपादविरचिता

# सौंदर्य लहरी

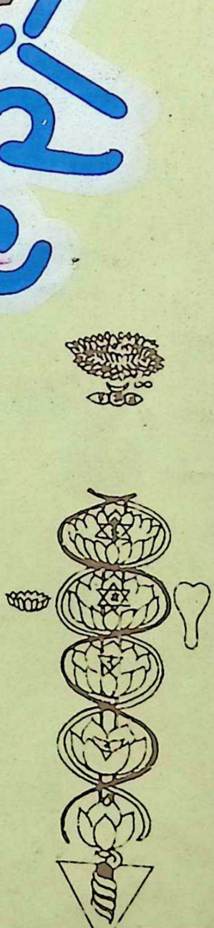

लक्ष्मीधरदेशिकविरचितया लक्ष्मीधराख्यया

व्याख्यया संहिता

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

# सौन्दर्य - लहरी

लक्ष्मीधर देशिक विरचितया लक्ष्मीधराख्यया
व्याख्यया संहिता

मूल्य– २० रुपियाँ

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकाशकः—

श्री पीताम्बरापीठ संस्कृत परिषद दतिया (म. प्र.)

संवत २०४६
जनवरी १९९०
१००० प्रतियाँ

मुद्रकः—

शिवशक्ति प्रेस प्रा. लि., ग्रेट नाग रोड, नागपुर-९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

# प्रकाशकीय

सौन्दर्य लहरी ग्रंथ में परम्परागत नखशिख वर्णन न होते हुए इसके विपरीत शिर से नख तक का वर्णन किया गया है। वास्तव में यह कुण्डलिनी का विषय है। श्रीयन्त्र का पूजन अबतक उपलब्ध पद्धतियों के अनुसार कौलाचार पद्धतिसे किया जाता है जो सन्यासियों का विषय है। गृहस्थों का इसमें अधिकार नहीं होता। पूज्यपाद श्री स्वामीजी महाराज ने 'समयाचार' विषय पर जो मत प्रकट किया है वह लेख संग्रह नामक पुस्तक में एवं चण्डी पत्रिका में 'समयाचार' नाम से प्रकाशित हुआ है। अत्यन्त महत्वपूर्ण इस लेख को जाने बिना 'सौन्दर्य लहरी' को वास्तविक रूप में समझना बड़ा कठिन है। अतः यह लेख इस पुस्तक में प्रकाशित किया जा रहा है।

'सौन्दर्य लहरी' प्रकाशन का यह एक महत्वपूर्ण कारण है। प्रस्तुत ग्रन्थ में सौन्दर्य लहरी के प्रतिश्लोक की दिव्य शक्ति को प्रकट करने वाले एक सौ एक संख्यातमक यन्त्रों का भी समावेश किया गया है। प्रत्येक यन्त्र की उपासना विधि एवं फलस्तुति भी जिज्ञासुओं के लिए प्रस्तुत की गई है। लक्ष्मीधरी टीका 'सौन्दर्य लहरी' के मर्म को सरल करने में तांत्रिक वाङमय में सर्व श्रेष्ठ मानी जाती है।

शाक्त सम्प्रदाय और और भक्तजन प्रस्तुत संस्करण से अपनी साधनापूर्ति में एक अभिनव प्रसाद मानकर इससे उपलब्ध तत्त्व को ग्रहण करेंगे और सत् चित् आनन्द अनुभव कर सकेंगे, ऐसा विश्वास है।

विनीत

**सूर्यदेव शर्मा**

**मंत्री**

श्रीपीताम्बरापीठ दतिया (म. प्र.)

वसन्त पञ्चमी

३१ जनवरी १९९०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

# विषयानुक्रमणिका


१) सौन्दर्य लहरी — १ - २०६

२) बीजाक्षर युक्त यंत्र — २०७ - २६२

३) भावनोपनिषद् — २६३ - २८४

४) देवीस्तोत्र पंचकम् — २८५ - ३०१


Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

# समयाचार

सं० टिप्पणीः– (समय मत की शाक्तों के बीच प्रायः चर्चा होती रहती है परन्तु वह क्या है, इसकी मीमांसा यथाविधि करने में बहुत कम लोग समर्थ होते हैं। या यह कहें कि जिज्ञासुओं का परितोष चर्चा करने वाले नहीं कर पाते। इसी से श्रीमान् स्वामी जी से प्रार्थना की गई और आपने कृपा पूर्वक इस लेख में समय मत का पूर्णरूप से विवेचन किया है। आपका यह लेख अपने विषय का सर्व प्रथम तो है ही विशेष रूप से ज्ञातव्य भी है। हमें विश्वास है कि इस महत्व पूर्ण लेख को पढ़कर जिज्ञासुओं का समाधान ही नहीं होगा अपितु उनका परितोष होगा। सम्पादक "चण्डी")

'समय' शब्द अनेकार्थ का वाचक है। शाक्त साधना में प्रसिद्ध आचार-विशेष को ललिता सहस्र नाम के भाष्य में श्री भास्कर राय ने "समयाचार तत्परा" इस नाम की व्याख्या में इस प्रकार बताया है-- दहराकाश में चक्र की भावना कर पूजादि को समय कहते हैं। उसके प्रतिपादक वसिष्ठ, शुक्र, सनक, सनन्दन और सनत्कुमार संहिता नाम वाले पंचतन्त्र ग्रंथों को भी 'समय' कहते हैं। उनमें कहे हुए आचार को 'समयाचार' कहते हैं। अथवा साम्य को प्राप्त जो हो उसे भी 'समय' कहते हैं। शिवशक्ति के साम्य-भाव को भी 'समय' कहते हैं। इस प्रकार 'समय' शिव एवं 'समया' श्री भगवती को कहते हैं। शिवशक्ति का यह परस्पर का साम्य पाँच प्रकार का है– १ अधिष्ठान साम्य, २ अनुष्ठान साम्य, ३ अवस्थान साम्य, ४ नाम साम्य और ५ रूप साम्य। अधिष्ठान साम्य पूजाधिकरण चक्रादि, अनुष्ठान साम्य सृष्ट्यादिकृत, अवस्था साम्य नृत्यादि क्रिया, नाम साम्य भैरवादि रूप साम्य आरुण्यादि के नाम से प्रसिद्ध है। रुद्रयामल तन्त्र के दश पटलों में उपदिष्ट आचार को भी "समयाचार" कहते हैं। षडविधि, ऐक्यानुसंधान रूप महावेध संस्कार में भी सहस्रदल कमल में गई हुई शक्ति के पुनः आधार कमल में आने तक के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रतीक्षा काल को भी "समयाचार" कहते हैं। (ल० श्लो० ८८) ललिता त्रिशती में "सनकादिमुनि ध्येया" इस नाम से भी 'समयाचार' का ग्रहण है और "कुलकुण्डालया-कौल मार्ग तत्पर सेविता" (ल० श्लो० १४४) के भाष्य में इस प्रकार कहा गया है– अथवा समयमत, कौलमत और मिश्रमत–ये तीन मत श्री विद्या की उपासना में माने जाते हैं, शुक वसिष्ठादि संहिता पंचक में कहा हुआ वैदिक मार्ग युक्त आचार समय मत कहा जाता है। चन्द्रकुलादि आठ तन्त्रों में प्रतिपादित मिश्र मत है क्योंकि ये तंत्र कुल और समय दोनों मतों का अनुसरण करते हैं। इनसे भिन्न कौलमार्ग है जिसका उपदेश कुलमार्ग-प्रतिपादित तन्त्र ग्रन्थों में श्री भगवान शिव ने श्री देवी को किया है। समयाचार नाम का एक तन्त्र ग्रन्थ भी उपलब्ध है। उसमें पूजा संकेत को भी समय कहा है। विजयादि द्रव्यों के ग्रहण को भी समय पद से कहा गया है। इस प्रकार 'समय' शब्द अनेकार्थवाची है। यहाँ पर पंच संहितोक्त समयाचार ही अभिप्रेत है। कौलाचार सम्बन्धी लेख तो 'चण्डी' में साधकगण अधिकतर लिखा करते हैं परन्तु समयाचार के विषय में कदाचित् अभी तक नहीं लिखा गया। इसलिए श्री पं. रमादत्त जी शुक्ल भूतपूर्व सम्पादक 'चण्डी' के विचारानुसार 'चण्डी' में समयाचार पर भी कुछ लिखा जाना चाहिए ऐसा उन्होंने मुझे लिखा है। एतदर्थ उपलब्ध कुछ सामग्री के आधार पर ही यहाँ लिखने का प्रयत्न किया जा रहा है।

समयाचार के आधार भूत पंच शुभागम इस समय उपलब्ध नहीं है। सौन्दर्यलहरी की लक्ष्मीधरी टीका में इस विषय के जो प्रमाण उपलब्ध हैं; उन्हीं के आधार पर यह लेख लिखा जा रहा है। वेदान्तसूत्रों के शक्ति भाष्य के प्रथमाध्याय में समयमत का भी प्रतिपादन किया गया है। उसमें भी प्रमाण वही दिए गए हैं, जो सौन्दर्यलहरी की लक्ष्मीधरी टीका में है। श्री पुराण संहिता में सनत्कुमार संहिता का भी एक प्रकरण दिया गया है तथापि उक्त आगम से यह भिन्न ही है। आचार्य श्री गौडपाद स्वामी के ग्रंथ सुभगोदय को लक्ष्य कर आचार्य श्री शङ्कर भगवत्पाद ने सौन्दर्यलहरी की रचना की है। इसलिए इस विषय (समयाचार) का प्रामाणिक आधार इस समय सौन्दर्यलहरी की टीका लक्ष्मीधरी ही है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri


विषय निर्देशः—

सौन्दर्यलहरी के आठवें श्लोक की टीका में श्री लक्ष्मीधर नें समय-मत का निर्देश इस प्रकार किया है—'समय मत के पारदृश्वा भगवान शङ्कराचार्य समय रूपा भगवती की स्तुति करते हैं। समयाचार अन्तर पूजा को कहते हैं और कौलाचार बाह्य पूजा का नाम है।'

श्री चक्रपूजा के द्वारा ये दोनों पूजाएं होती हैं। वियत पूजा भी इसे कहते हैं। दहराकाश एवं बाह्याकाश में ये अनुष्ठित होती हैं। बाह्याकाश का अर्थ भूर्जपत्र, शुद्धपट्ट, स्वर्णपट्ट, रजतस्फटिकादि पर यन्त्र अङ्कित कर आराधन करने का है। इसे ही कौल पूजा कहते हैं। हृदयाकाश में चक्रपूजा का नाम समय पूजा है। यह समय पूजा हृदयाकाश एवं सहस्रदल में भी होती है तथा भिन्न भिन्न कामनाप्रयुक्त साधक अन्य चक्रों में भी पूजन करते हैं। हृदय कमल में समाराधित भगवती सभी ऐहिक फलों को प्रदान करती हैं तथा वशिनी आदि योगिनियों के साथ पूजने से विद्या की प्राप्ति होती है। हृदयकमल में ही ऐहिक फलों की प्राप्ति के लिए होम, तर्पण भी करना चाहिए इत्यादि समयाचार के साधकों के लिए ऐहिक और पारलौकिक फल साधना के लिए आन्तरिक पूजा ही कर्तव्य है। कौलमत में आधार चक्र में त्रिकोण मध्यवर्ती बिन्दु में शक्ति की पूजा होती है। कौल-साधक नित्य बिन्दु त्रिकोण की ही पूजा करते हैं। यह पूजा दो प्रकार की हैं। पहली श्री चक्रान्तर्गत नवयोनि के बीच में योनिरूपा तथा प्रत्यक्ष सुन्दरी शक्ति की योनि पूजा का रूप दूसरा प्रकार है। पहली पूजा सुवर्णस्फटिक आदि पट्ट पर श्री यन्त्र अङ्कित-कर करते हैं। वे पूर्व कौल तथा दूसरे उत्तर कौल के नाम से कहे जाते हैं। ये दोनों योनि पूजन बाह्य हैं, आन्तरिक नहीं। इसलिए कौलों के पूजन को बाह्य पूजन ही कहते हैं। मिश्र कौल पूजन बाह्य आन्तरिक दोनों ही होता है। आधार चक्र में स्थित कुल कुण्डलिनी का पूजन करने से इन्हें कौल एवं भगवती को कौलिनी कहते हैं। प्रत्यक्ष मपञ्चक इस पूजन में लगते हैं। समय मत में मानसिक मपञ्चक लगते हैं, जिन्हें इस प्रकार बताया गया है—सहस्रार से निकली हुई सुधा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

का पान मद्य, काम-क्रोधादि पशुओं को ज्ञान खड्ग से मार कर उनका मांस-भक्षण ही मांस है, इन्द्रिय-निरोध मत्स्य आशा-तृष्णादि की मुद्रा; मन का सुषुम्णा के साथ योग ही मिथुनी भाव है। सव्य मार्ग में मपञ्चक मनन, मन्त्र, मौन, मन और मुद्रा के नाम से माने जाते हैं। सव्यमार्गी अनुकल्प से भी पूजा करते हैं। शक्ति पूजा में मपञ्चक स्वीकार आवश्यक है क्योंकि ब्रह्मानन्द की व्यक्ति इनसे ही होती है; कल्पसूत्र में कहा है--'आनन्दं ब्रह्मणोरूपं तच्च देहे व्यवस्थितं तस्याभिव्यञ्जकाः पंचमकारास्तैरर्चनं गुप्त्या प्राकट्यान्निरयः।' (प० स० १३) आनन्द के अभिव्यंजक पञ्चमकारों का प्रयोग गुप्त रीति से होना चाहिए, प्रकट नहीं क्योंकि प्रकट करने से नरक की प्राप्ति होती है। प्रकट मपञ्चक प्रयोग को समय मतवाले तथा वैष्णवादि सर्वथा हेय मानते हैं एवं अवैदिकाचार बताते हैं तथापि यह बात ऐसी नहीं है। 'परिश्रुतं झषमाद्यं पलं च' इत्यादि त्रिपुरामहोपनिषद् की १२ वीं ऋचा में स्पष्टतया ग्रहण किया गया है। लक्ष्मीधर ने मपञ्चक की बड़ी कड़ी आलोचना की है। सव्य मत वाले वैष्णवों, समयाचारियों तथा कौलों का विरोध बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। वैदिक काल में भी इसका प्रमाण मिलता है। ऋग्वेद में कहा है- 'न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दनाः शविष्ठवेद्याभिः। सशर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गु ऋतं नः।' (ऋ० सं० ५-३-३-५) अर्थात् हे इन्द्र ! राक्षस हमारी हिंसा तथा हमारी प्रजा को हमसे पृथक् न करें। विषम प्राणियों को शासन में रखने वाले आप (इन्द्र) उत्साह करें। 'शिश्नदेवाः' योनि पूजक अब्रह्मचर्यव्रत वाले हमारे यज्ञों में न आवें। इस मन्त्र में 'शिश्नदेवाः' पद उत्तर कौलों के लिए ही व्यवहृत हुआ है। शिश्नपद सामान्यतः पुरुष चिन्ह के लिए ही व्यवहृत होता है तथापि श्री मुकुन्द शर्मा बक्शी की निरुक्त, विवृत्ति में स्त्री-पुरुष चिन्हों के लिए इसे एकसा ही माना गया है। विदेशी वैदिक पण्डितों ने इस शिश्नदेवा शब्द के अर्थ में बहुत ही गड़बड़ी कर दी है। तथापि यास्काचार्य नें 'शिश्नदेवा अब्रह्मचर्याः' ऐसी व्याख्या कर स्पष्ट कर दिया है कि शिश्नदेवा सस्त्रीक पूजन करने वाले ही थे, जिन्हें दूसरे पक्ष वाले अपने यज्ञों एवं उत्सवों में आना अच्छा नहीं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मानते थे। यही विरोध पौराणिक काल में शिव के विरुद्ध यज्ञ कर दक्ष प्रजापति ने बहुत ही भयानक रूप में परिणत कर दिया। प्रत्यक्ष मपञ्चक-ग्रहण को लक्ष्य कर ही इस आचार में दोषारोपण करने का अवसर मिला है। तथापि यह आचार अवैध नहीं है, इसे अवैध मानने से बहुत से विधि वाक्यों का परित्याग करना होगा और ऐसा होना अनिष्ट है। बहुत से वैदिक यज्ञों में इस प्रकार के आचारों का उल्लेख है। ब्राह्मण सूत्र ग्रन्थ एवं पूर्वमीमांसा तथा उपनिषदों में भी इसकी वैधता स्वीकृत है, केवल इन्द्रिय लौल्यवश साधना के बहाने जो मपञ्चक का सेवन है, वह अवश्य ही निन्दनीय है।

## श्री चक्र राज

श्री विद्योपासना में श्री चक्र का अर्चन एक बहुत ही महत्व का विषय है। मन्त्र देवता की आत्मा एवं मन्त्र को देवता का शरीर माना जाता है इसके लिखने की रीति निम्नस्तोत्र पद्य में इस प्रकार बताई गई है– "विन्दु त्रिकोण वसुकोणदशारयुग्मं मन्त्रस्त्रनागदलशोभित षोडशारम्। वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च श्रीचक्रमेतदुदितं पर देवतायाः" ॥

अर्थात् बिन्दु त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार, बहिर्दशार, चतुर्दशदल, अष्टदल, षोडशदल, वृत्तत्रय, चतुर्द्वारयुक्त भूपुर-यहीं नवावरण-युक्त श्री चक्र का स्वरूप है। श्रीं चक्र का लेखन कई प्रकार से होता है। यह एक अति गहन विषय है। यहाँ पर संक्षेप में समय एवं कौल मत की लेखन रीति तथा पूजन-क्रम का ही निर्देश किया जाएगा। सृष्टिक्रम की पूजा समय मत की है तथा संहार-क्रम कौलों का है। बिन्दु में पर देवता के पूजन के बाद त्रिकोण, अष्टकोण दोनों दशार, चतुर्दशदल, अष्टदल, षोडशदल तथा भूपुर के क्रम से पूजन को समयपूजन कहते हैं। विन्दु त्रिकोण के पूजन के बाद त्रैलोक्य-मोहनचक्र, भूपुर-पूजन, षोडशदल, अष्टदल, चतुर्दशदल, दोनों दशार, अष्टकोण, त्रिकोण पश्चात् बिन्दु के पूजन को संहारक्रम का पूजन कहते हैं। यह कौलाचारी साधकों को अभिमत है। बिन्दु से आरम्भ कर वाह्य विस्तार की ओर समय एवं बाहर से अन्दर विन्दु

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

की ओर का पूजन संहार कहलाता है। शिव के चार त्रिकोण और पाँचशक्ति के त्रिकोणों के मिलने पर नव प्रकृतिभूत इन त्रिकोणों से तेंतालिस कोणों वाला तथा अष्टदल, षोडशदल, वृत्तत्रय एवं भूपुर के साथ श्री चक्र बनता है, जो बिन्दु त्रिकोणादिश्लोक से स्पष्ट है। यहां केवल यही समझ लेना है कि समय मत में शक्ति के पाँचों त्रिकोण ऊर्ध्वमुख होते हैं और शिव के त्रिकोण अधोमुख लिखे जाते हैं कौलमत में इससे विपरीत है। शक्ति के पाँचों त्रिकोण अधोमुख एवं शिव के चारों त्रिकोण ऊर्ध्वमुख होते हैं। इन त्रिकोणों के मिलने पर नवचक्रात्मक शिव एवं शिवा का शरीरभूत श्री चक्र बनता है। त्रिकोण, अष्टकोण, दोनों दशार तथा चतुर्दशार शक्ति चक्र कहे जाते हैं। बिन्दु, अष्टदल पद्म, षोडशदल पद्म, चतुरस्र-ये क्रम से शिव चक्र कहे जाते हैं। त्रिकोण में बिन्दु, अष्टार में अष्टदल, दशार में षोडशार और भूपुर में चतुर्दशदल का सम्बन्ध है। जो शैव और शाक्त चक्रों के इस प्रकार के परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध को जानता है, वही यथार्थ चक्रविद है।

१ प्रथम बिन्दुचक्र सर्वानन्दमय, २ सर्वसिद्धिप्रद, ३ सर्वरक्षा कर ४ सर्व रोगहर, ५ सर्वार्थ साधक, ६ सर्व सौभाग्यदायक, ७ सर्व संक्षोभण, ८ सर्वाशापरिपूरक, ९ त्रैलोक्यमोहन नाम से व्यवहृत होते हैं। १ बिन्दु में परादेवता की पूजा, २ त्रिकोण में पीठत्रय कामरूप, पूर्णगिरि जालन्धर तथा बीच में ओड्याण का ग्रहण है। त्रिकोण की अधिष्ठात्री देवी कामेश्वरी वज्रेश्वरी और भगमालिनी हैं। इसी से सम्बन्धित दिव्यौघ, सिद्धौघ, मानवौघ गुरुओं का पूजन भी है। ३ अष्ट त्रिकोणों की अधिष्ठात्री वशिनी, कामेश्वरी, मोहिनी, विमला, अरुणा, जयिनी, सर्वेश्वरी तथा कौलिनी हैं। शीत-उष्ण, सुख-दुःख, इच्छा-सत्य, रजः, तमोगुण की क्रम से ये सब स्वामिनी है। गुणातीत, गुणाधिपत्य इनकी साधना से प्राप्त होता है। ४ इस चक्र में सर्वज्ञा, सर्वशक्तिप्रदा सर्वैश्वर्यप्रदा, सर्व ज्ञानमयी, सर्व व्याधिनाशिनी, सर्वाधारा, सर्व पापहरा सर्वानन्दमयी, सर्वरक्षा तथा सर्वेप्सितफलप्रदा शक्तियाँ हैं। रेचक, पाचक, शोषक, दाहक, प्लावक, क्षारक, उद्धारक, क्षोभक, जृम्भक तथा मोहक अग्नि की दशकलाओं की ये अधिष्ठात्री हैं। ५ इस चक्र की शक्तियों के नाम सर्वसिद्धिप्रदा, सर्वसम्पत् प्रदा,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वप्रियंकरी, सर्वमङ्गल कारिणी, सर्वकाम प्रदा, सर्वदुःख विमोचिनी, सर्व मृत्यु प्रशमनी, सर्व विघ्न निवारिणी, सर्वाङ्ग सुन्दरी तथा सर्व सौभाग्यदायिनी है। दश प्राणों की ये अधिष्ठात्री हैं।

६ इस चक्र में चौदह नाड़ियों की शक्तियों का पूजन होता है। नाडियों के नाम-अलम्बुसा, कुहू, विश्वोदरी, हस्तिजिह्वा, वासणाय-शोवती, पयस्विनी, गान्धारी, पूषा, शङ्खिनी, सरस्वती, इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना हैं। क्रम से सर्व संक्षोभिणी, सर्व विद्रावणी, सर्वकर्षिणी, सर्वाह्लादिनी, सर्व सम्मोहिनी, सर्वस्तंभिनी, सर्व जृंभिनी, सर्व वशंकरी सर्व रञ्जिनी, सर्वोन्मादिनी, सर्वार्थ साधिनी, सर्व संपत्तिपूरणी, सर्व मन्त्रमयी तथा सर्वद्वन्द्व क्षयंकरी योगिनियाँ हैं। ७ इस चक्र में वचन, आदान, गमन, विसर्ग, आनन्द, हान, उपादान तथा उपेक्षा बुद्धि के द्योतक हैं। इनकी आठ शक्तियों के नाम अनङ्ग कुसुमा, अनङ्ग मेखला, अनङ्गमदना, अनङ्गमदनातुरा, अनङ्ग रेखा, अनङ्ग वेगिनी, अनङ्गमदनांकुशा तथा अनङ्गमालिनी हैं।

८ इस चक्र में षोडश दल पद्म हैं। मन, बुद्धि, अहङ्कार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, चित्त, धैर्य, स्मृतिनाम-वार्धक्य, सूक्ष्म शरीर जीवन तथा स्थूल शरीर से सम्बन्धित हैं। इनकी षोडश शक्तियाँ हैं-कामाकर्षिणी, बुद्ध्याकर्षिणी, अहङ्काराकर्षिणी, शब्दाकर्षिणी, रूपाकर्षिणी, रसाकर्षिणी, गन्धाकर्षिणी, चित्ताकर्षिणी, धैर्याकर्षिणी, स्मृत्याकर्षिणी, नामाकर्षिणी, बीजाकर्षिणी, आत्माकर्षिणी, अमृताकर्षिणी तथा शरीराकर्षिणी। ९ इसे भूपुर कहते हैं। इसमें तीन रेखाएँ हैं। चौकोन इसका स्वरूप है। इसमें दश मुद्रा शक्तियाँ, दश दिक्पाल, आठ मातृकायें तथा दश सिद्धियां हैं जिनके नाम क्रमशः ये हैं- सर्व संक्षोभिणीं, सर्व विद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्व वशंकरी, सर्वोन्मादिनी, सर्व महांकुशा, खेचरी, सर्वबीजा, सर्व योनि, सर्व त्रिखण्डा-ये दश मुद्राएँ हैं। इन्हें प्रकट योगिनी भी कहते हैं। इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, अनन्त और ब्रह्मा- ये दश दिक्पाल हैं। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा और महालक्ष्मी- ये अष्टमातृकाएं हैं। लघिमा, महिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राकाम्य, भुक्ति, इच्छा,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
प्राप्ति और सर्वकाम–ये अष्ट सिद्धियाँ कहलाती हैं। इनके पूजन से काम-क्रोधादि का अभाव तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। क्रम से श्री भगवती महात्रिपुर सुन्दरी ही, जो बिन्दु-त्रिकोण-चक्रेश्वरी हैं, इन नवों चक्रों के देवताओं के साथ तादात्म्य प्राप्त कर भिन्न-भिन्न चक्रों की अधीश्वरी के नाम से कही जाती हैं। इनके नाम समय पूजा क्रम से इस प्रकार हैं--१ महात्रिपुर सुन्दरी, २ त्रिपुराम्वा, ३ त्रिपुरसिद्धा, ४ त्रिपुर मालिनी, ५ त्रिपुरा श्री, ६ त्रिपुरवासिनी, ७ त्रिपुर सुन्दरी, ८ त्रिपुरेशी, ९ त्रिपुरा। श्री चक्र के तीन प्रस्तार हैं– मेरु प्रस्तार, कैलाश प्रस्तार और भू प्रस्तार। षोडश नित्याओं के साथ श्री भगवती के तादात्म्य को मेरु और मातृका वर्णों के साथ तादात्म्य को कैलाश एवं वशिनी आदि वाग्देवताओं के साथ तादात्म्य को भू प्रस्तार कहते हैं। अति संक्षेप में यह चक्रराज का परिचय है। चक्रोक्त देवताओं के मन्त्र आदितन्त्रराज, दक्षिणामूर्ति संहिता, श्री विद्यार्चन पद्धति आदि श्री विद्या के ग्रन्थों में दिये गए हैं। यहां तो केवल समयाचार के प्रसङ्ग में श्री चक्र का स्वरूप मात्र निर्दिष्ट किया गया है और इसीलिए श्री चक्र की चर्चा भी की गई है।

## समय साधन–क्रम

परम तत्व स्वरूपिणी श्री भगवती का आराधन समयाचार के अनुसार मस्तक में स्थित सहस्र दल कमल में जो विन्दु स्थान है उसमें होता है। उसे पूर्ण चन्द्र मण्डल व सुधा-सिन्धु के नाम से भी योगियों ने कहा है। उसी में श्री चक्र का न्यास कर उक्त पूजा की जाती है। उसकी कला चिन्मयी आनन्द-रूप आत्म स्वरूपिणी है। उसे ही महात्रिपुर सुन्दरी कहते हैं। उसकी षोडश कलायें हैं। इसीलिये षोडशी भी कहते हैं। १५ कलायें तिथि रूप हैं, जो तिथि क्रम से घटती वढ़ती रहती हैं। षोडशी कला सच्चिदानन्द रूपिणी एक रस नित्य है। कहा है–

"दर्शाद्याः पूर्णिमान्ता च कलाः पञ्चदशैव तु।
षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी॥"

मातृका के षोडश स्वरों के साथ क्रम से प्रत्येक कला का योग कर ध्यान, चिंतन, पूजन किया जाता है। प्रत्येक तिथि के साथ
Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

इनका पूजन इस प्रकार किया जाता है– प्रतिप्रदा को त्रिपुर सुन्दरी, द्वितीया को कामेश्वरी, तृतीया को भगमालिनी, चतुर्थी को नित्यक्लिन्ना, पञ्चमी को भेरुण्डा, षष्ठी को वह्निवासिनी, सप्तमीं को वज्रेश्वरी, अष्टमी को रौद्रीं, नवमी को त्वरिता, दशमी को कुल सुन्दरी, एकादशी को नीलपताका, द्वादशी को विजया, त्रयोदशी को सर्वमङ्गला, चतुर्दशी को ज्वालामालिनी, पञ्चदशी को मालिनी। कृष्ण पक्ष में प्रतिलोम क्रम से पूजन होता है। उक्त क्रम शुक्ल पक्ष का है। षोडशवें स्वर 'अः' के साथ नित्य षोडशी कला रूप मूल विद्या का सभी तिथियों में पूजन किया जाता है। कौलमत में प्रतिदिन एक ही नित्या की पूजा की जाती है। समयमत में सभी का पूजन नित्यप्रति किया जाता है। इन नित्याओं का विशुद्धि चक्र स्थान है। वहीं पंचदश स्वरों का न्यास किया जाता है। सोलहवाँ "अः" स्वर सहस्रार में विन्दु स्थान में है। तथापि उसका प्रतिबिम्ब विशुद्धि चक्र में होने से कण्ठ में षोडश स्वरों का न्यास माना जाता है। अनाहत में ककार से लेकर ठकार पर्यन्त वर्णों का न्यास द्वादश सूर्य रूप से है। मणिपूर में डकार से आरम्भ कर फकार पर्यन्त आग्नेय वर्ण माने जाते हैं। स्वाधिष्ठान में बकार से लेकर ळकार पर्यन्त है। उन्हें मिश्र कहते हैं। 'व श ष स' ये वर्ण मूलाधार में हैं।

इसे अन्ध तामिस्र कहते हैं। प्रकाश शून्य होने से यह तामिस्र-लोक है। उक्त विषय को इस प्रकार कहा गया है–

'षोडशेन्दोः कलाभानोर्द्विर्द्वादशदशानले। पञ्चाशदात्मिका ज्ञेया मातृका चक्ररूपिणी।'

पञ्चाशत् मातृका स्वरूप मन्त्र, देवता श्री चक्र में इस प्रकार संगत होता है–

'त्रिखण्डो मातृका मन्त्रः सोम सूर्यानलात्मकः।'

जिस प्रकार मातृका चन्द्र, सूर्य, अग्निरूपात्मक तीन खण्डों में विभक्त है, उसी प्रकार श्री विद्या का मन्त्र पञ्चदशी कादि, हादि, सादि, त्रिकूट स्वरूप वाला भी त्रिरूप में विभक्त है। कादिकूट अग्निस्वरूप, हादि सूर्यरूप एवं सादि चन्द्रस्वरूप है। इन्हीं त्रिकूटों में रुद्र, विष्णु और ब्रह्म ग्रन्थियाँ भी क्रम से मानी जाती हैं। अग्नि की

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri
१०८ कलायें, सूर्य की ११३, और चन्द्र की १३६ कलायें हैं। कुल १६० कलायें संवत्सररूप हैं। यही कलायें अपने अपने अधिकृत षट्चक्रों को आवृत किये हुए हैं। श्री चक्र का समन्वय षट्चक्रों में इस प्रकार माना जाता है– सहस्रदल कमल प्रकाशमय नित्याकला युक्त चन्द्र बिम्ब ही श्री चक्र है सादाख्या कला श्री सदाशिव के साथ ध्येय हैं। वही बिन्दु है। त्रिकोण आधार चक्र में अष्ट कोण स्वाधिष्ठान में, दशार मणिपूर में, द्वितीय दशार अनाहत में, चतुर्दशार विशुद्धि में, शिवचक्र, चतुष्टय आज्ञा में, बिन्दु स्थान चतुरस्र सहस्र कमल में अन्तर्भूत है। इस प्रकार षट्चक्र का श्री चक्र के साथ ऐक्य है। मन्त्र और श्री चक्र की एकता इस प्रकार है–– तीनों "ह्रीं" तथा षोडशी का 'श्री' वीज शिव चक्र चतुष्टयात्मक त्रिकोण में विन्दु रूप से अन्तर्भूत हैं। प्रथम कूट के आदिम ककार और सादि कूट के अन्तिम लकार से कलारूप सभी मातृका वर्णों का ग्रहण है। जिसे अक्षमाला कहते हैं, जो आकार से आरम्भ होकर क्षकार पर्यन्त है। 'य र ल व श ष स ह'– ये आठों वर्ग अष्टकोण रूप हैं। कवर्गादि पांचों वर्गों के क्रमशः चारों वर्ग बीस होते हैं। वे दोनों दशार हैं। पांच वर्ण अनुस्वाररूप होने से विन्दु के अन्तर्गत हैं। चौदहों स्वर चतुर्दशार में अनुस्वार एवं विसर्ग बिन्दु के अन्तर्गत हैं। इस प्रकार चक्र एवं मन्त्र की एकता है। इस ऐक्य चिन्तन से अविद्या की निवृत्ति होती है और शुक्ल धर्म की वृद्धि होती है। अद्वैत ब्रह्म निष्ठा इसका अन्तिम फल है। वरिवस्या रहस्य में श्री भास्कर राय ने मन्त्र के पन्द्रह अर्थ किये हैं। योगिनी हृदय नित्या षोडशिकार्णव में भी यह विषय आया है। पञ्चदश नित्या, पञ्चदशाक्षरी विद्या, पञ्चदशतिथि इस प्रकार से ऐक्य को प्राप्त हैं, तिथियां भी अग्नि, सूर्य, चन्द्र के क्रम से त्रिधा विभक्त है। जिनके नाम इस प्रकार हैं–दर्शा, दृष्टा, दर्शता, विश्वरूपा, सुदर्शना। ये पांचों आग्नेय खण्ड में हैं। आप्यायमाना, आप्यायमाना आप्याया, सुवृता और इराये सौरखण्ड में हैं। आपूर्यमाणा, आपूर्यमाणा, पूरयन्ती, पूर्णा, पौर्णमासी–ये चन्द्र खण्ड में हैं। तिथियों के ये नाम वैदिक हैं।

सनत्कुमार संहिता में साधन-विधि का स्वरूप इस प्रकार बताया है–सूर्य, चन्द्र में ही देवयान और पितृयान मार्ग स्थित हैं। इडा-पिंगला
Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

नाड़ी मार्ग से अहोरात्र का संचार हो रहा है। वामनाड़ी में चन्द्र वहत्तर सहस्र नाड़ी मार्ग को अमृत से सिञ्चन करता है। सूर्य दक्षिण मार्ग से संचार करता हुआ चन्द्रद्वारा सिंचित अमृत विन्दु को सुखा देता है। जब आधार चक्र में सूर्य-चन्द्र का समावेश होता है, तब अमावस्या तिथि होती है इसी से कृष्ण पक्ष की तिथियां उत्पन्न होती हैं। इसीलिए कुंडलिनी शक्ति सूर्य किरण के सम्पर्क से चन्द्र-मण्डल से स्रवित अमृतविन्दु से पूरित आधार कुण्ड में सोती है। कुण्डलिनी की निद्रावस्था ही कृष्ण पक्ष है। योगी जब समाहित होकर चन्द्र सूर्य का निरोध करने में समर्थ होता है तब चन्द्र सूर्य अपने-अपनें कार्य में असमर्थ हो जाते हैं। अमृत कुण्ड में सुप्त कुण्डलिनी निराहार होने से जागती है और सांप की तरह फूत्कार करती हुई तीनों ग्रन्थियों का भेदनकर सहस्रदल कमल-मध्यवर्ती चन्द्रमण्डल को डँस लेती है और वहां से निकली हुई अमृत-धारा द्वारा आज्ञा चक्र के ऊपर स्थित चन्द्र मण्डल को आप्लावित कर देती है और उससे क्षरित चन्द्रामृत से सारे शरीर को आप्लावित कर देती है। सहस्रार चन्द्र-मण्डल से आज्ञाचक्र-स्थित चन्द्र भिन्न है। आज्ञाचक्र के ऊपर स्थित चन्द्र की कला पञ्चदश नित्यायें हैं। ये कलायें आज्ञाचक्र के नीचे विशुद्धि में परिवर्तित होती हैं। सहस्रदल कमल मध्य में चन्द्रमण्डल ही चित्कलायुक्त बिन्दु स्थान है। इसलिये योगियों को कृष्णपक्ष का त्याग कर शुक्ल पक्षमें ही कुण्डलिनी-जागरण का प्रयत्न-करना चाहिए। शुक्लपक्ष की सभी तिथियां पूर्णमासी कही जाती हैं, और कृष्णपक्ष की अमावस्या के अन्तर्गत होने से एक अमावस्या ही कृष्णपक्ष है। सूर्य चन्द्र की गति का निरोध मूलवन्ध, उड्डीयानवन्ध जालन्धर-वन्ध के अभ्यास से सम्पन्न होकर सुषुम्ना में होकर जब प्राण प्रवाहित होता है तभी षट्चक्रों का ज्ञान होता है। इन षट्चक्रों का सम्वन्ध सूक्ष्म शरीर से है। प्राण के साथ मन जब सुषुम्ना नाड़ी में जाता है तब उनके स्थान, रंग आदि का प्रत्यक्ष अनुभव करता है। षण्मुखी मुद्रा से पञ्चतत्वों का प्रत्यक्ष होता है इसे तन्त्रशास्त्र में योनि मुद्रा के नाम से कहा गया है। भूतशुद्धि क्रिया में तत्वों के प्रत्यक्ष ज्ञान की आवश्यकता होती है। आधार पद्म अन्धकारमय होने से ध्यान के योग्य नहीं हैं। स्वाधिष्ठान मिश्र (प्रकाश अन्धकार-युक्त) होने से भी उपयुक्त नहीं है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

मणिपूर अनाहत पर्यन्त अन्धकार और प्रकाश दोनों मिले हुए हैं। विशुद्धि चक्र चन्द्रलोक है। आज्ञा चक्र चन्द्रस्थान होने से सुधालोक है। इन दोनों में सूर्य-किरण के सम्पर्क से ज्योत्स्ना नहीं है। बिन्दु चन्द्र, निरोधिका, नाद, और नादान्त तुरीया अवस्था में ही समाधिनिष्ठ योगी अनुभव करने में समर्थ होता है। शक्ति, व्यापिका समना, उन्मना, तुरीयातीत अवस्था में है। इनके ऊपर सहस्रार का बिन्दु स्थान है और वह सर्वदा ज्योत्स्नामय है। प्रकाशमय होने से समय मत में इसे ही ध्येय मानते हैं। शेष चक्रों का ध्यान नियत नहीं है। सहस्रकमल की पूजा का अर्थ बिन्दुचित्कला के साथ-साथ शिव-शक्ति सामरस्यरूप का अनुसन्धान है। बाह्य पूजन सर्वथा निषिद्ध है। इसलिए षोडशादि उपचार पूजा का तो अवकाश भी नहीं है। यह अनुसन्धान चार प्रकार का है। प्रथम आधारादि षट्चक्रों का त्रिकोण के साथ तादात्म्य विन्दुस्थान चतुरस्र का सहस्रदल के साथ दूसरा तादात्म्य है इसे ही विन्दु शिव का तादात्म्य कहा जाता है, शक्ति शिव का तादात्म्य, तीसरा, मन्त्र और चक्र के तादात्म्य के साथ चिन्तन चौथा प्रकार है। इस समाराधन को महारहस्य कहते हैं। समय मत में सादाख्य तत्वरूप समय की पूजा सहस्रदलकमल में ही होती है। बाह्यपीठादि पूजा क्षुद्र फलवाली होने से त्याज्य है। जो समयमतानुसारी योगीश्वर जीवनमुक्त आत्मैकनिष्ठ हैं, वे केवल सादाख्य-तत्व के चिन्तन में ही संलग्न रहते हैं। इनसे भिन्न दूसरे प्रकार के योगी एकान्त गिरि-गुहा में चतुर्विध ऐक्य तथा षड्विध ऐक्य का अनुसंधान करते रहते हैं। वे भी वाह्य पूजा एवं तत्सम्बन्धी क्रिया कलाप में रुचि नहीं रखते। यह इस मत का तात्विक रहस्य है। चन्द्रज्ञान विद्या में सूर्यमण्डल मध्य में श्री महात्रिपुर सुन्दरी के पूजन का जो विधान है, वे एकदेशी समयाचारी हैं। समयाचारी के लिए मन्त्र का पुरश्चरण,जप,बाह्यहोम, वाह्यपूजादि नहीं हैं। ये सारी क्रियायें हृदयकमल में ही अनुष्ठेय हैं।

कुण्डलिनी योगः–

महामहिमावती महाशक्ति सारे विश्व की लीला न्याय से रचना कर आधार पद्म में कुण्डलाकार सो रही हैं। उसके जागने पर ही

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राणी को यथार्थ ज्ञान होता है। इसलिए योगियों ने इसके विषय में बहुत ही सूक्ष्म/विचार किया है। योग ग्रन्थों में एवं तन्त्र शास्त्रों में इस विषय के साधक के लिए बहुत ही आवश्यक रूप से निर्देश किया गया है। वामकेश्वर तन्त्रों में इसका अनुभूत सुन्दर प्रकार से बताया गया है।

जो यह है :-

"भुजङ्गाकाररूपेण मूलाधारं समाश्रिता। शक्तिः कुण्डलिनी नाम विसतन्तुनिभा शुभा। मूलकन्दं फणाग्रेण दंष्ट्वा कमलकन्दवत्। मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रसमाश्रिता। पद्मासनगतः स्वस्थो गुदमाकुंच्य साधकः। वायुमूर्ध्वगतिं कुर्वन् कुम्भकाविष्टमानसः। वाय्वाघात-वशादग्निः स्वाधिष्ठानगती ज्वलन्। ज्वलनाघातपवनाघातैरुन्निद्रितो हि राट्। रुद्रग्रन्थिं ततो भित्वा विष्णुग्रंथिं भिनत्ति यः। ब्राह्मग्रंथिं च भित्वैव कमलानि भिनत्ति षट्। सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते। सा चावस्था परा ज्ञेया सैव निवृत्तिकारणम् इति"। अर्थात कमलनाल की सूक्ष्म तन्तु की तरह भुजङ्गाकाररूपेण कुण्डलिनी नाम की शक्ति मूलाधार में रहती है। मूलकन्द को अपनें फणाग्र से आच्छादन कर साढ़े तीन फेरे में अपने को लपेटे हुए पूंछ को मुख से पकड़े हुए है। पद्मासन में स्थित होकर गुदा इन्द्रिय का ऊपर को आकुञ्चन करते हुए साधक वायु को ऊर्ध्व गतिवाला करता है। कुम्भकाविष्ट मनवाला होने से वायु के आघात से स्वाधिष्ठान में रहनेवाली अग्नि प्रज्वलित होती है। अग्नि के आघात से कुण्डलिनी शक्ति जाग जाती है। इससे रुद्र, विष्णु और ब्रह्म ग्रंथियों एवं षट्कमलों का भेद होता है तथा मूलाधार से चलकर सहस्रार में वह शक्ति शिव के साथ आनन्द करती है।

यह अवस्था योगी के लिए परमशान्ति देने वाली है। इस क्रिया के करने में असमर्थ साधकों के लिए मन्त्रजप, कुण्डलिनी स्तोत्र एवं कवच का पाठ, महाविद्या स्तोत्र का पाठ भी तन्त्रों में बताया गया है। इससे भीं कुण्डलिनीजागरण होता है। सिद्ध सरस्वती स्तोत्र इसके लिए बहुत उपयोगी स्तोत्र है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि—इन चक्रों में क्रम से पृथिवी, जल, अग्नि,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

वायु और आकाशतत्व को, जो तन्मात्रा रूप में रहते हैं, जीतकर शक्ति आज्ञा चक्र में इन्द्रियों के साथ मन को वेधकर सहस्रार में शिव के साथ ऐक्य को प्राप्त करती है। यह आरोह क्रम कहा जाता है। सहस्रार में शिव का तादात्म्य प्राप्त करने के बाद आज्ञा, विशुद्धि, अनाहत, मणिपूर, स्वाधिष्ठान के क्रम से पुनः मूलाधार में आकर वह सो जाती है– 'स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि'। यह अवरोह क्रम कहलाता है। सामान्य क्रम कुण्डलिनी योग का यही है। योगीगण इसका अभ्यास इसी प्रकार करते हैं। परन्तु समय क्रम स्वाधिष्ठान के नीचे मूलाधार पद्म-स्थित कुण्डलिनी का अभ्यास नहीं किया जाता। इस मत में सहस्रार को ही मूलाधार माना गया है। यह श्रौतक्रम है। कहा है––

ऊर्ध्वं मूलमवाक्शाख एष अश्वत्थः सनातनः।

इस कठ श्रुति में ऊर्ध्वमूल से सहस्रार ही लिया गया है–ऊर्ध्व मूलमधः शाखम् इत्यादि। गीता के पंद्रहवें अध्याय में भी यही लिया गया है। सहस्रार में भी कुण्डलिनी रहती है। इसे अकुलकुण्डलिनी कहते हैं।

'व्योमनि विद्यमानस्य चिच्छक्तिमण्डलस्याधोमुखसहस्रार कर्णिकारूपस्य मध्ये स्थितया अकुलकुण्डलिन्या संगम्य' अर्थात परम व्योम में चित्कला युक्त शशिमण्डल के अधोमुख सहस्रार की कर्णिका के बीच में स्थित अकुलकुण्डलिनी से कुलकुण्डलिनी की एकता कर इत्यादि वरिवस्या रहस्य श्लोक १०६ की व्याख्या में माना गया है। चिच्छक्ति-विशिष्ट ब्रह्म से पहले पहल, आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी, इस क्रम से सृष्टि हुई। इसे श्रुति में इस प्रकार बताया गया है––

एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः आकाशाद् वायुः वायोरग्नि अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी।

समयाचार सृष्टिक्रम का साधन है। इस क्रम में आराधन सहस्रार से ही आरम्भ होता है। स्वाधिष्ठान के नीचे वाला मूलाधार

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

तामिस्र-लोकवाला होने से समयाचार में निषिद्ध है और उसका साधन संहार क्रम का है। समयाचार का वर्णन करते हुए आचार्य भगवत्पाद ने सृष्टि क्रम को ही लिया है--

'मनस्त्वं व्योमत्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम्' सौ०ल० ३५। षट्चक्रों में जो तत्त्वक्रम है, उसे ही स्पष्ट रूप से लिया गया है, इस प्रकार षट्चक्रों के वर्णन को लक्ष्मीधर ने सुगम बताया है-'अवरोह क्रमेण कमलानि उक्तानि इति तत्र पूजा सुकरेति तदानु-गुण्येन भगवत्पादैरुक्तम् इति' श्लोक ४१ अर्थात अवरोह क्रम से कमलों को जो कहा है, उसका अभिप्राय यह है कि वहां पूजा सुगम है। इसी के अनुसार भगवत्पाद ने यह वर्णन किया है। इसलिए 'तवाज्ञाचक्रस्थं' इत्यादि श्लोक से लेकर 'तवाधारेमूले' तक का वर्णन सृष्टि क्रम से ही सम्बन्धित है। सौन्दर्यलहरी के शिख नख वर्णन का भी यही अभिप्राय है।

"सुधासिन्धोर्मध्ये" श्लोक में सहस्रार का वर्णन लिया गया है। कौल साधकों का यह सिद्धान्त है कि संहारक्रम का साधन प्रत्यक्ष पञ्चमकार सेवन से ही सिद्ध होता है।

मूलाधार से सहस्रार पर्यन्त कुण्डलिनी शक्ति का प्रवाह इसी से होता है। समयाचार विरक्तों का साधन है। अतः सृष्टि क्रम से ही उसकी सिद्धि होने से संहारक्रम विरक्तों को वर्जित है। सौंदर्यलहरी में कौलसाधन के अनुसार बहुत सी बातें कही गई हैं। जैसे ९वें, १०वें श्लोकों में कुण्डलिनी का आरोह-अवरोह क्रम कौल साधना का ही है 'त्वया हृत्वा वाम' इत्यादि श्लोक उत्तरकौल सिद्धांत का बताने वाला है। नवें एवं दशवें में स्वाधिष्ठान के स्थान में मणिपूर एवं मणिपूर के स्थान में स्वाधिष्ठान का जो व्यत्यय किया गया है वह भी सृष्टिक्रम का ही है- ऐसा लक्ष्मीधर का अभिप्राय है, क्योंकि 'वाय्वाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतोज्वलन्' इस प्रमाण से स्वाधिष्ठान में अग्नि का वास माना गया है तथा "मणिःपूरैकवसितः प्रावृषेण्यः सदाशिवः" इस प्रमाण से मणिपूर में जल की स्थिति मानी गई है। सृष्टिक्रम में अग्नि के बाद जल है। इसलिए प्रसिद्ध क्रम का परिवर्तन कर स्वाधिष्ठान के नीचे मणिपूर चक्र को आचार्य ने दिया है।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

## उपसंहार

यह समयाचार साधन विधि का जो परिचय दिया गया है, बहुत ही प्राचीन एवं श्रेष्ठ योगविधि है। इसका प्रचार एवं इसके रहस्य के ज्ञाता कोई कोई महात्मा उपलब्ध होते हैं।

अभी हाल में ही एक दाक्षिणात्य परमहंस मिले थे, इन्होंने इसे बड़े ही विशदरूप में बताया था। प्रसिद्ध उत्तर योगी ने अपनी, "यौगिक साधना" नाम की अंग्रेजी भाषा की पुस्तक में समयाचार का ही सृष्टिक्रम लिया है और इसे ही एक सत्य प्रणाली स्वीकार किया है– "आई शैल स्पीक टुडे आफ़ दि शक्ति आर विल सिंस देट इज़ दि फाउन्डेशन आफ़ योग। दि शक्ति इज़ सिचुयेटेड इन दि सहस्रार दल जस्ट एबव दि क्राऊन आफ़ दि हेड ऐण्ड फ्राम देट सीट आफ़ ऐक्टिविटी इट वर्क्स"। श्री जगन्माता परम करुणामयी से बार बार प्रार्थना है कि उसके इन रहस्यों को अपने योग्य सुपुत्रों को प्रकट कर उनका कल्याण करें।

---

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

# एक समाधान

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं ।
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृन्मरुतमाकाशमुपरि ॥
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं ।
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे ॥

अर्थ– हे कुण्डलिनी स्वरूपे भगवति ! मूलाधार में पृथिवी, मणिपूर में जल, स्वाधिष्ठान में अग्नि, अनाहत में वायु, विशुद्धि में आकाश, भ्रूमध्य में मन-कुलपथ के इन चक्रों को भेदकर सहस्रार में परम शिव के साथ एकान्त विहार करती हो (सौन्दर्यलहरी) । इस पद्य में मूलाधार के बाद मणिपूर स्वाधिष्ठान के स्थान में कहा गया है तथा स्वाधिष्ठान के स्थान में मणिपूर बताया गया है । यह प्रकार प्रायः योग ग्रन्थों में एवं तान्त्रिक पद्धतियों में नहीं मिलता । इस पर यह जिज्ञासा होती है कि आचार्य भगवत्पाद ने ऐसा क्यों लिखा है ? वामकेश्वर तन्त्र में स्वाधिठान में अग्नि का वास माना है–

वाय्वाघात वशादग्निः ।
स्वाधिष्ठान गतो ज्वलन् ॥
ज्वलनाघात पवनाघातै- ।
रुन्निद्रितो ऽहिराट् ॥

वायु के आघात वश स्वाधिष्ठान में रही हुई अग्नि जल उठती है । इसके आघात से कुण्डलिनी जाग जाती है ।

"मणिपूरैक वसतिः प्राविषेण्यः सदाशिवः ।"

इस वाक्य में मणिपूर में जल की स्थिति मानी गई है। समयाचार का साधन भी इसे स्वीकार करता है । इसके अतिरिक्त श्रीविद्या के उपासना क्रम में उर्ध्वाम्नाय का प्रकार साधना मार्ग के चरम विकास का स्वरूप है । इस क्रम में मायाजन्य भेद-भ्रान्ति का पूर्ण रूप से निरास होता और साधक अद्वैतानुभव की अवस्था में पहुँचकर कृतकृत्य हो जाता है । आचार्य भगवत्पाद ने इसी क्रम के अनुसार सौन्दर्यलहरी की रचना की है । शक्ति संगम में क्रम साधना की तीन शक्तियाँ ही प्रधान रूप से मानी गई हैं, जिन्हें इस प्रकार कहा गया है–

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सुन्दरी तारिणी काली क्रमदीक्षाभिगामिनी ।
क्रमे पूर्णे महेशानि क्रमाच्छम्भुर्भविष्यति ॥

श्रीशंकर श्रीदेवी से कहते हैं कि श्रीसुन्दरी, तारिणी एवं काली ही क्रम की पूर्णता करने वाली शक्तियाँ हैं। श्रीसुन्दरी का क्रम इस प्रकार बताया गया है–

चन्द्राग्निपक्षषोढाख्यपरा निर्वाणतत्परा ।
षट्शाम्भवं ततो देवि चक्रसम्भेदमेवच ॥
स्वचक्रदेहविज्ञानं परकाय प्रवेशनम् ।
एतज्ज्ञानाद्भवेन्मेधा दीक्षा प्रोक्ता मया तव ॥
हादाविदं निगदितं श्रुणुकादौ महेश्वरि ।

(श० कालीखण्ड १६–२४)

इस क्रम दीक्षा प्रकार में षट्शाम्भव का क्रम ऊर्ध्वाम्नाय में आता है। षट्चक्रों में इस क्रमानुसार जो पञ्चतत्त्वों की रश्मियों का न्यास किया जाता है, उसमें जलीय रश्मियों का न्यास मणिपूर में एवं आग्नेय रश्मियों का न्यास स्वाधिष्ठान में होता है। पूजारत्न ग्रन्थ के १४ वें मयूख में इसे इस प्रकार कहा गया है–

शाम्भवक्रमे स्वाधिष्ठानमणिपूरयोः व्यत्ययः ।

इसी के अनुसार श्री पं० नरसिंहठक्कुर ने सौन्दर्य लहरी के 'तव स्वाधिष्ठाने हुतवहम्' इत्यादि ३८ वें श्लोक की व्याख्या में 'शाम्भवक्रमे स्वाधिष्ठान मणिपूरयोः स्थलवैपरीत्यम्' कहा है। इन लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य भगवत्पाद ने स्वाधिष्ठान एवं मणिपूर में जो प्रसिद्ध क्रम का परिवर्तन करके लिखा है, वह शाम्भव क्रमानुसार है। इसके अतिरिक्त अनेक टीकाकारों ने जो भिन्न भिन्न इस पर कल्पनायें की हैं, वे संगत नहीं हैं। यह विषय हादीक्रम का होने से आचार्य ने इसलिए हादी विद्या की प्रधानता अङ्गीकार कर "शिवः शक्तिः कामः" इत्यादि ३२ वें श्लोक में हादी विद्या का ही प्रधान रूप से उद्धार किया है। इस प्रकार जिज्ञासा का समाधान चारुरूप से हो जाता है।

॥ ॐ शम ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥ ओम् ॥

श्रीशङ्करभगवत्पूज्यपादविरचिता

# सौन्दर्यलहरी

लक्ष्मीधरदेशिकविरचितया लक्ष्मीधराख्यया

व्याख्यया संहिता

---

शिवश्शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलस्स्पन्दितुमपि ।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति ॥

व्याख्यानप्रारम्भः

---

वन्दामहे महीयांसमंसलम्बिजटाभरम् ।
यत्कङ्कणझणत्काररवश्शब्दानुशासनम् ॥

शेषाशेषोक्तिभूषाः कणचरणचणग्रन्थसौगन्ध्यजिघ्राः
भट्टोक्तिप्रौढिलीढा गुरुगुरुत्तरगीर्गुम्भशुम्भद्विजृम्भाः ।
निश्शङ्काश्शङ्करोक्तौ पशुपतिमतनिर्वाहकाः सांख्यसंख्याः
यस्य श्रीलोल्ललक्ष्मीधरविबुधमणेर्भान्ति वाचां निगुम्भाः ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



सोऽहं लक्ष्मीधरः प्राह टीकां लक्ष्मीधराभिधाम् ।
एनां समाहितस्वान्ताः सेवन्तां सततं बुधाः ॥

स्यादेव मेऽलसतया मतिमान्द्यतो वा
दोषः क्वचित्क्वचिदथापि न कापि शङ्का ।
नैसर्गिकी खलु गुणीकरणप्रवीणा
शक्तिस्सदा विजयते [1] भुवि सज्जनानाम् ॥

इह खलु शङ्करभगवत्पूज्यपादाः समयमततत्त्ववेदिनः समयाख्यां चन्द्रकलां श्लोकशतेन प्रस्तुवन्ति—

शिवः सर्वमङ्गलोपेतः सदाशिवतत्त्वम् । वश कान्तौ इत्यस्माद्धातोः शिवशब्दो निष्पन्नः । यथोक्तम्—

हिंसिधातोस्सिंहशब्दो वशकान्तौ शिवस्स्मृतः ।
वर्णव्यत्ययतस्सिद्धौ पश्यकः कश्यपो यथा ॥

इति । वश कान्तौ, इत्ययं धातुः तुदादिः अदादिश्च संगृहीतः । तुदादेर्वशतेः दीप्तिरर्थः । कान्तिर्दीप्तिः । अदादेर्वष्टिरिति कामना अर्थः । इच्छाशक्त्याश्रयत्वात् ईश्वरस्य शिवत्वम् । वशति प्रकाशते स्वयंप्रकाश इति, यद्वा स्वस्मिन् प्रपञ्चं प्रकाशयतीति, शिवः । यद्वा—शीङ् स्वप्ने इत्यस्माद्धातोः शिवशब्दो निष्पन्नः । स्वप्नं वाति क्षिपतीति शिवः, जाड्यरहितः, अविद्यानिर्मुक्त इत्यर्थः । यद्वा—स्वप्नमविद्यां वाति गच्छतीति शिवः, सादाख्यकलासंवलित इति यावत् । तस्यैव शिवशब्दवाच्यत्वं वक्ष्यते । तादृशः शिवः शक्त्या जगन्निर्माणशक्त्या युक्तः अवच्छिन्नः—अविद्यावच्छिन्नचैतन्यस्यैव ब्रह्मणः जगन्निर्माणशक्तत्वात् । यदि चेत्, भवति शक्तः समर्थः प्रभवितुं

[1] खलु.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



प्रपञ्चं निर्मातुम् । न चेदेवं, शक्त्या युक्तो[1] न चेदित्यर्थः । दीव्यतीति देवः पूर्वोक्तः सदाशिवः । [2]नखलु निषेधसम्भावनायाम् । स्पन्दितुमपि चलितुमपि कुशलः समर्थः । निराकारस्य विभोराकाशतुल्यस्य स्पन्दनायोगादिति हृद्गतोऽर्थः ॥

वाच्यार्थस्तु—शिवशक्त्योः जायापतिन्यायेन जायया शक्त्या युक्तश्चेत् प्रपञ्चरूपसन्तानं निर्मातुं शक्नोति, तया वियुक्तश्चेन्न शक्नोतीति ॥

आगमरहस्यार्थस्तु—शिवशब्देन [3]नवयोनिचक्रमध्ये चतुर्योन्यात्मकमर्धचक्रमुच्यते । शक्तिशब्देन अवशिष्टं पञ्चयोन्यात्मकमर्धचक्रमुच्यते । एवमर्धद्वयमिलितं नवयोन्यात्मकं चक्रं भवति । एतस्माच्चक्रादेव जगदुत्पत्तिस्थितिलया भवन्तीति पुरस्तान्निवेदयिष्यते । उक्तं च—

चतुर्भिश्शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः ।
शिवशक्त्यात्मकं ज्ञेयं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः ॥

इति । शिवशक्त्योर्मेलनं षड्विंशं सर्वतत्त्वातीतं तत्त्वान्तरमिति पुरस्तान्निवेदयिष्यते । तस्मान्मेलनादेव जगदुत्पत्तिस्थितिलयाः, न केवलादेवेति च वक्ष्यते । यथोक्तं वामकेश्वरमहातन्त्रे चतुश्शत्याम्—

परोऽपि शक्तिरहितः शक्त्या युक्तो भवेद्यदि ।
सृष्टिस्थितिलयान् कर्तुमशक्तश्शक्त एव हि ॥ इति ।

एतच्च 'चतुर्भिश्श्रीकण्ठैः' * इत्यादिश्लोकव्याख्यानावसरे निपुणतरमुपपादयिष्यामः ॥

---

* ११ श्लोकः.

[1] न भवेदित्यर्थः. [2] न खलु निषेधसम्भावनयोः. [3] शिवयोन्विचक्रमध्ये.



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अतः तस्माद्धेतोः, त्वां भगवतीं, आराध्यां आराधयितुं पूजयितुमर्हां, हरिहरविरिञ्चादिभिः, हरिर्विष्णुः, हरो रुद्रः, विरिञ्चो ब्रह्मा, आदिशब्देन इन्द्रादयः संगृह्यन्ते । ते च अधिकारपुरुषाः प्रपञ्चान्तःपातिनः । तैर्नमस्कार्यत्वं प्रपञ्चजनयित्र्याः भगवत्याः युक्तमेवेत्युक्तं "अतस्त्वामाराध्यां" इति, न तु आरोपस्तुतिरिति ध्येयम् । यद्वा—निगमा वा आदिशब्देन संगृह्यन्ते, निगमसेव्यत्वात् भगवत्याः । तदुत्तरत्र 'श्रुतीनां मूर्धान'* इत्यादौ स्फोर्यते । विरिञ्चशब्दः अकारान्तः । अपिशब्दः कथंशब्दार्थमुपस्करोति । प्रणन्तुं नमस्कर्तुम् । प्रशब्दः कायिकं वाचिकं मानसिकं च त्रिविधं नमस्कारमाह । स्तोतुं वा, केवलं स्तुतिमात्रमपि कर्तुं वेत्यर्थः । अकृतपुण्यः—पूर्वजन्मार्जितपुण्यनिचयः कृतपुण्यः, तदन्यः अकृतपुण्यः । प्रभवति ईष्टे शक्तः ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति शिवो देवः शक्त्या युक्तो भवति यदि, तदा प्रभवितुं शक्तः । एवं न चेत्, स्पन्दितुमपि कुशलो न खलु । अतः हरिहरविरिञ्चादिभिरपि आराध्यां त्वां अकृतपुण्यः प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथं प्रभवति ॥ १ ॥

# तनीयांसं पांसुं तव चरणपङ्केरुहभवम्
# विरिञ्चिस्सञ्चिन्वन्विरचयति लोकानविकलम् ।
# वहत्येनं शौरिः कथमपि सहस्रेण शिरसाम्
# हरस्संक्षुद्यैनं† भजति भसितोद्धूलनविधिम् ॥

---

* ८४ श्लोकः, † क्षुम्यैनं इति पाठान्तरम्.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



तनीयांसं अतिसूक्ष्मं, पांसुं रजःकणं, तव भवत्याः, देव्याः चरणपङ्केरुहभवं चरणौ पङ्केरुहे इव ताभ्यां भवं विरिञ्चिः ब्रह्मा—विरिञ्चिशब्द इकारान्तः, 'विरिञ्चिश्च विरिञ्चनः' इति अमरशेषे अभिधानात् । संचिन्वन् सम्पादयन् , भाण्डीकुर्वन्नित्यर्थः, विरचयति विविधान् करोति, लोकान्—लोक्यन्त इति लोकाः स्थावरजङ्गमात्मकप्रपञ्च इत्यर्थः । यद्वा—ऊर्ध्वलोकाः सप्त भूरादयः, अधोलोकाः सप्त अतलादयः, एवं [1]चतुर्दशलोकान् । अविकलं परस्परासङ्कीर्णं यथा भवति तथा । यद्वा—यावत्प्रलयमेषां वैकल्यं यथा न भवति तथा । वहति प्रापयति रक्षति एनं पांसुकणं चतुर्दशलोकात्मकतया अवस्थितम् । शौरिः शूरस्य यदोरपत्यं शौरिः बलभद्रः; तेन शेषो लक्ष्यते. शेषावतारत्वात् बलभद्रस्य । यद्वा—शृणाति हिनस्ति दशतीति शौरिः सर्पराजः, शेष इति यावत् । यद्वा—शौरिः विष्णुः । तथोक्तं चतुश्शत्याम्—

शिंशुमारात्मना विष्णुः सप्तलोकानधस्स्थितान् ।
दध्रे शेषतया लोकान् भूरादीनूर्ध्वतस्स्थितान् ॥ इति ।

शेषपक्षेऽपि शेष एव विष्णुः, रक्षणे विष्णोरेवाधिकारात् । कथमपि कथंचित् सहस्रेण शिरसाम् । हरः अन्तकाले प्रपञ्चं हरतीति हरः, संक्षुद्य सम्यक् मर्दयित्वा, एनं चतुर्दशभुवनात्मकतया अवस्थितं पादरजःकणं, भजति सेवते, [2]उपदिहतीत्यर्थः । भसितोद्धूलनविधिं भसितेन यदुद्धूलनं उपदेहनं अङ्गरागकरणं, तस्य विधिः अनुष्ठानं, तं तथोक्तम् ॥

---

[1] चतुर्दशलोकाः तान्. [2] उपजीवतीत्यर्थः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri


अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति विरिञ्चिः तव चरणपङ्केरुहभवं तनीयांसं पांसुं सञ्चिन्वन् लोकान् अविकलं विरचयति। हे भगवति शौरिरेनं शिरसां सहस्रेण कथमपि वहति। हे भगवति एनं संक्षुद्य हरः भसितोद्धूलनविधिं भजति॥

अयं भावः—ब्रह्मविष्णुमहेश्वराणां प्रपञ्चविषयसृष्टिस्थितिलयकर्तृत्वं भगवत्याः पादाब्जरेणुमहिमायत्तमिति॥ २॥

तमेव पांसुं प्रस्तौति—

अविद्यानामन्तस्तिमिरमिहिरद्वीपनगरी
जडानां चैतन्यस्तबकमकरन्दस्रुतिझरी।
दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका जन्मजलधौ
निमग्नानां दंष्ट्रा मुररिपुवराहस्य भवति॥३॥

एषः पांसुः अविद्यानां अविद्याऽऽविष्टचित्तानां, अज्ञानिनामित्यर्थः, न तु अविद्यमानविद्यानां, अविद्याया भावरूपत्वात्। अर्श-आदित्वात् अच्प्रत्ययः, अविद्यावन्तः अविद्या इति। यद्वा—अविद्याऽऽविष्टचित्ता अपि उपचारेण अविद्या इति। तेषां अन्तस्तिमिरमिहिरद्वीपनगरी—अन्तस्तिमिरं अन्तस्थिताज्ञानम्। अज्ञानस्य तिमिरत्वारोपणं आवरकत्वसाम्यात्—यथा बाह्यपदार्थानावृणोति तमः, तथा आन्तरपदार्थं आत्मानं आवृणोति अविद्या। तस्य तिमिरस्य मिहिरद्वीपनगरी, मिहिरस्य सूर्यस्य द्वीपः समुद्रमध्ये उदयप्रदेशः, तत्र नगरी पत्तनं, वासगृहमिति यावत्। जडानां मन्दानां दुर्मेधसां,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



चैतन्यस्तवकमकरन्दस्रुतिझरी—चेतनैव चैतन्यम्, स्वार्थे ष्यञ्, चेतना नाम आत्मगतपदार्थप्रबोधकारिणी चित्तविस्ताररूपा काचन शक्तिः, तदेव स्तवकः कल्पवृक्षगुच्छः, तस्य मकरन्दः पुष्परसः, तस्य स्रुतिः स्रवणं निष्यन्दः, तस्य झरी प्रवाहः। दरिद्राणां दीनानां, चिन्तामणिगुणनिका चिन्तामणेः रत्नविशेषस्य गुणनिका गुणना आम्रेडनं, समूह इति यावत्। जन्मजलधौ जन्मैव संसार एव जलधिः समुद्रः, संसारे समुद्रत्वारोपणं अपारत्वसामान्यात्। तत्र निमग्नानां नितरां उन्मज्जनराहित्येन मग्नानाम्। दंष्ट्रा—स्पष्टम्। मुररिपुवराहस्य, मुरो नाम दैत्यः, तस्य रिपुः विष्णुः, अयं मुररिपुशब्दः विशेषणवाच्यपि विशेष्यं विष्णुमेव कथयति, शब्दस्वाभाव्यात्। न चात्र पङ्कजादिपदवत् शक्तिसङ्कोचः, द्रव्यवाचकत्वा[1]दस्येति। तस्य वराहः अवतारविशेषः, तस्य तथोक्तस्य भवति वर्तते॥

अन्वेत्थं पदयोजना—हे भगवति तव[2] पादाब्जरेणुः एषः अविद्यानां अन्तस्तिमिरमिहिरद्वीपनगरी, जडानां चैतन्यस्तवकमकरन्दस्रुतिझरी, दरिद्राणां चिन्तामणिगुणनिका, जन्मजलधौ निमग्नानां मुररिपुवराहस्य दंष्ट्रा भवति॥

अत्र परिणामालङ्कारः, आरोप्यमाणस्य आरोपणविषयात्मतया स्थितेः। तथाच मङ्खकसूत्रम्—'आरोप्यमाणस्य प्रकृतोपयोगित्वे परिणामः' इति। अस्यैवार्थः आरोप्यमाणस्य प्रकृतोपयोगित्वं आरोपविषयात्मतया स्थितिनिबन्धनमेवेति फलाभिप्रायेणोक्त इति।

---

[1] पदस्येति. [2] भवत्पादाब्जरेणुः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



यद्वा—उल्लेखालङ्कारः, नगर्यादिरूपेण पांसोरुल्लेखनात्। रूपकं वा भवतु, प्रकृतोपयोगो न विवक्ष्यत इति ॥ ३ ॥

## त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगणः
## त्वमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यभिनया ।
## भयात्त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छासमधिकं
## शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ ॥

त्वत् भवत्याः सकाशात्, अन्यः इतरः, पाणिभ्यां हस्ताभ्यां अभयवरदः अभयं भयराहित्यं, भयात्त्राणमिति यावत्, वरः इष्टार्थः, तौ ददातीति अभयवरदः, एकेन हस्तेन अभयदः अन्येन वरद इत्यर्थः। दैवतगणः देवता एव दैवतानि, विनयादित्वात् स्वार्थे अण्, 'स्वार्थिकाः प्रत्ययाः प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्तन्ते', यथा चेतनैव चैतन्यमिति। तेषां गणः इन्द्रादयः आदित्यादयश्च गणदेवताः। त्वं भवती, एका मुख्या, एकसंख्यासंख्येया वा, नैवासि न भवस्येव। प्रकटितवराभीत्यभिनया—प्रकटितः प्रकाशितः, 'हस्ताभ्यां' इति शेषः, वरः इष्टार्थः अभीतिः अभयं भयात् त्राणं, तयोरभिनयः अभिव्यञ्जनं यस्यास्सा तथोक्ता। हस्ताभ्यां अभयवरप्रदानं सर्वदैवतसाधारणमिति अस्याः असाधारणं अभयवरप्रदानप्रकारमाह–भयात् त्रातुं संसाराद्रक्षितुं, दातुं फलं वाञ्छितार्थानुरूपं, अपि च समुच्चये, वाञ्छासमधिकं वाञ्छायाः कामनायाः सम्यगधिकं, कामितार्थादधिकमित्यर्थः। शरण्ये शरणार्हे लोकानां चतुर्दशभुवनानाम्। तव भवत्याः। हिशब्दः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



इत्यर्थे, इति संचिन्त्येत्यर्थः। चरणौ पादौ । एवकारः अवधारणे। निपुणौ समर्थौ ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति ! लोकानां शरण्ये ! त्वदन्यो दैवतगणः पाणिभ्यामभयवरदः। एका त्वं पाणिभ्यां प्रकटितवराभीत्यभिनया नैवासि हि। इति संचिन्त्य तव चरणावेव भयात्त्रातुं वाञ्छासमधिकं फलमपि च दातुं निपुणौ ॥

अयं भावः—हस्ताभ्यामभयवरदानं सर्वसाधारणमिति कृत्वा त्वच्चरणावेव तादृशाभयवरप्रदाने स्वयमेव व्यापृतौ। अतस्तव न कर्तव्यं हस्ताभ्यामभयवरप्रदानं, प्रयोजनाभावात्, सर्वसाधारण्यप्रसङ्गात्, लोकैकशरण्यत्वव्याघाताच्चेत्युपदेश इति ॥

अत्र व्यतिरेकालङ्कारः स्पष्टः। वाक्यलिङ्गकः काव्यलिङ्गालङ्कारोऽपि स्पष्टः। तयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः॥ ४ ॥

**हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननीम्**
**पुरा नारी भूत्वा पुरिरिपुमपि क्षोभमनयत्।**
**स्मरोऽपि त्वां नत्वा रतिनयनलेह्येन वपुषा**
**मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम् ॥**

हरिः विष्णुः, त्वां भवतीं चक्ररूपिणीं विद्यारूपिणीं च आराध्य पूजयित्वा जपित्वा ध्यात्वा च। अत एव त्रिपुरसुन्दरीप्रस्तारभेदेषु एकस्य प्रस्तारस्य ऋषिः विष्णुः। ऋषिर्नाम वेदस्थितो मन्त्रो येन दृष्टः स इति। अत एवाहुः 'दर्शनादृषिः' इति। इयं पञ्चदशाक्षरी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



निवा ऋग्वेदे आम्नाता 'चत्वार ई बिभ्रति क्षेमयन्तः'* इत्यादौ। न चात्र ईकार त्रयं, हृल्लेखात्रयस्यैव श्रुतत्वात्, इति वाच्यम्। षोडशकलात्मकस्य श्रीबीजस्य गुरुसम्प्रदायवशाद्विज्ञेयस्य स्थितत्वात् चतुर्णामींकाराणां सिद्धेः मूलविद्यायाः वेदस्थितत्वं सिद्धम्॥

अत्र केचित्तु कुलसमयाचारानभिज्ञाः 'चत्वार ई बिभ्रति क्षेमयन्तः'* इत्यादिश्रुतिबोधिताश्चत्वार ईकाराः ईकारेण सार्धं हृल्लेखात्रयमित्याहुः। तन्न, ईकारस्य ईकारत्वोक्तेरयुक्तत्वात्, मूलविद्यायाः षोडशवर्णात्मकत्वात्, षोडशवर्णात्मकत्वं च षोडशनित्याप्रकृतिभूतत्वात् मूलविद्यायाः। एतच्च 'चतुष्षष्ट्या तन्त्रैः' † इति 'शिवश्शक्तिः कामः' = इति च श्लोकद्वयव्याख्यानावसरे निपुणतरमुपपादयिष्यामः। किञ्चास्य मन्त्रस्य वेदमूलत्वं संज्ञानानुवाकेन § 'इयं वावसरघा' ¶ इत्यनुवाकेन च प्रतिपाद्यत इति वक्ष्यते॥

प्रकृतमनुसरामः—प्रणतजनसौभाग्यजननीं, प्रकर्षेण नताः प्रणताः कायिकवाचिकमानसिकनमस्कारवन्तः जनाः भक्तलोकाः, तेषां सौभाग्यस्य जननी प्रसवित्री तां; पुरा पूर्वं नारी कान्ता भूत्वा नारीरूपं धृत्वा, पुररिपुं त्रिपुरान्तकम्। अपिशब्दो जितेन्द्रियत्वं सम्भावयति। क्षोभं मनोविकारं, अनयत् नयति स्म। 'गतिबुद्धि' इत्यादिसूत्रेण द्विकर्मकत्वम्। स्मरोऽपि मन्मथोऽपि। अपिशब्दः पूर्वोक्तविष्णुधर्मं समुच्चिनोति। यथा विष्णुर्भवन्मन्त्रस्य ऋषिः, एवं स्मरोऽपि। त्वां भवतीं, नत्वा शरणमुपगम्य, श्रीचक्रं सम्यगभ्यर्च्य, त्वन्मूलविद्यां सम्यगभ्यस्य, त्वत्प्रभावापन्नसत्त्वः

---

* ऋ. ५-४७-४. † ३१ श्लो. = ३२ श्लो.

§ तै. ब्रा. ३-१०-१. ¶ तै. ब्रा. ३-१०-१०.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



रतिनयनलेह्येन रतेः स्वपत्न्याः नयनाभ्यां लेह्येन लेहनार्हेण, रतिनयनैकदृश्येनेत्यर्थः। यद्वा—रतिर्नाम अतिसुन्दरी, तस्याः नयनपेयेन इत्यतिसौन्दर्यं कामदेहस्येति। वपुषा देहेन। मुनीनां जितेन्द्रियाणाम्। अपिशब्दः सम्भावनायाम्। अन्तः अन्तरङ्गे चित्तवृत्तौ। प्रभवति समर्थः। हिः प्रसिद्धौ। मोहाय शब्दादिविषयवाञ्छोत्पादनाय। महतां महात्मनाम्।

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! प्रणतजनसौभाग्यजननीं त्वां हरिराराध्य पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत्। स्मरोऽपि त्वां नत्वा रतिनयनलेह्येन वपुषा महतां मुनीनामप्यन्तर्मोहाय प्रभवति हि॥

पुरा किल नारायणः स्त्रीरूपधारी कनकस्वामिन प्रलोभ्य अवधीत्। तादृशं स्त्रीरूपं शम्भुना प्रार्थितस्सन् तस्मै दर्शयित्वा तं व्यामोहयामासेति कथा अनुसन्धेया। मन्मथोऽपि सकलमुनिमनस्संक्षोभं कुर्वाणः प्रवर्तते। एतच्च वामकेश्वरमहातन्त्रे चतुश्शत्यां निरूपितम्—

एतामेव [1]पुराऽऽराध्य विद्यां त्रैलोक्यमोहिनीम्।
त्रैलोक्यं मोहयामास कामारिं भगवान् हरिः॥
कामदेवोऽपि देवेशीं [2]देवीं त्रिपुरसुन्दरीम्।
समाराध्याभवल्लोके सर्वसौभाग्यसुन्दरः॥ इति॥

अतश्च यत्र यत्र रतिमूलकं मनस्संक्षोभकरणं भवति तत्तद्भगवतीप्रसादलभ्यमिति वक्तुं कवेरयमारम्भः॥ ५॥

---

[1] पुरा ध्यात्वा. [2] महात्रिपुरसुन्दरीम्.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



यद्यपि पूर्वस्मिन् श्लोके भगवतीप्रसादासादितं मन्मथस्य प्रागल्भ्यमुक्तं तथापि मन्मथस्य अनङ्गविद्यायां मन्मथप्रस्तारस्य ऋषित्वात् तदायत्तमति-प्रागल्भ्यमाह—

**धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी पञ्च विशिखाः**
**वसन्तस्सामन्तो मलयमरुदायोधनरथः ।**
**तथाऽप्येकस्सर्वं हिमगिरिसुते कामपि कृपाम्**
**अपाङ्गात्ते लब्ध्वा जगदिदमनङ्गो विजयते ॥५॥**

अत्र पद्ये यत्तदोरध्याहारः । उभयाध्याहारः सकलकविसमयसिद्धः । यथा रघुवंशे—'वागर्थाविव सम्पृक्तौ' इत्यत्र यौ सम्पृक्तौ तौ वन्दे इति । तथा 'ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञाम्'* इत्यादौ य उत्पत्स्यते तं प्रत्येष यत्न इति । **धनुः** आयोधनसाधनं चापः **पौष्पं** पुष्पमयम् । पुष्पाणामतिमृदुलत्वात् स्पर्शासहत्वात् नमनाकर्षणादिचाप-कार्यानर्हत्वमिति तात्पर्यम् । **मौर्वी** शिञ्जिनी, **मधुकरमयी** मधुकरैः भ्रमरैः प्रचुरा, भ्रमरपङ्क्तिनिर्मितेत्यर्थः । परस्परासम्बद्धानां शिञ्जिनीत्वं न सङ्गच्छत इति तात्पर्यम् । **पञ्च** पञ्चसङ्ख्यासङ्ख्येयाः, **विशिखाः** बाणाः । पञ्चानां विक्षेपणे तूष्णीम्भाव एव शरणमिति तात्पर्यम् । किञ्च—'पञ्च विशिखाः' इत्यनेन तद्विशिखानां प्रसूनात्मकत्वप्रसिद्धेः विशिखकार्यकारित्वाभाव इति तात्पर्यम् । **वसन्तः** कालविशेषः 'वसन्तो मधुमाधवौ' इत्यभिधानात् । **सामन्तः** सचिवः । तस्य कालात्मकत्वात्

* मालतीमाधवे.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



साचिव्यकारित्वं न सङ्गच्छत इति तात्पर्यम्। **मलयमरुत्** दक्षिणानिलः **आयोधनरथः** आयोधनस्य युद्धस्य साधनं स्यन्दनः। मलयमरुतो मलये स्थितत्वात् न सार्वत्रिकत्वम्, सार्वत्रिकत्वेऽपि न सर्वदा सद्भावः, सर्वदा सद्भावेऽपि नीरूपत्वाद्रथकार्यकारित्वाभाव इति तात्पर्यम्। **तथाऽपि** उक्तप्रकारे सार्वजनीने सिद्धेऽपि **एकः** असहायशूरः **सर्वं** सकलं प्रपञ्चम्। **हिमगिरिसुते** हिमप्रधानो गिरिः हिमगिरिः, शाकपार्थिवादित्वात्साधुः, तस्य सुता नन्दिनी, तस्यास्सम्बुद्धिः। **कां** अनिर्वाच्याम्। **अपि**शब्दस्सम्भावनायाम्। **कृपां** अनुकम्पाम्। **अपाङ्गात्** कटाक्षात्, **ते** तव, **लब्ध्वा** प्राप्य। **जगत्** जङ्गमात्मकं लोकं, स्थावरात्मकस्याप्रसक्तेः। **इदं** परिदृश्यमानम्। **अनङ्गः** अङ्गरहितः। अत्र साधकस्यापि दौर्बल्यं सूचितम्। हस्ताभावादेव चापाकर्षणशरसन्धाने अप्यसम्भाविते। पादाभावाच्च [1]रथादौ स्थितिरप्यसम्भाविता। वक्त्रनयनाद्यभावात् वयस्येन मधुना सार्धं सम्भाषणसन्निरीक्षणसहासनादयः असम्भाव्या इति तात्पर्यम्। **विजयते**, 'विपराभ्यां जेः' इत्यात्मनेपदम्॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे हिमगिरिसुते! यस्यानङ्गस्य धनुः पौष्पं, मौर्वी मधुकरमयी, विशिखाः पञ्च, सामन्तो वसन्तः, आयोधनरथः मलयमरुत्, तथाऽपि सोऽनङ्गः एकः ते अपाङ्गात् कामपि कृपां लब्ध्वा सर्वमिदं जगत् विजयते॥

अत्र विभावनालङ्कारः, विजयसाधनाभावेऽपि विजयोत्पत्तेः। 'कारणेन विना कार्योत्पत्तिर्विभावना' इति लक्षणम्॥ ६॥

'सुधासिन्धोर्मध्ये' इत्युत्तरश्लोकोपयोगितया समयिनां चतुर्विधैक्यानुसन्धानमहिम्ना मणिपूरे भगवत्या यादृशं स्फुरति रूपं तादृशं प्रतीति—

---

[1] रथावस्थितिरपि.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



क्वणत्काञ्चीदामा करिकलभकुम्भस्तननता
परिक्षीणा मध्ये परिणतशरच्चन्द्रवदना ।
धनुर्बाणान् पाशं सृणिमपि दधाना करतलैः
पुरस्तादास्तां नः पुरमथितुराहोपुरुषिका ॥७॥

क्वणत्काञ्चीदामा शिञ्जन्मणिमेखला । करिकलभकुम्भस्तननता करिकलभकुम्भतुल्याभ्यां स्तनाभ्यामीषन्नम्रमध्येत्यर्थः । परिक्षीणा कृशा, मध्ये अवलग्ने, तनुमध्येत्यर्थः । परिणतशरच्चन्द्रवदना परिणतः सम्पूर्णकलः शरदि शरत्काले चन्द्रः इन्दुः तद्वद्वदनं यस्यास्सा । धनुः चापं, बाणान् पुष्पमयान्, पाश दाम, सृणिं अङ्कुशम् । अपिशब्दः उक्तमेव समुच्चिनोति । दधाना बिभ्रती, करतलैः चतुर्भिः हस्ताम्बुजैः । पुरस्तात् हृदयकमले, मणिपूरान्निर्गत्येति शेषः । आस्तां उपविशतु । नः अस्माकम् । पुरमथितुः त्रिपुरान्तकस्य । यद्वा—पुराणि त्रीणि वर्णानि त्रिपुराबीजानि मथ्नाति, मथित्वा नवनीतं करोति यस्मिन् रुद्रयामले स रुद्रः पुरमथितेत्युच्यते । आहोपुरुषिका—अहो शब्द आश्चर्यवाची; पुरुषशब्दस्य प्रत्यगात्मवाचिनः अहंशब्दवाच्यत्वं लक्ष्यते; अतः अहो अहम्भावः आहोपुरुषिका, अहङ्कार इति यावत् । रुद्रस्याहङ्काररूपित्वं भगवत्याः 'शिवश्शक्त्या'* इत्यादिश्लोकव्याख्याने प्रपञ्चितम्; प्रपञ्चयिष्यते च ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—क्वणत्काञ्चीदामा करिकलभकुम्भस्तननता मध्ये परिक्षीणा परिणतशरच्चन्द्रवदना धनुः बाणान् पाशं सृणिमपि करतलैः दधाना पुरमथितुराहोपुरुषिका नः पुरस्तादास्ताम् ॥

* १ श्लोकः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्र यद्वक्तव्यं तत्तु 'तवाज्ञाचक्रस्थम्'† इत्यादिश्लोकषट्कव्याख्यानान्ते निपुणतरमुपपादयिष्यते। तत्तत एवावधार्यम्॥ ७॥

**सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते**
**मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे।**
**शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयाम्**
**भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम्॥**

**सुधासिन्धोः** अमृतसमुद्रस्य **मध्ये** **सुरविटपिवाटीपरिवृते** सुरविटपिनां कल्पवृक्षाणां वाटीभिः झम्पाभिः परिवृते, **मणिद्वीपे** मणिमये अन्तरीपे, **नीपोपवनवति** नीपैः[1] कदम्बैः उपवनवति **चिन्तामणिगृहे** चिन्तामणिविरचिते मन्दिरे **शिवाकारे** शिवात्मके शक्तिरूपे, त्रिकोणे इति यावत्, **मञ्चे** खट्वायां, **परमशिवपर्यङ्कनिलयां** परमशिव एव पर्यङ्कः तल्पं, तत्र निलयः अवस्थितिर्यस्याः तां, **भजन्ति** सेवन्ते, **त्वां** भवतीं, **धन्याः** त्वत्प्रसादवशात् कृतार्थाः, **कतिचन** विरालाः, **चिदानन्दलहरीं** चित् ज्ञानं, तदाकारः आनन्दः निरतिशयसुखं, तस्य लहरीं उत्सेकरूपाम्॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! सुधासिन्धोः मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां त्वां चिदानन्दलहरीं कतिचन धन्याः भजन्ति॥

---

† ३६ श्लोकः

[1] नीपानां कदम्बानाम्.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्रेदमनुसन्धेयम्—भगवत्पादाचार्याः समयमतपारदृश्वानः समयाचारप्रवणाः समयरूपां भगवतीं स्तुवन्ति। समयाचारो नाम आन्तरपूजारतिः। कुलाचारो नाम बाह्यपूजारतिरिति रहस्यम्। एतच्च 'तवाधारे मूले सह समयया'* इत्यादिश्लोकव्याख्यानावसरे निपुणतरमुपपादयिष्यामः। श्रीचक्रस्य वियच्चक्रमिति नामान्तरमस्ति। वियच्चक्रत्वं तु वियत्पूज्यत्वात्। वियत्पूज्यत्वं द्विविधं, दहराकाशजं बाह्याकाशजं चेति। बाह्याकाशजं नाम बाह्याकाशावकाशे पीठादौ भूर्जपत्रशुद्धपटहेमरजतादिपट्टतले लिखित्वा समाराधनम्। एतदेव कौलपूजेत्याहुर्वृद्धाः। तदुत्तरत्र स्फोर्यते। दहराकाशजं नाम हृदयाकाशावकाशे चक्रस्य पूजनम्। इदमेव समयपूजेत्याहुः समयिनः। एतदप्युत्तरत्र स्फोर्यते। तत्र नवयोनिष्वधःस्थितशिवात्मकयोनिचतुष्कस्योपरि ऊर्ध्वस्थितशक्त्यात्मकयोनिपञ्चकाधःप्रदेशस्य बैन्दवस्थानस्य नाम सुधासिन्धुरिति॥

बिन्दुस्थानं सुधासिन्धुः पञ्चयोन्यस्सुरद्रुमाः।
तत्रैव नीपश्रेणी च तन्मध्ये मणिमण्टपम्॥
तत्र चिन्तामणिकृतं देव्या मन्दिरमुत्तमम्।
शिवात्मके महामञ्चे महेशानोपबर्हणे॥
अतिरम्यतरे तत्र कशिपुश्च सदाशिवः।
भृतकाश्च चतुष्पादा महेन्द्रश्च पतद्ग्रहः॥
तत्रास्ते परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी।
शिवार्कमण्डलं भित्त्वा द्रावयन्तीन्दुमण्डलम्॥
तदुद्भूतामृतस्यन्दिपरमानन्दनन्दिता।
कुलयोषित्कुलं त्यक्त्वा परं वर्षणमेत्य सा॥

---

*४१ श्लोकः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



इति भैरवयामळे वामकेश्वरमहातन्त्रे बहुरूपाष्टकविद्यायां कथितम् । 'देव्या मन्दिरमुत्तमम्' इत्यस्यार्थः—देवीमन्दिरं त्रयश्चत्वारिंशत्त्रिकोणात्मकं श्रीचक्रमुच्यते । अत उक्तं 'शिवाकारे मञ्चे' इति । त्रिकोणात्मक-श्रीचक्रस्य बैन्दवस्थानं प्रत्यङ्गत्वात्, बैन्दवस्थानस्य प्रधानत्वात्, प्रधाने गुणस्यान्तर्भावात् तदन्तर्भाव उक्त इति रहस्यम् । 'भृतकाः' इत्यस्यार्थः—भृतकाः भृत्याः द्रुहिणहरिरुद्रेश्वराः । एतच्च 'गतास्ते मञ्चत्वं द्रुहिण'* इत्यादिश्लोकव्याख्यानावसरे वक्ष्यते । 'शिवार्कमण्डलं भित्त्वा' इत्यस्यायमर्थः—शिवा नाम शक्तिः कुण्डलिनी अर्कमण्डलं हृत्कमलोपरि स्थितं भित्त्वा भिन्नं कृत्वा अवयुत्य आच्छाद्येत्यर्थः । अर्कमण्डलोपरि स्थितं ब्रह्मद्वारं पिधाय [1]सपत्रकमलान्तस्स्थितमिन्दुमण्डलं द्रावति द्रावयति । अत एव कुलयोषित् कुण्डलिनीशक्तिः, कुलं कुलमार्गं सुषुम्नामार्गं, त्यक्त्वा तत्रैवेन्दुमण्डले आस्थाय, परं वर्षणं उत्कृष्टवर्षणं, द्विसप्ततिसहस्रनाडीषु प्रवर्षणं, कृत्वेति शेषः । सा कुण्डलिनी पुनः स्वस्थानमेत्य स्वाधिष्ठानं प्राप्य स्वपितीति तात्पर्यम् । शिवादीनां [2]मञ्चत्वोपधानत्वपतद्ग्रहत्वावस्थापन्नत्वं कामरूपत्वाद्देवानां अत्यन्तासन्नसेवार्थं घटते । इममेवार्थं संक्षेपेणोक्तवान् सदाशिवः—

सुधाब्धौ नन्दनोद्याने रत्नमण्टपमध्यगाम् ।
बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहां त्रिलोचनाम् ॥
पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां [3]श्रियम् ।
ध्यात्वा च हृद्गतं [4]चक्रं व्रतस्थः परमेश्वरीम् ॥
पूर्वोक्तध्यानयोगेन चिन्तयन् [5]जपमाचरेत् ॥ इति ॥

---

* ९२ श्लोकः.

[1] सहस्रकमलान्त. [2] मञ्चत्वोपपादनं पतद्ग्रहत्वाद्देवानाम्. [3] श्रये. [4] यन्त्रम्. [5] सञ्चिन्त्य ध्यानमाचरेत्.



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अनेन 'क्वणत्काञ्चीदामा' इति 'सुधासिन्धोर्मध्ये' इति श्लोकद्वयमेकीकृत्य व्याख्यातमित्यवगन्तव्यम् ॥

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि ।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे ॥९॥

महीं पृथिवीतत्त्वं, मूलाधारे मूले गुदस्थाने सर्वाधारभूतं चक्रं मूलाधारभूतमिति, तस्मिन् मूलाधारे ।

सर्वाधारा मही यस्मात् मूलाधारतया स्थिता ।
तदभावे तु देहस्य पातस्स्यादुद्गमोऽपि वा ॥

इति रुद्ररहस्ये । पृथिवीतत्त्वात्मकस्य मूलाधारस्याभावे देह ऊर्ध्वं वा गच्छेत्, अधो वा पतेदित्यर्थः । कं उदकतत्त्वम् । अपिशब्दः स्वाधिष्ठानोक्तवह्निं समुच्चिनोति । मणिपूरे मणिपूरचक्रे, यत्र स्थिता भगवती मणिभिः तत्प्रदेशं पूरयति, स देशो मणिपूरः । समयिनां आन्तर-पूजावसरे तृतीयकमले नानाविधमणिगणखचितभूषणार्पणं देव्याः कर्तव्यमिति रहस्यम् । हुतवहं अग्नितत्त्वम्, स्थितं प्रतिष्ठितं, स्वाधिष्ठाने स्वाधिष्ठाननामके चक्रे, कुण्डलिन्याः भगवत्याः [1]स्वयमधिष्ठाय ग्रन्थिं कृत्वा अवस्थानं स्वाधिष्ठानम् । यथोक्तं योगदीपिकायाम्—

रुद्रग्रन्थिरयं शक्तेः स्वाधिष्ठानाग्रसीमनि ॥ इति ॥

---

[1] स्वेच्छयाधिष्ठाय.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



यद्यपि आधारचक्रस्योपरि स्वाधिष्ठानं वर्णनीयं, तथापि आकाशादितत्त्वोत्पत्तिक्रममवलम्ब्य व्युत्क्रमेण मणिपूरचक्रवर्णनं कृतमित्यनुमन्वेयम् । एतच्च 'तवाज्ञाचक्रस्थम्'* इत्यादिश्लोकषट्कव्याख्यानावसरे सम्यगुपवर्णितम् । हृदि हृदयाकाशे अनाहतनामनि चक्रे, अनाहतनादस्थानत्वात् अनाहतनामास्य । मरुतं मरुत्तत्त्वम्, आकाशं आकाशतत्त्वम्, उपरि पूर्वोक्तानामुपरि विशुद्धिचक्रे, शुद्धस्फटिकसङ्काशत्वात् विशुद्धिनामास्य । मनः मनस्तत्त्वम्, अपिशब्दः उक्तसमुच्चयार्थः, भ्रूमध्ये भ्रुवोरन्तराले आज्ञाचक्रे, अत्र आङ् ईषदर्थः, ज्ञा ज्ञानम्, ईषत् ज्ञानं यत्र जायते साधकानां भगवतीविषयम् । ब्रह्मग्रन्थिभेदनातिव्यग्रतया भगवत्या आज्ञाचक्रे क्षणमात्रावस्थानात् साधकानां तटिल्लेखारूपेण अवभासनात् आज्ञाचक्रनामास्य । स्थितमिति लिङ्गव्यत्ययेन सर्वत्रानुषज्यते । सकलं सर्वम्, अपिः समुच्चये, भित्त्वा (हित्वा) कुलपथं सुषुम्नामार्गम्, सहस्रारे सहस्रदले, पद्मे कमले, सह मिलित्वा, रहसि एकान्ते, पत्या सदाशिवेन, विहरसे क्रीडसे ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! मूलाधारे महीं, कं मणिपूरे हुतवहमपि, स्वाधिष्ठाने हुतवहमेव, हृदि मरुतं, आकाशमुपरि, मनोऽपि भ्रूमध्ये आकाशमपि, स्थितमिति लिङ्गव्यत्ययेन सर्वत्रानुषज्यते । सकलं कुलपथमपि भित्त्वा सहस्रारे पद्मे रहसि पत्या सह विहरसे ॥

अत्रेदमनुसन्धेयम्—मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरानाहतविशुद्ध्याज्ञात्मकानि षट् चक्राणि । एतानि पृथिव्यग्निजलपवनाकाशमनस्तत्त्वात्मकानि । तानि

---

* ३६ श्लोकः



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



तत्त्वानि तेषु चक्रेषु तन्मात्रतयाऽवस्थितानि। तन्मात्रास्तु गन्धरूपरसस्पर्शशब्दात्मकाः। आज्ञाचक्रस्थितेन मनस्तत्त्वेन एकादशेन्द्रियगणः संगृहीतः। एवमेकविंशतितत्त्वानि प्रतिपादितानि। पत्या सह रहसि सहस्रपत्रे विहरसे इत्यनेन तत्त्वचतुष्टयं सूचितम्। तच्च मायाशुद्धविद्यामहेश्वरसदाशिवात्मकं तत्त्वचतुष्टयम्। एवं मिलित्वा पञ्चविंशतितत्त्वानि [1]मायापर्यन्तानि मायया युक्तत्वात् प्राकृतानि। माया महेश्वरेण संयुक्ता सती तस्य जीवभावमापादयति। स जीवः प्राकृत एव। शुद्धविद्या तु सदाशिवेन युक्ता सती सादाख्या कलेति व्यवह्रियते। अतो भगवती चतुर्विंशतितत्त्वा[2]न्यतिक्रान्ता सदाशिवेन पञ्चविंशेन सार्धं विहरमाणा षड्विंश[3]तत्त्वात्मतामापन्ना परमात्मेति गीयते। एतदुक्तं भवति—सादाख्या कला पञ्चविंशेन सदाशिवेन मिलिता षड्विंशा भवति, मेलनस्य तत्त्वान्तरत्वात्। न चोभयोर्मेलनमुभयात्मकम्। तस्य तादात्म्यरूपत्वात् तत्त्वान्तरमेवेति रहस्यम्। यत्तु श्रुतिवाक्यं 'पञ्चविंश आत्मा भवति'* इति तत्तु सदाशिवतत्त्वप्रतिपादनपरम्, न मेलनपरमिति ध्येयम्॥

ननु बैन्दवस्थानं श्रीचक्रस्य मध्यस्थितं, शिवचक्राणां चतुर्णामुपरि शक्तिचक्राणां पञ्चानामधस्तादवस्थितत्वात्, सहस्रारपद्मस्य तु शिरस्स्थितत्वात् सर्वेषामुपरि वर्तमानत्वात् तस्य बैन्दवस्थानत्वं नोपपद्यत इति चेत्—

निशम्यतां भागवतमतरहस्यम्—

चतुर्भिश्शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः।
शिवशक्तिमयं ज्ञेयं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः॥

* तै. ब्रा. १-२-६.

[1] प्रतिपादितानि, तानीत्यधिकम्. [2] अतिक्रान्ता शिवेन. [3] तत्त्वात्मत्वमापन्ना.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



इत्यादौ शक्तिचक्राणि त्रिकोणाष्टकोणदशारद्वितयचतुर्दशकोणात्मकानि पञ्च चक्राणि । शिवचक्राणि तु अष्टदलषोडशदलमेखलात्रितयभूपुरत्रयात्मकानीति । अतः शक्तिचक्राणां बाह्यतः शिवचक्राणि । शिवस्य शक्तिबाह्यत्वायोगात् तानि शिवचक्राणि बिन्दुरूपेणाकृष्य शक्तिचक्रान्तरे स्थापितानि । अत एव बिन्दुः शिवचक्रचतुष्टयात्मकः शक्तिचक्रेषु पञ्चसु व्यश्नुवानः समाप्त इति शिवशक्त्योरैक्यमिति केचित् ॥

अन्ये तु—बिन्दुत्रिकोणयोरैक्यं, अष्टकोणाष्टदलाम्बुजयोः, दशारयुग्मषोडशदलाम्बुजयोः, चतुर्दशारभूपुरयोरैक्यम्, अनेन प्रकारेण शिवशक्त्योरैक्यमित्याहुः । अत्र बिन्दुशब्देन शिवचक्रचतुष्टयप्रतिनिधिभूतो वर्तुलाकारो लक्ष्यते, न तु चतुष्कोणमध्यवर्ती बिन्दुः । स तु सहस्रकमलान्तर्गतः आधारस्वाधिष्ठानदशदलप्रकृतिभूतः शिवशक्तिमेलनाविष्टतनुः सादाख्यं षड्विंशं तत्त्वम् । तेन सह नादबिन्दुकलानामैक्यं नास्ति, तस्य नादबिन्दुकलातीतत्वात् । एतच्च पुरस्तात्प्रपञ्चयिष्यते । अत एव सहस्रकमलान्तर्गतचन्द्रमण्डलमध्यवर्ती सुधासिन्धुरेव भगवत्या विहरणस्थानमिति 'सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे' इति 'सुधासिन्धोर्मध्ये' इति च श्लोकद्वयस्यैक एवार्थ इति रहस्यम् । इममेवार्थं भैरवयामळे चन्द्रज्ञानविद्यायां शिव आह पार्वतीम्—

चतुर्भिश्शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पञ्चभिः ।
नवचक्रैश्च संसिद्धं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः ॥
त्रिकोणमष्टकोणं च दशकोणद्वयं तथा ।
चतुर्दशारं चैतानि शक्तिचक्राणि पञ्च च ॥
बिन्दुश्चाष्टदलं पद्मं पद्मं षोडशपत्रकम् ।
चतुरश्रं च चत्वारि शिवचक्राण्यनुक्रमात् ॥
त्रिकोणे बैन्दवं श्लिष्टं अष्टारेऽष्टदलाम्बुजम् ।
दशारयोष्षोडशारं भूगृहं भुवनाश्रके ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



शैवानामपि शाक्तानां चक्राणां च परस्परम् ।
अविनाभावसम्बन्धं यो जानाति स चक्रवित् ॥
त्रिकोणमष्टकोणं च दशकोणद्वयं तथा ।
मनुकोणं चतुष्कोणं कोणचक्राणि षट् क्रमात् ॥
मूलाधारं तथा स्वाधिष्ठानं च मणिपूरकम् ।
अनाहतं विशुद्धयाख्यमाज्ञाचक्रं विदुर्बुधाः ॥
तदाधारस्वरूपाणि कोणचक्राणि पार्वति ।
त्रिकोणरूपिणी शक्तिः बिन्दुरूपश्शिवस्स्मृतः ॥
अविनाभावसम्बन्धः तस्माद्बिन्दुत्रिकोणयोः ॥ इति ॥

इतः पूर्वम्—

अधोमुखं चतुष्कोणं शिवचक्रात्मकं विदुः ॥

इत्यनुसारेण 'अधोमुखानि चत्वारि त्रिकोणानि शिवात्मकानि' इत्युक्तिः 'शिवचक्राणि बाह्यानि तद्रूपेणावस्थितानि' इत्येवंपरेति ध्येयम् ॥

यद्वा—कौलमतानुसारेण अधोमुखानि चत्वारि त्रिकोणानि शिवात्मकानि, ऊर्ध्वमुखानि पञ्च त्रिकोणानि शक्त्यात्मकानि । कौलमते संहारक्रमेण लेखने नवत्रिकोणात्मकं श्रीचक्रम् । एतत्सर्वं 'चतुर्भिश्श्रीकण्ठैः' * इत्यादिश्लोकव्याख्यानावसरे वक्तव्यमपि 'सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे' इत्यत्रावश्यं वक्तव्यत्वात् उभयोपयोगितया अत्रैव किञ्चित्कथितम् । विस्तरस्तु तत्रैवावधार्यः ॥ ९ ॥

**सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः**
**प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसः ।**
**अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं**
**स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि ॥**

* ११ श्लोः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**सुधाया** अमृतस्य **धाराणामासारैः** सम्पातैः । अत्रासारशब्द एव धारासम्पातवचन इति धाराशब्दसाहचर्यात् आसारशब्दः सम्पातमात्रवचन इति न पौनरुक्त्यम् । यद्वा—**सुधाया** आधारभूता **आसारा** धारासम्पाताः, तैः **चरणयुगलान्तर्विगलितैः** चरणयुगलस्य पादारविन्दद्वितयस्य अन्तर्विगलितैः मध्यप्रदेशात् स्रवद्भिः, **प्रपञ्चं** द्विसप्ततिसहस्रसङ्ख्याकनाडीमार्गं, **सिञ्चन्ती** सेक्त्री, **पुनरपि** सेचनानन्तरमपि, **रसाम्नायमहसः** चन्द्रसकाशात्, रसाम्नायमहश्शब्दो यामलेषु कलानिधौ प्रसिद्धः,रसस्य सुधाया आम्नायो गुणानामाधिक्यमिति यावत्, तदात्मकं महः कान्तिर्यस्य सः रसाम्नायमहा इति व्युत्पत्तेः । **अवाप्य** प्राप्य, **स्वां** स्वकीयां, **भूमिं** आधारचक्रं, **भुजगनिभं** सर्पसदृशं, **अध्युष्टवलयं** अधिष्ठितकुण्डलनाविशेषं, **स्वं** निजं **आत्मानं** **कृत्वा** धृत्वा स्वस्वरूपमवलम्ब्य उपित्वा, **स्वपिषि** निद्रासि । **कुलकुण्डे** कुः पृथिवीतत्त्वं लीयते यत्र तत्कुलं आधारचक्रम् । लक्षणया सुषुम्नामार्गः कुलमित्युच्यते । अत एव कौलाः कुलपूजकाः आधारसेवका इति कौलत्वं तेषामिति रहस्यम् । एतदुत्तरत्र प्रस्फोर्यते । कुलमार्गस्य सुषुम्नाया मूले यत्कुण्डं कमलकन्दाकारं आधारकन्दं तस्मिन् कुहरिणि, कमलकन्दमध्यस्थितछिद्रतुल्यं छिद्रं यस्य कुण्डस्य तत्तथोक्तम् । आधारकन्दमध्यस्थितसुषिरमध्ये बिसतन्तुनिभा तत्र कुण्डलिनी शक्तिः वर्तत इति तात्पर्यम् ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति ! चरणयुगलान्तर्विगलितैः सुधाधारासारैः प्रपञ्चं सिञ्चन्ती रसाम्नायमहसः सकाशात् **स्वां** भूमिं पुनरप्यवाप्य भुजगनिभमध्युष्टवलयं स्वमात्मानं कृत्वा कुहरिणि कुलकुण्डे स्वपिषि ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्रेदमनुसन्धेयम्—शिरस्स्थितं चन्द्रमण्डलं सर्वयोगशास्त्रसिद्धम्। तत्तु समयिनां मते श्रीचक्रमेव। चन्द्रमण्डलस्य षोडशकलात्मकत्वात्, श्रीविद्यायाः प्रतिपदादिषोडशदिनेषु कलावृद्धिक्षययोः वक्ष्यमाणत्वात्, चन्द्रमण्डलमेतदेव। बाह्यस्थितमपि चन्द्रमण्डलं श्रीचक्रमेवेति सुभगोदय-व्याख्याने निदर्शितम्। तत्तु महारहस्यम्। अतश्च शिरस्स्थितसहस्र-दलकमलान्तर्गतश्रीचक्रात्मकशशिबिम्बमध्यस्थिताया भगवत्याश्चरणकमल-निर्णेजनजलैः सुधामयैः साधकस्य सकलशरीरं संप्लाव्य पुनः भुजङ्गरूपेण आधारकुण्डं प्रविश्य सुषुम्नामवष्टभ्य सा भगवती स्वपितीति। यथोक्तं वामकेश्वरमहातन्त्रे—

भुजङ्गाकाररूपेण मूलाधारं समाश्रिता।
शक्तिः कुण्डलिनी नाम बिसतन्तुनिभाऽऽशुभा॥

आशुभा क्षणप्रभा विद्युन्निभेत्यर्थः।

मूलकन्दं फणाग्रेण दष्ट्वा कमलकन्दवत्।
मुखेन पुच्छं संगृह्य ब्रह्मरन्ध्रं समाश्रिता॥

पद्मासनगतस्स्वस्थो गुदमाकुञ्च्य साधकः।
वायुमूर्ध्वगतिं कुर्वन् कुम्भकाविष्टमानसः॥

वाय्वाघातवशादग्निः स्वाधिष्ठानगतो ज्वलन्।
ज्वलनाघातपवनाघातैरुन्निद्रितोऽहिराट्॥

रुद्रग्रन्थिं ततो भित्त्वा विष्णुग्रन्थिं भिनत्त्यतः।
ब्रह्मग्रन्थिं च भित्त्वैव कमलानि भिनत्ति षट्॥

सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते।
सा चावस्था परा ज्ञेया सैव निर्वृतिकारणम्॥ इति॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्रुतिरपि भगवत्याः चरणाम्बुजसुधाधारासारैः प्रपञ्चसेचनं प्रतिपादयति । तथा हि—

लोकस्य द्वारमर्चिमत्पवित्रम् ।
ज्योतिष्मद्भ्राजमानं महस्वत् ।
अमृतस्य धारा बहुधा दोहमानम् ।
चरणं नो लोके सुधितान् दधातु ॥*

अस्यार्थः—लोकस्य स्वनिवासस्थानस्य सायुज्यस्य वा साष्टर्यादेर्वा ब्रह्मलोकदेर्वा द्वारं, तत्प्रापकमित्यर्थः । अर्चिमत् अर्चींषि मयूखाः अस्य सन्तीति अर्चिमत्, अर्चिष्मदित्यर्थः । छान्दसः सकारलोपः । मयूखाः किरणाः । पवित्रं स्वयमतिशुद्धम्, अन्यशुद्धिहेतुश्च । 'ज्योतिष्मद्भ्राजमानं महस्वत्' इत्याम्रेडनं अर्चिष्मत्स्तुत्यर्थम् । यद्वा—

[1]त्रिखण्डं मातृकाचक्रं सोमसूर्यानलात्मकम् ।

इति वक्ष्यते । 'अर्चिष्मत्' इत्यनेन आग्नेयान्यर्चींष्यष्टोत्तरशतं कथ्यन्ते । 'ज्योतिष्मत्' इत्यनेन ऐन्दवानि षट्त्रिंशदुत्तरशतं ज्योतींषि निर्दिश्यन्ते । 'महस्वत्' इत्यनेन भानवीयानि षोडशोत्तरशतं महांसि किरणाः संगृह्यन्ते । एतच्च 'क्षितौ षट्पञ्चाशत्'† इतिश्लोकव्याख्यानावसरे निपुणतरमुपपादयिष्यामः । अमृतस्य धाराः सुधाप्रवाहान् बहुधा बहुप्रकारेण द्विसप्ततिसहस्रनाडीमार्गेषु दोहमानं किरत् चन्द्रमण्डलगतसुधाधाराप्रवाहान् स्वनिर्णेजनपवित्रितान् वर्षदित्यर्थः । तच्चरणं,

* तै. ब्रा. ३-१२-३.

† १४ श्लो.

[1] त्रिविधम्.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



चरणशब्दो नपुंसकः, 'पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः। नः अस्मान् साधकान् लोके प्रपञ्चे सुषितान् तृप्तान्, यद्वा—सञ्जातबुद्धिप्रकाशान् सुधियः, कृत्वा दधातु पुष्णातु ॥

नन्वयं मन्त्रः अपाधास्विष्टिषु याज्यात्वेनाम्नातः । मन्त्राणां समवेतार्थ*प्रकाशनशीलत्वात्, 'चरणाय स्वाहा' इति [1]चतुर्थ्यर्थोपहितशब्दस्यैव देवतात्वात्, एतद्व्याख्यानं न सङ्गच्छत इति चेत्—

उच्यते—अत्राहुः भगवत्पादाः—

सिद्धमन्नं परित्यज्य भिक्षामटति दुर्मतिः ।

इति । अयमाशयः—वेदस्य सकर्तृकत्वासिद्धेः फलदानसमर्थत्वेन सर्वविद्वदभिमतं वृद्धव्यवहारावसितशक्तिकं 'लोकस्य द्वारम्' इत्यादिविशेषणविशिष्टत्वार्हं भगवत्याश्चरणमेव 'चरणाय स्वाहा' इत्यत्र चरणशब्देनाभिधीयत इति ॥ १० ॥

पूर्वश्लोके इन्दुमण्डलात्मकं श्रीचक्रमित्युक्तम् । तदेव श्रीचक्रमुपदिशति—

**चतुर्भिश्श्रीकण्ठैश्शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि**
**प्रभिन्नाभिश्शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः ।**
**चतुश्चत्वारिंशद्वसुदलकलाश्रत्रिवलय-**
**त्रिरेखाभिस्सार्धं तव शरणकोणाः परिणताः ॥**

* प—स्वस्वदेवता.

[1] चतुर्थ्यन्तोपहित.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**चतुर्भिः** चतुस्सङ्ख्यासङ्ख्येयैः, **श्रीकण्ठैः**—शृणाति हिनस्तीति श्रीः विषं कण्ठे यस्यासौ श्रीकण्ठः हरः, ते कोणा अपि श्रीकण्ठाः, तादात्म्यात् तद्व्यपदेशः, अत एव बहुवचनसिद्धिः । श्रीकण्ठात्मकैरित्यर्थः । **शिवयुवतिभिः** शक्तिभिः, पूर्ववद्बहुवचनसिद्धिः । शक्त्यात्मकैरित्यर्थः । **पञ्चभिः** । **अपि**शब्दो भेदे, **प्रभिन्नाभिः** प्रकर्षेण भिन्नाभिः । प्रकर्षस्तु शिवशक्तिचक्रमध्ये बैन्दवस्थानस्य विद्यमानत्वात्, एतच्च समयमतेन सृष्टिक्रमेण पञ्चचक्रलेखने ज्ञेयम् । कौलमतेन संहारक्रमेण नवयोनिचक्रलेखने ऊर्ध्वाधोमुखतया अवस्थितेः प्रभिन्नत्वं ज्ञेयम् । तेनोभयं पृथक्पृथक् स्थितमित्यर्थः । **शम्भोः** इति पञ्चमी, शम्भुशब्देन चत्वारः श्रीकण्ठाः उच्यन्ते **नवभिः** नवसङ्ख्यैः, **अपि**-शब्दो वक्ष्यमाणबाहुल्यं समुच्चिनोति । **मूलप्रकृतिभिः** प्रपञ्चस्य मूलकारणैः, अत एव तेषां योनिशब्देन व्यवहारः । नव योनयो नवधात्वात्मकाः । तथा चोक्तं कामिकायाम्-

**त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिधातवः शक्तिमूलकाः ।**
**मज्जाशुक्लप्राणजीवधातवः शिवमूलकाः ॥**

**नवधातुरयं देहो नवयोनिसमुद्भवः ।***
**दशमी योनिरेकैव $ परा शक्तिस्तदीश्वरी ॥ इति ॥**

दशमी योनिः बैन्दवस्थानम्, तदीश्वरी तस्य देहस्येत्यर्थः ॥

---

* "जीवधातुर्नाम जीवाधिष्ठानत्वात् ओजोधातुरेव जीवधातुरित्युच्यते । तदुक्तं वाग्भटेन—रसादिशुक्रान्तानां धातूनां प्रसादश्रेष्ठो जीवाधारभूतो धातुः ओज इति" इत्ययमधिको व्याख्यानरूपः पाठः तं-पुस्तके दृश्यते.

$ 'दशमो धातुरेकैव' इति पाठान्तरम्.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



[1] एवं पिण्डाण्डमुत्पन्नं तद्वद्ब्रह्माण्डमुद्भवौ।
पञ्च भूतानि शाक्तानि मायादीनि शिवस्य तु ॥

माया च शुद्धविद्या च महेश्वरसदाशिवौ।
पञ्चविंशतितत्त्वानि तत्रैवान्तर्भवन्ति ते ॥

एकादशेन्द्रियाणि शब्दादितन्मात्राः तच्छब्देन परामृश्यन्ते।

शिवशक्त्यात्मकं विद्धि जगदेतच्चराचरम्।

चरं पिण्डाण्डं, अचरं ब्रह्माण्डमित्यर्थः ॥

केचित्तु एकपञ्चाशत्तत्त्वान्याहुः। तथाहि—

पञ्च भूतानि तन्मात्रपञ्चकं चेन्द्रियाणि च।
ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव तथा कर्मेन्द्रियाणि च ॥

त्वगादिधातवस्सप्त पञ्च प्राणादिवायवः।
मनश्चाहङ्कृतिः ख्यातिर्गुणाः प्रकृतिपूरुषौ ॥

रागो विद्या कला चैव नियतिः काल एव च।
माया च शुद्धविद्या च महेश्वरसदाशिवौ ॥
शक्तिश्च शिवतत्त्वं च तत्त्वानि क्रमशो विदुः ॥ इति ॥

एतान्येकपञ्चाशत्तत्त्वानि वायव्यसंहितादिशैवपुराणेषु सर्वेषु प्रतिपादितानि। अस्यार्थः— पञ्च भूतानि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मकानि कार्यकारण-रूपेणावस्थितानि। गन्धादितन्मात्रपञ्चकं पृथिव्यादीनां कारणभूतम्। ज्ञानेन्द्रियाणि श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मकानि। कर्मेन्द्रियाणि वाक्पाणि-पादपायूपस्थात्मकानि। धातवः त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्लानि। वायवः प्राणापानव्यानोदानसमानाः। मनः मननात्मिका शक्तिः। अहङ्कृतिः अहङ्कारजनिका शक्तिः। ख्यातिः ज्ञानम्। गुणाः सत्त्वरजस्तमांसि।

---

[1] एकं.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



प्रकृतिः मूलप्रकृतिः । पुरुषो जीवः । रागः इच्छा । विद्या शास्त्रजनितविकल्पज्ञानम् । कलाः षष्ट्युत्तरत्रिशतसङ्ख्याकाः । नियतिः नियामिका शक्तिः । कालः संहरणशक्तिः । माया ऐन्द्रजालिकादिज्ञानम् * । शुद्धविद्या मोचकज्ञानम् । महेश्वरः रजोगुणाविष्टः सृष्टिकर्ता । सदाशिवः सृष्टिस्थितिकर्ता । शक्तिः महेश्वरसदाशिवयोः रक्षणसर्जनशक्तिः । चकारात् कालात्मिका † संहारिणीशक्तिश्च । शिवतत्त्वं शुद्धबुद्धमुक्तस्वरूपम् । एतेषु सर्वेषु तत्त्वेषु कतिचन तत्त्वानि कुत्रचिदन्तर्भवन्ति । त्वगादिसप्तधातवः भूतेष्वन्तर्भवन्ति । प्राणादिवायवः वायावन्तर्भवन्ति । अतो भूतेष्वेव तेषामन्तर्भावः । अहङ्कारस्य मनस्यन्तर्भावः । ख्यातेर्विद्यायामन्तर्भावः । गुणानां प्रकृतावन्तर्भावः प्रकृतेस्तु शक्तावन्तर्भावः । पुरुषस्य महेश्वरेऽन्तर्भावः । कलायाः शुद्धविद्यायामन्तर्भावः । नियतेस्तु शक्तावेवान्तर्भावः । कालस्य महेश्वरे सदाशिवे चान्तर्भावः । शक्तेस्तु शुद्धविद्यायामन्तर्भावः । शिवतत्त्वस्य सदाशिवतत्त्वेऽन्तर्भावः । इति तत्त्वानि पञ्चविंशतिरेव । पञ्च भूतानि तन्मात्रपञ्चकं पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि मनस्तत्त्वं मायाविशुद्धविद्यामहेश्वरसदाशिवात्मकानि चत्वारि । एतानि पञ्चविंशतितत्त्वानि सर्वसंमतानि; श्रुत्यनुगृहीतत्वात् । तथा च श्रुतिः 'पञ्चविंश आत्मा भवति' § इति । अतश्च षट्त्रिंशत्तत्त्वानीत्यादितत्त्वविकल्पः श्रुत्यनुसारेण पञ्चविंशतितत्त्वपर इत्यनुसन्धेयम् । अतश्च सर्वतत्त्वातीतं शिवशक्तिसम्पुटम् । तस्मादेव जगदुत्पत्तिः । तदुक्तं सुभगोदये—

परोऽपि शक्तिरहितः शक्तः कर्तुं न किञ्चन ।
शक्तस्स्यात्परमेशानि शक्त्या युक्तो भवेद्यदि ॥ इति ॥

---

* 'काद्यज्ञानं' इति च पाठः. † 'कालस्य संहारिणी' इति पाठान्तरम्.
§ तै. ब्रा. १-२-६.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्र बहु वक्तव्यमस्ति । तत्तु सुभगोदयव्याख्यानावसरे निपुणतरमुपपादितमस्माभिरिति अलमतिविस्तरेण । प्रकृतमनुसरामः ॥

चतुश्चत्वारिंशत् एतत्संख्याभिः, वसुदलकलाश्रत्रिवलयत्रिरेखाभिः, वसवोऽष्टौ, तेन वसुशब्देन अष्टसंख्या लक्ष्यते । वसुदलं अष्टदलं, कलाश्रं—कलाः षोडश, तेन कलाशब्देन षोडशसंख्या लक्ष्यते । अश्रशब्देन दलं लक्ष्यते । अतः कलाश्रं षोडशदलमित्यर्थः । त्रिवलयं त्रयाणां वलयानां समाहारः त्रिवलयं, त्रिमेखलमित्यर्थः । त्रिरेखाः प्राकारवलयाकाररेखाः, भूपुरत्रयमित्यर्थः । एतच्च भूपुरत्रयं चतुर्दिक्षु द्वारयुक्तम् । तथाचोक्तम् ॥

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्ममन्वश्रनागदलसंयुतषोडशारम् ।
वृत्तत्रिभूपुरयुतं परितश्चतुर्द्वाः श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः ॥

इति । श्रुतिरपि—

सतद्वाऽट्टारंगमं ता । स ꣳहार्यं नगरं तव ॥*

इति । अस्यार्थः—सतद्वा, चतुर्द्वारमित्यर्थः । छान्दसोऽत्रर्णलोपश्च । अट्टारगमं अट्टारैः प्राकारवलयैः त्रिभिः अगमं दुर्गमम् । ता तानीमानि भूतानि । भगवति ! तव नगरं पुरं श्रीचक्रात्मकं संहार्यं संहारकमित्यर्थः । पृथिव्यादिमहेश्वरान्तानि तत्त्वानि तत्रैव लीयन्त इति तात्पर्यम् ॥

केचिदेवं व्याचक्षते—संहार्यं संहारक्रमेण लेखनीयमिति । तन्न, कौलमत एव संहारक्रमेण चक्रस्य लेखनीयत्वादिति ।

प्रकृतमनुसरामः—

---

* तै. आ. १–३१.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



ताभिः **सार्धं** सह, **तव** भवत्याः, **शरणकोणाः** शरणं गृहं बैन्दवं मन्दिरं, तच्च कोणाश्चेति द्वन्द्वसमासः। ततः कोणाश्चतुश्चत्वारिंशदित्यर्थः ॥

ननु बिन्दुत्रिकोणेत्यादिक्रमेण त्रिकोणबिन्दुभ्यां योगे षट्चत्वारिंशत्कोणाः बिन्दुपरित्यागे पञ्चचत्वारिंशत्कोणा इति चेत्—

सत्यं, प्रस्तारवशात् त्रिकोणस्याधस्स्थितं कोणद्वयमष्टकोणे अन्तर्गतम्। ततश्च कोणाः त्रिचत्वारिंशदेवेति ॥

शरणेन सार्धं कोणा इति द्वन्द्वसमासगत्या व्याख्यानम्। यद्वा—त्रयश्चत्वारिंशदिति पाठान्तरम्। तत्र स्पष्ट एवार्थः। **परिणताः** परिणामं प्राप्ताः। अयमर्थः—त्रिकोणाष्टकोणदशकोणयुगलचतुर्दशकोणात्मकानि शक्तिचक्राणि। अष्टदलषोडशदलमेखलात्रयभूपुरत्रयात्मकानि चत्वारि शिवचक्राणि। त्रिकोणे वसुदलं वसुकोणे षोडशदलं दशारयुग्मे मेखलात्रितयं भुवनाश्रके भूगृहं अन्तर्भूतमिति परिणतमित्युच्यते। एतच्च पूर्वमेव प्रतिपादितम् ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शम्भोस्सकाशात्प्रभिन्नाभिः पञ्चभिः शिवयुवतिभिः नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः तव शरणकोणाः वसुदलकलाश्रत्रिवलयत्रिरेखाभिः सार्धं परिणतास्सन्तः चतुश्चत्वारिंशदिति ॥

अत्रेदमनुसन्धेयम्—अस्मिन् चक्रे अष्टाविंशतिमर्मस्थानानि। सन्धयस्तु चतुर्विंशतिः ॥

ननु मर्माणि चतुर्विंशतिरेव, कथमष्टाविंशतिः?

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



द्विरेखासङ्गमस्थानं सन्धिरित्यभिधीयते ।
त्रिरेखासङ्गमस्थानं मर्म मर्मविदो विदुः ॥ इति ॥

उच्यते—अष्टदलषोडशदलमेखलात्रयभूपुरत्रयाणां शिवचक्राणां त्रिरेखासङ्गमस्थानत्वाभावेऽपि वाचनिकी मर्मसंज्ञा । यथोक्तं चन्द्रज्ञानविद्यायाम्—

मन्वश्रद्विदशाराष्टकोणवृत्तचतुष्टयम् ।
अष्टाविंशतिमर्माणि चतुर्विंशतिसन्धयः ॥ इति ॥

अस्यार्थः—चतुर्दशकोणे दशारयुग्मे अष्टकोणे च त्रिरेखासङ्गमस्थानगणनायां चतुर्विंशतिमर्मस्थानानि वृत्तचतुष्टयेन शिवचक्रात्मकेन सार्धं अष्टाविंशतिरिति ॥

एतत्सर्वं चक्रलेखनाऽपरिज्ञाने ज्ञातुं दुश्शकमिति चक्रलेखनप्रकारो निरूप्यते । स च द्विप्रकारः, सृष्टिक्रमेण संहारक्रमेण चेति । संहारक्रमेण लेखनं कौलमार्ग एव । तथापि नवयोनिपरिज्ञानार्थं स प्रकारो निरूप्यते ॥

संहारक्रमेण तावत्—वृत्तमालिख्य, वृत्तमध्ये नव रेखाः लिखित्वा, पश्चिमरेखाप्रान्ताभ्यां त्रिकोणमुत्पाद्य, स्वापेक्षया षष्ठ्या रेखया योजयेत् । एवं प्राग्रेखाप्रान्ताभ्यां त्रिकोणमुत्पाद्य स्वापेक्षया सप्तम्या रेखया योजयेत् । पश्चिमद्वितीयरेखाप्रान्ताभ्यां त्रिकोणमुत्पाद्य स्वापेक्षया अष्टम्या योजयेत् । प्राग्द्वितीयरेखाप्रान्ताभ्यां त्रिकोणमुत्पाद्य स्वापेक्षया अष्टम्या योजयेत् । ततः प्राक्पश्चिमतृतीयरेखाप्रान्ताभ्यां षट्कोणमालिखेत्* । षट्कोणमध्यस्थितह्रस्वरेखात्रितये पश्चिमरेखाप्रान्ताभ्यां त्रिकोणमुत्पाद्य स्वापेक्षया पञ्चम्या योजयेत् । एवं प्राग्रेखाप्रान्ताभ्यां त्रिकोणमुत्पाद्य स्वापेक्षया

* 'णमुत्पाद्य वृत्तेन योजयेत्' इति प. पुस्तके.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



पञ्चम्या योजयेत् । मध्यस्थितातिह्रस्वरेखाप्रान्ताभ्यां त्रिकोणमुत्पाद्य स्वापेक्षया तृतीयरेखया योजयेत् । एवं चतुर्विंशतिमर्माणि चतुर्त्रिंशतिसन्धयः, नवयोनिचक्रम् । एतत् कौलमतरहस्यम् ॥

सृष्टिक्रमस्तु समयमार्गः । स च निरूप्यते—आदौ त्रिकोणमालिख्य, मध्ये बिन्दुं निक्षिप्य, बिन्दोरुपरि त्रिकोणं [1]भित्वा त्रिकोणान्तरं प्रागग्रं विलिख्य, प्रथमत्रिकोणाग्रात् त्रिकोणान्तरं पश्चिमाभिमुखं विलिखेत् । एवं अष्टकोणचक्रमुत्पन्नम् । एतस्मादेव दशारमुत्पादयेत् । तद्यथा—अष्टकोणप्राक्पश्चिमरेखाप्रान्ताभ्यां षट्कोणमुत्पाद्य विदिग्गतमर्मस्थानेभ्यः चतुर्भ्यः चतुरस्त्रिकोणानुत्पाद्य अष्टकोणगतयोनेरुपरि दक्षिणोत्तरायतरेखा ईशानाग्निकोणत्रिकोणेषु योजयेत्, एवं पश्चिमतो योजयेत्, दशारं भवति । एतस्मादेव दशारात् पुनः दशारान्तरं उक्तरीत्या उत्पादयेत् । एतस्मादेव दशाराच्चतुर्दशारमुत्पादयेत् । तद्यथा—प्रथमदशारपूर्वपश्चिमरेखाप्रान्ताभ्यां षट्कोणमुत्पादयेत् । षट्कोणगतमर्मस्थानेभ्यः चतुर्भ्यः त्रिकोणचतुष्कमुत्पादयेत् । ततः उपरिस्थितमर्मचतुष्टयात् दशारन्यायेन त्रिकोणचतुष्कमुत्पाद्य प्राक्पश्चिमरेखा मेलयेत् । एवं त्रयश्चत्वारिंशत्कोणाः, चतुर्विंशतिसन्धयः, चतुर्विंशतिमर्माणि इति । एतत् समयमतरहस्यम् । अस्मिन् चक्रे त्रिकोणमूर्ध्वमुखं लेखनीयम् । कौलचक्रे त्रिकोणमध्यगतो बिन्दुः । समयचक्रे चतुष्कोण*मध्यगतो बिन्दुः । कौलचक्रे कोणसंख्या नास्ति, नवत्रिकोणात्मकत्वात् । नवानां त्रिकोणानां मेलने मर्मसन्धय एवोत्पद्यन्त इति महद्रहस्यम् ॥

उभयचक्रसाधारणमत ऊर्ध्वमष्टदलपद्मं, ततः षोडशदलपद्मं, ततः मेखलात्रितयम्, ततश्चतुर्द्वारयुक्तं भूपुरत्रितयम्, इति श्रीचक्रोद्धारो विज्ञातव्यः ॥

---

[1] लिखित्वा.

* 'षट्कोण' इति क्वचित् पाठः.



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्र मेरुप्रस्तारकैलासप्रस्तारभूप्रस्ताराः त्रयस्सम्भवन्ति । मेरुप्रस्तारो नाम—नित्याषोडशतादात्म्यम् । कैलासप्रस्तारो नाम—मातृकातादात्म्यम् । भूप्रस्तारो नाम —वशिन्यादितादात्म्यम् ! एतत्सर्वं 'चतुष्षष्ट्या तन्त्रैः§ इत्यादिश्लोकव्याख्यानावसरे निपुणतरमुपपादयिष्यामः ॥

अत्र रुद्रयामळे विशेष उक्तः—

पृश्नयो नाम मुनयः सर्वे चक्रसमाश्रयाः ।
सेवमानाश्चक्रविद्यां देवगन्धर्वपूजिताम् ॥
अग्नीषोमात्मकं चक्रमग्नीषोममयं जगत् ।
अग्नावन्तर्गतो भानुः अग्नीषोममयं स्मृतम् ॥
त्रिखण्डं मातृकाचक्रं सोमसूर्यानलात्मकम् ।
त्रिकोणं बैन्दवं सौम्यमष्टकोणं च मिश्रकम् ॥
चक्रं चन्द्रमयं चैव दशारद्वितयं तथा ।
चतुर्दशारं वह्नेस्तु चतुश्चक्रं च भानुमत् ॥
एतत्प्रसादादिन्द्राद्या वसवोऽष्टौ मरुद्गणाः ।
ये ये समृद्धा लोकेऽस्मिन् त्रिपुराचक्रसेवकाः ॥
पुरत्रयं च चक्रस्य सोमसूर्यानलात्मकम् ।
महालक्ष्म्याः पुरं चक्रं तत्रैवास्ते सदाशिवः ॥ इति ॥

इममेवार्थं श्रुतिरप्याह तैत्तिरीयके अरुणोपनिषत् 'इमा नुकं भुवना सीषधेम'* इत्यारभ्य 'ऋषिभिरदात् पृश्निभिः* इत्यन्ता । अरुणोपनिषन्नाम—अरुणायाः भगवत्याः प्रतिपादिका उपनिषत् । 'भद्रं कर्णेभिः,† इत्यारभ्य 'तपस्वी पुण्यो भवति'† इत्यन्ता अरुणोपनिषत् अरुणामेव प्रतिपादयति । इममर्थं दृष्टवान् अरुणकेतुः ऋषिः । श्रुत्यर्थस्तावत्—

§ ३१ श्लो. * तै. आ. १-२७. † तै. आ. १. प्रश्नः.



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



## इमा नुकं भुवना सीषधेम ॥

अस्यार्थः—पृश्नयो नाम मुनयः परस्परं सञ्जिरन्ते। इमां चक्रविद्याम्। नुकं वितर्के। भुवना भुवनानि। सीषधेम अवगच्छाम। चक्रविद्यामुपाश्रित्यैव भुवनान्यवतिष्ठन्त इति वितर्कयाम इत्यर्थः। यद्वा—इमां चक्रविद्यां भुवना भुवनात्मतया सीषधेम नु कं, नुपृच्छायाम्। 'नु पृच्छायां वितर्के च' इत्यमरः † ॥

## इन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥

अस्य वाक्यस्यार्थः स्पष्ट एव। चक्रविद्यामुपाश्रित्यैव आसत इति शेषः ॥

## यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां च ! आदित्यैरिन्द्रस्सह सीषधातु ॥

अस्यार्थः—यज्ञमग्निष्टोमादिकं नः अस्माकं तन्वं तनूं शरीरार्धं पत्नीमिति यावत्। प्रजां सन्तानम्। चकारात्सर्वास्सम्पदः। आदित्यैः मरुद्गणैः, सह इन्द्रः चक्रविद्योपासनात् प्राप्तपरमैश्वर्यः। इन्द्रश्चक्रविद्यामस्माकं उपदिश्य सीषधातु सम्पा(दयतु)दितवान्। प्राप्तकाले लोट् ॥

## आदित्यैरिन्द्रस्सगणो मरुद्भिः। अस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ॥

† नुः पृच्छायाम्। भुवनात्मतया कं पृष्ट्वा अवगच्छाम इत्यर्थः। 'नुपृच्छायां वितर्के च इत्यमरः—इति कार्वेटिनगरमुद्रितकोशे.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



मन्त्रद्वयस्यार्थः—तनूनां पुत्त्रमित्रकलत्रादीनां अविता रक्षकः भूतु भवतीत्यर्थः। इन्द्र एवास्माकं योगक्षेमसम्पादक इति भावः॥

## आप्लवस्व प्रप्लवस्व॥

पृश्नयश्लक्कविद्यां प्रस्तुवन्ति। आपादमस्तकं प्लवनं अमृतनिष्यन्द-सेचनं कुरु। प्रकर्षेण प्लवनं द्विसप्ततिसहस्रनाडीमार्गेषु आसेचनं कुरु॥

## आण्डीभव ज मा मुहुः॥

आण्डी—पिण्डाण्डं ब्रह्माण्डं च, च्विप्रत्ययान्तः। भव पिण्डाण्ड-रूपेणास्मदीयेन ब्रह्माण्डरूपेण बाह्येन भवदीयेन प्राप्नुहि, भवत्सायुज्यं देहीत्यर्थः। ज अवगच्छ। मुहुर्मामवगच्छ, अनुगृहाणेत्यर्थः। 'अज गतौ' इति धातोः अकारलोपश्छान्दसः॥

## सुखादीं दुःखनिधनाम्॥

अस्यार्थः—सुखमत्ति अदयतीति सुखादी सुखसम्पादकः इन्दुः चन्द्रः, बैन्दवस्थानगतः। खनिधनां—खं बैन्दवस्थानमेव नितरां धनं यस्यास्सा ताम्। यद्वा—सुखादीं सुखप्रथमां सुखात्मिकाम्। दुःखस्य निधनं नाशो यत्रेति दुःखनिधनां, अविज्ञातदुःखगन्धामित्यर्थः। यद्वा—सुखादीं शोभनेन खेन इन्द्रियेण मनसा आदीं आद्यां, मनोवेद्यामित्यर्थः। दुःख-निधनां दुःखानां दुष्टेन्द्रियाणां चक्षुरादीनां अगोचरामिति॥

## प्रतिमुञ्चस्व स्वां पुरम्॥

स्वां भागवतीं पुरं देहं रेफान्तःशब्दः, प्रतिमुञ्चस्व अधितिष्ठ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



मरीं॑चयस्स्वायंभु॒वाः ॥

अस्यार्थः—स्वयं भगवत्याः सकाशात् भवा उत्पन्नाः मरीचयो मयूखाः। सर्वाणि भुवनानि आवृत्य वर्तन्त इति वाक्यशेषः। सूर्यचन्द्राग्नीनां प्रकाशकत्वं स्वायंभुवमरीचिप्रसादादेवेति उत्तरत्र वक्ष्यते॥

ये श॑री॒राण्यं॑कल्पयन् ॥

अस्यार्थः—ये मयूखाः षष्ट्युत्तरत्रिशतसङ्ख्याकाः शरीराणि कालात्मकानि षष्ट्युत्तरत्रिशतसङ्ख्याकानि दिनानि, तान्येव संवत्सरः, 'संवत्सरो वै प्रजापतिः'* इति श्रुतेः॥

ते तें दे॒हं क॑ल्पयन्तु ॥

ते मरीचयः, ते तव भगवत्याः, देहं कल्पयन्तु देहमाश्रयन्तु। देहशब्देन देहावयवचरणमुच्यते। भवच्चरणोत्पन्ना इत्यर्थः॥

मा चं॑ ते॒ ख्या स्मं तीरिषत् ॥

ते तव ख्या ख्यतिः ज्ञानं मा च तीरिषत् अस्मान् न जहातु, भवद्विषयज्ञानं अस्माकं सदा सिध्यत्वित्यर्थः॥

इतः परं पृश्नयश्चक्रविद्यानुष्ठाने त्वरमाणाः परस्परं सञ्जिरन्ते—

उत्ति॑ष्ठ॒त मा स्व॑प्त। अ॒ग्निमिं॑च्छध्वं॒ भार॑ताः।
राज्ञ॒स्सोमं॑स्य तृ॒प्तासः। सूर्ये॑ण स॒युजोषसः॥

*तै. ब्रा. १-६-२.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri


ऋचोऽयमर्थः—हे भारताः भायां भारूपायां ज्योतीरूपायां चक्रविद्यायामिति यावत्, रताः उपासनारताः । यद्वा—भारत्याः सरस्वत्याः श्रीविद्यायाः उपासकाः । सामान्यविहितप्रत्ययस्य विशेषवाचित्वात् भारता इति । उत्तिष्ठत उपासनोपक्रमं कुरुत । मा स्वप्त अप्रमत्ता भवत । अग्निमिच्छध्वं स्वाधिष्ठानगताग्निं प्रज्वलयत । राज्ञश्चन्द्रस्य । उमया सहितः सोमः । चन्द्रमण्डलान्तर्गतबैन्दवस्थानगतत्वात् देव्याः, चन्द्रस्य सोमशब्दवाच्यत्वसिद्धिः । तस्य चन्द्रस्य निष्यन्दैः तृप्तासः तृप्ताः । सूर्येण अनाहतचक्रविशुद्धिचक्रयोर्मध्ये स्थितेन सूर्येण, सयुजा अग्निचन्द्रयोर्मध्यवर्तिना इत्यर्थः । यद्वा—सूर्येण सयुजा राज्ञा तृप्तास इत्यन्वयः । कीदृशाः?—उपसः प्लुष्टमायामयक्लेशाः । यद्वा—उपसः उषःकाले ध्यानरताः, तस्मिन् काल एव भगवतीनिदिध्यासनादेर्विहितत्वात् ॥

इतःपरं पूजासामग्रीमुपदिशन्ति पृक्षयः—

## युवा सुवासाः ॥

युवा दृढाङ्गः स्वस्थः । सुवासाः शुभ्रवस्त्रः । इदं शुभ्राभरणशुभ्रमाल्यादीनामुपलक्षकम् । एवंविधस्सन् पूजयेदिति शेषः ॥

श्रीचक्रस्य स्वरूपं तावदाहुः—

## अष्टाचक्रा नवद्वारा ॥

अष्टकोण—दशकोणद्वितय—चतुर्दशकोण—अष्टपत्र—षोडशपत्र-त्रिवलय-त्रिरेखात्मकानि अष्टौ चक्राणि यस्यास्सा अष्टाचक्रा । अत एव नवद्वारा नवसङ्ख्याकानि द्वाराणि त्रिकोणरूपाणि यस्यास्सा नवद्वारा ॥

## देवानां पूरयोध्या ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



देवानामिन्द्रादीनां पूज्यत्वेन सम्बन्धिनी पूः श्रीविद्यानगरम् । यद्वा—दीव्यन्तीति देवाः पञ्चविंशतितत्त्वानि, तेषां पूरधिष्ठानम् । यद्वा—सूर्यचन्द्राग्नीनां पूः, सोमसूर्यानलात्मकत्वात् श्रीचक्रस्य । तस्य पुरत्रयसमष्टिरूपत्वात् पूरित्येकवचनसिद्धिरिति ध्येयम् । अयोध्या असाध्या, मन्दभाग्यानामिति शेषः ॥

तस्या॑ᳪ हिर॒ण्मयः॑ को॒शः । स्व॒र्गो॑ लो॒को ज्यो॒ति॒षाऽऽवृ॑तः ॥

अस्यार्थः—तस्यां पुरि श्रीचक्रमध्ये हिरण्मयः कोशः, सहस्रदलकमलकोश इत्यर्थः, बैन्दवस्थाने सहस्रदलकमलकोशस्य विद्यमानत्वात् । तस्य कोशस्य ज्योतिषा स्वर्गो लोकः आवृतः । ज्योतिर्लोकः स्वर्गलोक इत्यर्थः ॥

अथ पृश्नयः चक्रविद्योपासनायाः फलमाहुः—

यो वै तां॑ ब्रह्म॑णो वे॒द । अ॒मृते॑नावृ॒तां पुरी॑म् ।
तस्मै॑ ब्रह्म च॑ ब्र॒ह्मा च । आ॒युः की॒र्तिं॑ प्र॒जां द॑दुः ॥

अयमर्थः—ब्रह्मणः ब्रह्मस्वरूपायाः भगवत्याः तां पूर्वोक्तां अमृतेन आवृतां चन्द्रमण्डलगलत्पीयूषधारावृतां पुरीं श्रीचक्ररूपां त्रिपुरायाः पुरं यो वेद ज्ञानपूर्वकमर्चनं करोति तस्मै विदुषे अर्चकाय, ब्रह्म च ब्रह्मस्वरूपा भगवती, ब्रह्मा च ब्रह्मरूपो भगवान् । चकारद्वयं उभयोर्मेलनं समुच्चिनोति, मिलितयोरेव बैन्दवस्थाने सहस्रारे सुधासिन्धुमध्ये मणिद्वीपे चिन्तामणिगृहे निवासात् । एतौ उभौ आयुः जीवितं कीर्तिं यशः, प्रजां सन्तानं, ददुः दद्यातां इत्यर्थः । 'व्यत्ययो बहुलम्' इति वचनव्यत्ययः ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



शिवशक्त्योः तत्रैव निवासमाहुः—

**वि॒भ्राज॑मानाꣳ ह॒रिणी॑म् । य॒शसा॑ संप॒रीवृ॑ताम् ।**
**पुरꣳ हि॒रण्म॑यीं ब्र॒ह्मा । वि॒वेशा॑प॒रा॒जि॑ता ॥**

ऋचोऽयमर्थः—विभ्राजमानां—अनन्तकोटिसंख्याककिरणैरिति शेषः, प्रकाशमानाम् । हरिणीं हिरण्यवर्णां, 'हिरण्यवर्णां हरिणीं *इति श्रुतेः । यशसा कीर्त्या सम्यक्परिवृताम्, ये ये लोके कीर्तिमन्तस्ते सर्वे भगवती-प्रसादरूमासादितकीर्तिमन्त इत्यर्थः । तां बैन्दवीं पुरं चिन्तामणिगृहं, ब्रह्मा सदाशिवः, 'ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्'† इति श्रुतेः पुल्लिङ्ग-ब्रह्मशब्दसदाशिवशब्दयोः एक एवार्थः प्रतीतः । विवेश अपराजिता साद.ख्या चन्द्रकला विवेश । वाक्यद्वयेन उभयोः प्रवेशभेदप्रतिपादनं "बैन्दवे चिन्तामणिगृहे सदाशिवः सर्वदा सन्निहितः; अपराजिता कुण्डि-लिनीशक्तिः षट्चक्राणि भित्वा भूयो भूयः प्रविशति" इतीममर्थं ज्ञापयितुम् ॥

शिवशक्त्योः तस्मिन् चक्रे अवस्थितिप्रकारमाहुः—

**परा॒ङेत्य॑ज्याम॒यी । परा॒ङेत्य॑नाश॒की ॥**

अस्यार्थः—पराङ् अधोमुखी [1]चक्ररूपिणी शिवशक्त्योर्मध्ये शक्तिः अज्यामयी [2]ज्यानिरहिता नाशरहिता नित्या दुःखरहिता आनन्दमयी इत्यर्थः । एति वर्तते । यद्वा—अज्यामयी, ज्या भूमिः तेन पञ्चभूतानि

---

* श्रीसूक्ते.

† तै. उ. ४–२९.

[1] चन्द्ररूपिणी. [2] ज्याविरहिता.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



लक्ष्यन्ते, तन्मयी न भवतीत्यज्यामयी, मनस्तत्त्वादिमयी, शिवचक्रात्मकचतुर्योन्यात्मिकेति यावत्, शिवयोनीनां बैन्दवस्थानादधः अवाङ्मुखतया अवस्थानात् । अनाशकी नाशरहिता शक्तिचक्रात्मकपञ्चयोन्यात्मिका । पराङ् अधोमुखी एति, शक्तियोनीनामपि शिवयोन्यपेक्षया अवाङ्मुखत्वात् । एवं शिवयोनिशक्तियोन्योः परस्परमवाङ्मुखत्वं चक्रलेखनक्रमादवगम्यते ॥

विदुषः फलमाहुः—

**इह चामुत्रं चान्वेति । विद्वान् देवासुरानुभयान् ॥**

दीव्यन्तीति देवाः एकादशेन्द्रियाणि । असुराः असवः प्राणाः प्राणादिपञ्चवायवः तान् रान्ति आददत इति पञ्च तन्मात्रा* उच्यन्ते । उभयान् उभयत्र देवासुरेषु अन्वितान् मायाशुद्धविद्यामहेश्वरसदाशिवान् । यो विद्वान् पञ्चविंशतितत्त्वजातं विदित्वा शिवशक्तिसम्पुटात्मकं पञ्चविंशतितत्त्वविलक्षणं षड्विंशतत्त्वं यस्तु वेत्ति स विद्वान् इह च इह लोके, पूजातारतम्यवशात्, अमुत्र च परलोके, सार्ष्टिसालोक्यसामीप्यसारूप्यसायुज्यात्मिकया पञ्चविधया मुक्त्या अन्वेति युज्यते । साष्टर्यादिस्वरूपं सप्रपञ्चं पुरस्तात्† प्रपञ्च्यते ॥

अथ देवासुरोभयज्ञानोपायमाहुः—

**यत्कुमारी मन्द्रयते । यद्योषिद्यत्पतिव्रता ।**
**अरिष्टं यत्किंच क्रियते । अग्निस्तदनुवेधति ॥**

अयमर्थः—कुण्डलिनीशक्तेरवस्थात्रयं विद्यते । यस्मिन् चक्रे कुमारी कौमारावस्थामापन्ना प्रथमं सुप्तोत्थिता मन्द्रयते मन्द्रस्वरं करोति, कुण्डलिन्यास्सर्पात्मकत्वात् । सर्पो हि सुप्तोत्थाने मन्द्रस्वरं करोति, तद्वदित्यर्थः ।

* 'महदादयः' इत्यधिकः पाठः क्वचित् दृश्यते.  † ९९ श्लोकव्याख्याने.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



यद्योषित् यस्मिन् चक्रे कुलयोषित् विष्णुग्रन्थिपर्यन्तं गत्वा, रातीति शेषः ।

कुलयोषित् कुलं त्यक्त्वा राति विष्णोः प्रभेदने ।

इति सनत्कुमारवचनात् । यत् यस्मिन् चक्रे पतिव्रता पत्या सदाशिवेन सार्धं सहस्रदलकमले विहरमाणा । रिष्टं शुभाभावं 'रिष्टं क्षेमे शुभाभावे' इत्यभिधानात्, तदन्यदरिष्टं शुभं, अमृतास्वादमित्यर्थः, यत्किञ्चित्क्रियते तत् स्वाधिष्ठानगतोऽग्निः अनुवेधति सहायं करोति । अतश्च अभ्यासवशात् वायुना अग्निं प्रज्वाल्य अग्निशिखानुविद्धविलीनचन्द्रमण्डलगलत्पीयूषधारानुभवे पञ्चविंशतितत्त्वातीता परमेश्वरी इति ज्ञातुं सुशकमित्युपदेशः ॥

चक्रविद्योपासनं वर्णिनां आश्रमिणां ज्ञानिनामज्ञानिनां च फलदायकमित्यभिसन्धायाहुः—

**अशृ॒ता॑सश्शृ॒ता॑स॒श्च । य॒ज्वा॑नो॒ येऽप्य॑य॒ज्वनः॑ । स्व॑र्यन्तो॒ नापे॑क्षन्ते ॥**

अयमर्थः—अशृतासः अपक्काः, अक्षपितान्तःकरणकल्मषा इत्यर्थः । शृतासश्च पक्काश्च--'आज्जसेरसुक्' इत्यसुगागमः, क्षपितान्तःकरणकल्मषा इत्यर्थः । यज्वानः यजनशीलाः त्रैवर्णिकाः आश्रमिणश्च । अयज्वनः यागरहिताः शूद्रादयः । 'तस्माच्छूद्रो य॒ज्ञेऽन॑वक्लृ॒प्तः'* इति श्रुतिः त्रैवर्णिकैकनियताधिकारयज्ञशब्दवाच्याग्निष्टोमादिपरा । चक्रविद्योपासने शूद्राणामपि अधिकारचोदनात्, निषादस्थपतिवत् वैदिके कर्मण्यधिकारसिद्धेः न काचित् क्षतिः । यन्तः, इण् गतौ, चक्रविद्यामवगच्छन्तः स्वः स्वर्गं नापेक्षन्ते ॥

---

* तै. सं. ७-१-१,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



चक्रविद्योपासनाव्यतिरेकेण देवतान्तरोपासनायामनिष्टमाहुः--

**इन्द्रमग्निं च ये विदुः। सिकता इव संयन्ति।**
**रश्मिभिस्समुदीरिताः। अस्माल्लोकादमुष्माच्च॥**

अयमर्थः---सुरासुरमुख्यवन्दितचरणारविन्दायाः सर्वभूतान्तर्यामिन्याः सर्वव्यापिन्याः जगदुत्पत्तिस्थितिलयहेतोश्चक्रविद्याया अन्यत्वेन ये इन्द्रमग्निं, चकारात् यमादिलोकपालान् पृथिव्यादिसदाशिवान्ततत्त्वानि च, उपास्यत्वेन ये विदुः ते सिकता इव वालुकाकणा इव संयन्ति, परस्परं विरलाः भ्रष्टा भवेयुरित्यर्थः। किञ्च—रश्मिभिः यमपाशैः उत्तरप्रबन्धे 'अपेत वीत' इत्यादौ प्रतिपादितैः, समुदीरिताः संयता बद्धा भवेयुः इत्यर्थः। किञ्च—अस्माल्लोकात् अमुष्माल्लोकाच्च भ्रष्टा भवेयुरिति शेषः। अत एव श्रुत्यन्तरम्—

**अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते॥**†

अयमर्थः—अविद्यां विद्याविरुद्धां ज्ञानमार्गविरुद्धां इन्द्रादिसेवां 'वाचं धेनुमुपासीत'* इत्येवमध्यारोपितसेवां च ये कुर्वते ते अविद्वांसः अन्धं तमः प्रविशन्ति अन्धतामिस्रं प्रविशन्तीत्यर्थः। चकारः प्रकरणसमाप्तिद्योतकः॥

**ऋषिभिरदात् पृश्निभिः॥**

पृश्निनामभिः ऋषिभिः एतत्सर्वमदात्, अदायि। कर्मणि लुङ् छान्दसः कर्मणिप्रत्ययलोपः, कर्तृप्रत्ययव्यत्ययश्च। ऋषिभिः पृश्निभिरेवमुक्तमित्यर्थः। यद्वा–पृश्निभिः ऋषिभिः सहितः ऋषिसङ्घः एवमदात्, वाचमिति शेषः, उक्तवानित्यर्थः॥ ११॥

---

† ई. उ. ९, *बृ. ७८-१.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**त्वदीयं सौन्दर्यं तुहिनगिरिकन्ये तुलयितुं**
**कवीन्द्राः कल्पन्ते कथमपि विरिञ्चिप्रभृतयः ।**
**यदालोकौत्सुक्यादमरललना यान्ति मनसा**
**तपोभिर्दुष्प्रापामपि गिरिशसायुज्यपदवीम् ॥**

**त्वदीयं** तव सम्बन्धि त्वद्देहगतमित्यर्थः । **सौन्दर्यं** लावण्यम् । **तुहिनगिरिकन्ये** तुहिनप्रधानो गिरिः हिमाद्रिः, तस्य कन्या पुत्री, तस्याः सम्बुद्धिः । **तुलयितुं** तुल्या समीकर्तुम् । **कवीन्द्राः** विद्वच्छ्रेष्ठाः **कल्पन्ते** शक्नुवन्ति, **कथमपि** कथंचिदपि, न कल्पन्त इत्यर्थः । **विरिञ्चिप्रभृतयः** विरिञ्चिः ब्रह्मा प्रभृतिर्येषां ते हरीन्द्रादयः । **यत्** यस्मात्कारणात् **आलोकौत्सुक्यात्** आलोके भवत्सौन्दर्यालोके यदौत्सुक्यं तस्मात्, ल्यब्लोपे पञ्चमी, औत्सुक्यमवलम्ब्य । यद्वा—निमित्तपञ्चमी । **अमरललनाः** देवयोषितः, **यान्ति** प्राप्नुवन्ति, **मनसा** अन्तःकरणेन, **तपोभिः** तपस्याभिः कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः **दुष्प्रापां** प्राप्तुमशक्यां, अपिर्विरोधे, **गिरिशसायुज्यपदवीम्** ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे तुहिनगिरिकन्ये ! त्वदीयं सौन्दर्यं तुलयितुं विरिञ्चिप्रभृतयः कवीन्द्राः कथमपि कल्पन्ते । यद्यस्मात्कारणात् अमरललनाः आलोकौत्सुक्यात् तपोभिः दुष्प्रापामपि गिरिशसायुज्यपदवीं मनसा यान्ति ॥

अयमर्थः—वाणीपतिवाचस्पतिप्रभृतीनामपि त्वत्सौन्दर्यं सदृशान्तरं परिकल्प्य वर्णयितुमशक्यम्, त्वत्सदृशसुन्दरवस्त्वन्तराभावात् । ऊर्वशीतिलोत्तमादीनामप्सरसां त्वत्सौन्दर्यलेशतुलायामपि तत्कोटिप्रवेशो दूरत एवापास्तः । यतश्चाप्सरसः त्वत्सौन्दर्यदर्शने [1]पुम्भावं प्रार्थयमानाः पुरुषान्तरदुरधिगमे त्वत्सौन्दर्यवस्तुनि सदाशिवैकगम्ये दुर्लभसदाशिवसायुज्यमनोरथा

[1] इत्थं भावम्.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



वर्तन्त इति । स्वयमेवाप्सरसः स्वसौन्दर्ये जुगुप्सितवत्य इति भावः ॥

अत्र अनन्वयालङ्कारो ध्वन्यते, लोके क्वापि तुल्यवस्तुनोऽसद्भावात् स्वस्य स्वयमेव तुल्यमिति प्रतीतेः ॥ १२ ॥

**नरं वर्षीयांसं नयनविरसं नर्मसु जडं**
**तवापाङ्गालोके पतितमनुधावन्ति शतशः ।**
**गलद्वेणीबन्धाः कुचकलशविस्रस्तसिचयाः**
**हठात्त्रुट्यत्काञ्च्यो विगलितदुकूला युवतयः ॥**

नरं मनुष्यमात्रं, **वर्षीयांसं** अतिवृद्धं, **नयनविरसं** नयनाभ्यां विरसं काचकामिलपटलादिनेत्रदोषयुक्तम्, **नर्मसु जडं** नर्मसु रतिकलासु जडं अतिमूढम्, तव भवत्याः **अपाङ्गालोके** कटाक्षवीक्षणे, **पतितं** कटाक्षैकगोचरमित्यर्थः, **अनुधावन्ति** अनुधावमानाः **शतशः** शतसङ्ख्याकाः, शतशब्दः सङ्ख्यातीतोपलक्षकः, भूर्भुवस्स्वर्लोकस्थिताः सर्वा इत्यर्थः । **गलद्वेणीबन्धाः**, गलन्तो वेणीबन्धा यासां ताः, **कुचकलशविस्रस्तसिचयाः** कुचकलशाभ्यां विस्रस्ताः शिथिलाः सिचयाः चेलाञ्चला यासां ताः, **हठात्त्रुट्यत्काञ्च्यः** हठात् शीघ्रं त्रुट्यन्त्यः गलन्त्यः काञ्च्यो रशनाकलापाः यासां ताः, **विगलितदुकूलाः** स्रस्तनीवीबन्धाः, **युवतयः** तरुण्यः ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति ! वर्षीयांसं नयनविरसं नर्मसु जडं तवापाङ्गालोके पतितं नरं शतशः युवतयः गलद्वेणीबन्धाः कुचकलशविस्रस्तसिचयाः हठात्त्रुट्यत्काञ्च्यः विगलितदुकूलाः सत्यः तादृशं नरं मदनमिति मत्वेति शेषः, अनुधावन्ति ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



एतादृशान् मादनप्रयोगान् 'मुखं बिन्दुं कृत्वा'* इत्यादिश्लोकव्याख्यानावसरे निपुणतरमुपपादयिष्यामः ॥ १३ ॥

**क्षितौ षट्पञ्चाशद्द्विसमधिकपञ्चाशदुदके**
**हुताशे द्वाषष्टिश्चतुरधिकपञ्चाशदनिले ।**
**दिवि द्विषट्त्रिंशन्मनसि च चतुष्षष्टिरिति ये**
**मयूखास्तेषामप्युपरि तव पादाम्बुजयुगम् ॥**

**क्षितौ** पृथिवीतत्त्वयुक्ते मूलाधारे **षट्पञ्चाशत्** षडुत्तरपञ्चाशत्संख्याकाः, **द्विसमधिकपञ्चाशत्** द्वाभ्यां समधिकाः पञ्चाशत् **उदके** उदकतत्त्वयुक्ते मणिपूरस्थाने, **हुताशे** वह्नितत्त्वयुक्ते स्वाधिष्ठानचक्रे, **द्वाषष्टिः** द्वौ च षष्टिश्च द्वाषष्टिः । 'विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम्' इति सूत्रेण द्विशब्दादिकारस्य आकारः । **चतुरधिकपञ्चाशत्** चतुस्संख्यया अधिकाः पञ्चाशत्, **अनिले** वायुतत्त्वयुक्ते अनाहतचक्रे, **दिवि** आकाशतत्त्वयुक्ते विशुद्धिचक्रे **द्विष्षट्त्रिंशत्** द्विरावृत्तषट्त्रिंशत्संख्याकाः द्विसप्ततिसङ्ख्याका इत्यर्थः, **मनसि** मनस्तत्त्वयुक्ते आज्ञाचक्रे, **चतुष्षष्टिः** । इति एवंप्रकारेण ये प्रसिद्धाः शास्त्रेषु आगमेषु, स्वसंवेद्यत्वेन च योगिनां प्रसिद्धाः **मयूखाः** सन्ति **तेषां** मयूखानां **अप्युपरि** सहस्रदलमध्यवर्तिचन्द्रबिम्बात्मके बैन्दवापरनामके सुधासिन्धौ, **तव** भवत्याः, **पादाम्बुजयुगं** वर्तते विद्यते । एवं समयसम्प्रदाय इति शेषः ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति ! ये मयूखाः क्षितौ षट्पञ्चाशत्, उदके द्विसमधिकपञ्चाशत्, हुताशे द्वाषष्टिः, अनिले चतुरधिकपञ्चाशत्,

* १९ श्लोकः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



दिवि द्विषट्त्रिंशत्, मनसि चतुष्षष्टिः, इति तेषामुपरि तत्र पादाम्बुजयुगं वर्तते इति शेषः ॥

अत्र षट्पञ्चाशदित्यादिसङ्ख्याशब्दानां सङ्ख्येयपरत्वात् सङ्ख्येयानां मयूखानां बहुत्वेऽपि एकवचनान्तत्वमेव । यथा–

**विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वाः सङ्ख्येयसंङ्ख्ययोः ।**
**सङ्ख्यार्थे द्विबहुत्वे स्तः .......॥**

न तु संख्येये इति नियमात् । संख्येयानां मयूखानां नियमाप्रसक्तेः बहुवचनान्तत्वं सिद्धम् । अत्रेदं तत्त्वम्–षट्पञ्चाशदित्यादिसंख्यानां संख्येयविशेषणत्वेऽपि न शुक्लादिगुणतौल्यं, यथाऽऽह पदमञ्जरीकारः–विंशत्यादयो गुणाः न शुक्लादिभिः गुणैः समानधर्माणो भवितुमर्हन्ति । विंशत्यादयो हि तावत् पृथक्त्वयोगिषु द्रव्येषु वर्तन्त इति व्यासज्यवृत्तयः, शुक्लादयस्तु प्रत्येकपर्यवसायिनः' इति । अत्रेदमतिरहस्यम्–संख्येयपराणां संख्याशब्दानां बहुवचने षट्पञ्चाशतो मयूखा इति प्राप्तौ षट्त्रिंशदुत्तरशतोत्तरत्रिसहस्रसंख्याकाः भवेयुः । अतो न विवक्षितार्थसिद्धिरिति नियमफलमिति ॥

अत्रेदमनुसन्धेयम्–आधारस्वाधिष्ठानमणिपूरानाहतविशुद्धयाज्ञाचक्रात्मकं श्रीचक्रं त्रिखण्डं सोमसूर्यानलात्मकम् । मूलाधारस्वाधिष्ठानचक्रद्वयमेकं खण्डम् । मणिपूरानाहतचक्रद्वयमेकं खण्डम् । विशुद्धयाज्ञाचक्रद्वयमेकं खण्डम् । अत्र प्रथमखण्डोपरि अग्निस्थानम् । तदेव रुद्रग्रन्थिरित्युच्यते । द्वितीयखण्डोपरि सूर्यस्थानम् । तदेव विष्णुग्रन्थिरित्युच्यते । तृतीयखण्डोपरि चन्द्रस्थानम् । तदेव ब्रह्मग्रन्थिरित्युच्यते । 'सोमसूर्यानलात्मकं' इति अवरोहणक्रमेणावगन्तव्यम् । तत्र प्रथमखण्डोपरि स्थितो वह्निः स्वज्वालाभिः प्रथमखण्डमावृणोति । द्वितीयखण्डोपरि स्थितः सूर्यः स्वकीयैः किरणैः द्वितीयखण्डमावृणोति । तृतीयखण्डोपरि स्थितः चन्द्रः स्वकलाभिः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



तृतीयखण्डमावृणोति। आधारचक्रे महीतत्त्वात्मके वह्नेः षट्पञ्चाशज्ज्वालाः, मणिपूरके उदकतत्त्वात्मके स्वोपरिस्थिते द्विपञ्चाशज्ज्वालाः। एवमष्टोत्तरशतं वह्नेः ज्वालाः। सूर्यस्य अग्नितत्त्वात्मके स्वाधिष्ठाने द्वाषष्टिकिरणाः, अनिलतत्त्वात्मके अनाहतचक्रे चतुःपञ्चाशत्किरणाः। सूर्यकिरणानां मणिपूरं विहाय स्वाधिष्ठानप्रवेशः सूर्याग्न्योरेकत्वात्, सूर्यान्तर्भावादग्नेश्च। स्वाधिष्ठानमणिपूरयोस्तु सूर्याग्निस्थानयोः मध्ये अग्निस्थाने सूर्यप्रवेशः सूर्यस्थाने अग्निप्रवेशः जगद्दहनाग्निशामक*संवर्तमेघात्मकसूर्यकिरणजनितवर्षोत्पत्त्यर्थम्। एतत्तु 'तटित्वन्तं शक्त्या'† इत्यादिश्लोकव्याख्यानावसरे निपुणतरमुपपादयिष्यामः। एवं सूर्यस्य षोडशोत्तरशतं किरणा भवन्ति। चन्द्रस्य कलाः वियत्तत्त्वात्मके विशुद्धिचक्रे द्विसप्ततिः, मनस्तत्त्वात्मके आज्ञाचक्रे चतुष्षष्टिः। एवं चन्द्रस्य षट्त्रिंशदुत्तरशतं कलाः भवन्ति। यथोक्तं भैरवयामळे भैरवाष्टकप्रस्तावे—

> अष्टोत्तरशतं वह्नेः षोडशोत्तरकं रवेः।
> षट्त्रिंशदुत्तरशतं चन्द्रस्य च विनिर्णयः॥ इति।

एवं सोमसूर्यानलाः पिण्डाण्डब्रह्माण्डे आवृत्य वर्तन्ते। पिण्डाण्डब्रह्माण्डयोरैक्यात् पिण्डाण्डावृतिरेव ब्रह्माण्डावृतिरिति रहस्यम्। एवं पिण्डाण्डमतीत्य= वर्तते सहस्रकमलम्। तच्च ज्योत्स्नामयो लोकः। तत्रत्यश्चन्द्रमा नित्यकलः। एतच्च 'तवाज्ञाचक्रस्थम्' § इत्यादिश्लोकव्याख्यानावसरे निपुणतरमुपपादयिष्यामः। 'आज्ञाचक्रोपरि स्थितश्चन्द्रः' इति यदुक्तं तत्तु चन्द्रकलावस्थानमात्रम्, न तु चन्द्रस्य स्थानमिति। यदुक्तं सुभगोदये—षोडशकलानां षोडशनित्यात्मकत्वात्, तासां प्रतिपदादिशुक्लपक्षकृष्णपक्षतिथ्यात्मकतया वृद्धिक्षयसद्भावात्, चन्द्रस्यापि सहस्रकमलगतस्य वृद्धिक्षयौ भवत एवेति,

---

* 'नामक' इत्यपि पाठः, † ४० श्लोकः, = 'आवृत्य' इत्यपि पाठः § ३६ श्लोकः,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



तत्तु चन्द्रमसः वृद्धिक्षयौ न भवतः, किन्तु षोडशनित्यात्मकाः षोडशचन्द्रकलाः* प्रतिपदादिपौर्णमास्यन्ततिथिप्रवर्तिकाः, तथैव कृष्णप्रतिपदमारभ्य अमावास्यान्त† तिथिप्रवर्तिकाः स्वात्मतिरोधानातिरोधानाभ्यामिति मन्त्रविद्रहस्यम् ॥

इदमत्रानुसन्धेयम्—श्रीविद्यायाः चन्द्रकलाविद्यापरनामधेयायाः पञ्चदशतिथिरूपत्वात् षष्ट्युत्तरत्रिशतं मयूखाः दिवसात्मकाः, तेन संवत्सरो लक्ष्यते । तस्य कालशक्त्यात्मकस्य संवत्सरस्य प्रजापतिरूपत्वात्, प्रजापतेः जगत्कर्तृत्वात्, मरीचीनां जगदुत्पत्तिस्थितिलयकरत्वम् । ते च मरीचयः अस्मिन् ब्रह्माण्डे पिण्डाण्डे च षष्ट्युत्तरत्रिशतसंख्याकाः । एवं अनन्तकोटिपिण्डाण्डब्रह्माण्डेषु । एवमेव प्रतिब्रह्माण्डं प्रतिपिण्डाण्डं षष्ट्युत्तरत्रिशतसंख्याकाः मयूखाः । अतश्चानन्तमयूखाः । ते च मयूखाः सूर्यचन्द्राग्निसम्पृक्ताः भगवतीपादारविन्दजन्मानः तान् तान् लोकान् प्रकाशयन्ति । अयं च लोकस्य द्वारमर्चिमत्पवित्रम्' § इति श्रुत्या मयूखानां भगवतीपादारविन्दसम्भव उक्तः । तथैव च 'मरीचयस्स्वायंभुवाः' ≡ इति श्रुत्या तेषां मरीचीनां सृष्टिस्थितिलयकरत्वमुक्तम् । एतदुक्तं भवति—सूर्यचन्द्राग्नयः भगवतीपादारविन्दोद्भूतानन्तकोटिकिरणमध्ये कतिपयान् किरणानाहृत्य भगवतीप्रसादसमासादितजगत्प्रकाशनसामर्थ्यात् जगन्ति प्रकाशयन्तीति । अतश्च सर्वलोकातिक्रान्तं चन्द्रकलाचक्रं बैन्दवस्थानमिति । तत्र वर्तमानं चरणाम्बुजम् । अनेककोटिब्रह्माण्डपिण्डाण्डावच्छिन्नमयूखानां उपर्येव वर्तमानत्वात् 'तेषामप्युपरि तव पादाम्बुजं वर्तते' इति सिद्धानुवादः, न त्वारोपस्तुतिरित्यनुसन्धेयम् । यथोक्तं भैरवयामळे चन्द्रज्ञानविद्यायां गौरीं प्रति महेश्वरेण—

* 'चन्द्राः' इत्येव क्वचित्पाठः. † 'अमावास्याप्रभृति कृष्णप्रतिपदन्त' इति बहुषु कोशेषु पाठः. § तै. ब्रा. ३–१२–३. ≡ तै. आ. १–२७.



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



साधु साधु महाभागे पृष्टं त्रैलोक्यसुन्दरि ।
गुह्याद्गुह्यतमं ज्ञानं न कुत्रापि प्रकाशितम् ॥

कलाविद्या पराशक्तेः* श्रीचक्राकाररूपिणी ।
तन्मध्ये बैन्दवस्थानं तत्रास्ते परमेश्वरी ॥

सदाशिवेन सम्पृक्ता सर्वतत्त्वातिगा सती ।
चक्रं त्रिपुरसुन्दर्याः ब्रह्माण्डाकारमीश्वरि ॥

पञ्चभूतात्मकं चैव तन्मात्रात्मकमेव च ।
इन्द्रियात्मकमेवं च मनस्तत्त्वात्मकं तथा ॥

मायादितत्त्वरूपं च तत्त्वातीतं च बैन्दवम् ।
बैन्दवे जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी ॥

सदाशिवेन सम्पृक्ता तत्त्वातीता महेश्वरी ।
ज्योतीरूपा पराकारा यस्या देहोद्भवाश्शिवे ॥

किरणाश्च सहस्रं च द्विसहस्रं च लक्षकम् ।
कोटिरर्बुदमेतेषां परा सङ्ख्या न विद्यते ॥

तामेवानुप्रविश्यैव भाति लोकं चाराचरम् ।
यस्या देव्या महेशानि भासा सर्वं विभासते ॥

तद्भासा रहितं किञ्चित् न च यच्च प्रकाशते ।
तस्याश्च शिवशक्तेश्च चिद्रूपायाश्चितिं विना ॥

आन्ध्यमापद्यते नूनं जगदेतच्चराचरम् ।
तेषामनन्तकोटीनां मयूखानां महेश्वरि ॥

मध्ये षष्ट्युत्तरं तेऽमी त्रिशतं किरणाश्शिवे ।
ब्रह्माण्डं व्यश्नुवानास्ते सोमसूर्यानलात्मना ॥

अग्नेरष्टोत्तरशतं षोडशोत्तरकं रवेः ।
षट्त्रिंशदुत्तरशतं चन्द्रस्य किरणाश्शिवे ॥

ब्रह्माण्डं भासयन्तस्ते पिण्डाण्डमपि शाङ्करि ।
दिवा सूर्यस्तथा रात्रौ सोमो वह्निश्च सन्ध्ययोः ॥

* 'शक्तिः' इति च पाठः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



प्रकाशयन्तः कालांस्ते तस्मात्कालात्मकास्त्रयः ।
षष्ट्युत्तरं च त्रिशतं दिनान्येव च हायनम् ॥

हायनात्मा महादेवः प्रजापतिरिति श्रुतिः ।
प्रजापतिर्लोककर्ता मरीचिप्रमुखान् मुनीन् ॥

[1]सृजन्त्येते लोकपालान् ते सर्वे लोकरक्षकाः ।
संहारश्च हरायत्तः उत्पत्तिर्भवनिर्मिता ॥

रक्षा तु मृडसंलग्ना सृष्टिस्थितिलये शिवः ।
नियुक्तः परमेशान्या जगदेवं प्रवर्तते ॥ इति ।

'तामेवानुप्रविश्य' इत्यादिना—'तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' *इति श्रुत्यर्थोऽनूदितः । अत्र बहु वक्तव्यमस्ति, तदुत्तरत्र सम्यङ्निरूपयिष्यामः ॥

सारस्वतप्रयोगमाह—

**शरज्ज्योत्स्नाशुद्धां शशियुतजटाजूटमकुटां**
**वरत्रासत्राणस्फटिकघटिका†पुस्तककराम् ।**
**सकृन्न त्वा नत्वा कथमिव सतां संनिदधते**
**मधुक्षीरद्राक्षामधुरिमधुरीणाः फणितयः॥१५॥**

शरज्ज्योत्स्नाशुद्धां—शरदि शरत्काले ज्योत्स्ना चन्द्रिका तद्वच्छुद्धां अतिशुभ्राम् । शशियुतजटाजूटमकुटां—शशिना चन्द्रेण युतो युक्तः जटाजूटो मकुटो यस्यास्तां, चन्द्रकलावतंसामित्यर्थः । वरत्रासत्राणस्फटिकघटिकापुस्तककराम्—वरः इष्टदानमुद्रा, त्रासत्राणं अभयदानमुद्रा, स्फटिकघटिका स्फटिकपानपात्रम्, स्फटिकाक्षमालेति केचित् तत्पक्षे स्फटिक-

---

[1] सृजन्ति ते. * कठ. ५-२५. † 'घुटिका' इत्यपि पाठः,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



गुलिकेति* पाठः। पुस्तकं विद्यामुद्रा, पुस्तकं वा, एतैर्युक्तकराम्। शाकपार्थिवादित्वात् मध्यमपदलोपः। न तु स्फटिकघटिकापुस्तकानि करेषु यस्याः इति सप्तमीबहुव्रीहिः। 'प्रहरणादिभ्य उपसङ्ख्यानम्' इति तस्य प्रहरणादिभ्य एवेति नियतत्वात्। सकृत् एकवारम्, नकारो निषेधार्थः, त्वा त्वामित्यर्थः, नत्वा नमस्कारं कृत्वा कथं कथंचित्, इवेति वाक्यालङ्कारे, सतां कवीश्वराणाम्, संनिदधते संनिधानं प्राप्नुवन्ति। मधुक्षीरद्राक्षामधुरिमधुरीणाः फणितयः—मधु क्षौद्रं, क्षीरं पयः, द्राक्षा मृद्वीका, एतेषां मधुरिमा माधुर्यं, तत्र धुरीणाः धुरं वहन्तीति धुरीणाः अग्रेसराः तद्वन्मधुरा इत्यर्थः। फणितयः वाग्वैखर्यः॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! शरज्ज्योत्स्नाशुद्धां शशियुतजटाजूटमकुटां वरत्रासत्राणस्फटिकघटिकापुस्तककरां त्वा सकृन्नत्वा सतां मधुक्षीरद्राक्षामधुरिमधुरीणाः फणितयः कथमिव न सन्निदधते॥

अयमर्थः—अत्र व्यतिरेकमुखेन सकृन्नमस्कारोऽपि कवित्वबीजभूतसंस्कारोत्पादकः। तदभावे प्रकारान्तरेण येन केनापि तद्बीजोत्पत्तिर्नास्तीति सूचितम्॥ १५॥

कवीन्द्राणां चेतःकमलवनबालातपरुचिं
भजन्ते ये सन्तः कतिचिदरुणामेव भवतीम्।
विरिञ्चिप्रेयस्यास्तरुणतरशृङ्गारलहरी-
गभीराभिर्वाग्भिर्विदधति सतां रञ्जनममी॥१६॥

---

*'घुटिका' इत्यपि पाठः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



कवीन्द्राणां कवीश्वराणाम्, चेतःकमलवनबालातपरुचिं—चेतांस्येव कमलानि पद्मानि, तेषां वनं षण्डं, तस्य बालातपरुचिः प्राभातिकारुणकान्तिः, तां भजन्ते सेवन्ते, ये सन्तः सत्पुरुषाः, कतिचित् विरलाः, अरुणामेव अरुणाख्यां अरुणवर्णां च, भवतीं त्वां, विरिञ्चिप्रेयस्याः विरिञ्चिः ब्रह्मा तस्य प्रेयस्याः प्रियायाः सरस्वत्याः, तरुणतरशृङ्गारलहरीगभीराभिः तरुणतरे अतियौवने। यद्वा—तरुणतरश्चासौ शृङ्गारश्च तस्य लहरी उद्रिक्त-प्रवाहः। यद्वा—लहरीशब्देन समुद्रस्य चन्द्रोदये यादृश उत्सेकः सः उच्यते। लहरीयुक्तगभीराभिः अतिगम्भीराभिरित्यर्थः। वाग्भिः वाग्विलासैः। विदधति कुर्वन्ति, सतां सभासदां, रञ्जनं हृदयानुरञ्जनम्, अमी सन्तः परामृश्यन्ते॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! कवीन्द्राणां चेतःकमलवन-बालातपरुचिं अरुणामेव भवतीं कतिचित् ये सन्तः भजन्ते, अमी सन्तः विरिञ्चिप्रेयस्याः तरुणतरशृङ्गारलहरीगभीराभिः वाग्भिः सतां रञ्जनं विदधति॥

अयमर्थः—हृदयकमले भगवतीमरुणां ध्यायन्तः पुम्भावमापन्ना सरस्वतीव शृङ्गाररसप्रधानैः वाग्विलासैः सभारञ्जनं कुर्वन्ति। भगवत्याः मातृकात्मकत्वात् सरस्वतीरूपत्वेनैव सारस्वतप्रदत्वम्। अरुणवर्णध्यानमहिम्ना शृङ्गाररसप्राधान्येन वाग्विलासप्रवृत्तिरीति। यथोक्तं वामकेश्वरतन्त्रे—

अरुणाख्यां भगवतीं अरुणाभां विचिन्तयेत्।
पाशाङ्कुशधरां देवीं धनुर्बाणधरां शिवाम्॥
वरदाभयहस्तां च पुस्तकाक्षस्रगन्विताम्।
अष्टबाहुं त्रिनयनां खेलन्तीममृताम्बुधौ॥
स करोत्येव शृङ्गाररसास्वादनलम्पटान्।
सभासदस्सदा सर्वान् साधकेन्द्रस्सभास्थले॥ इति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्र परम्परितं रूपकमलङ्कारः, बालातपरुचित्वारोपणस्य चेतसि कमलत्वारोपणस्य निमित्तत्वात्, 'रूपकहेतुरूपकं परम्परितम्' इति लक्षणात् ॥ १६ ॥

**सवित्रीभिर्वाचां शशिमणिशिलाभङ्गरुचिभिः**
**वशिन्याद्याभिस्त्वां सह जननि सञ्चिन्तयति यः।**
**स कर्ता काव्यानां भवति महतां भङ्गिरुचिभिः**
**वचोभिर्वाग्देवीवदनकमलामोदमधुरैः ॥ १७ ॥**

सवित्रीभिः जनयित्रीभिः, वाचां गिरां, शशिमणिशिलाभङ्गरुचिभिः चन्द्रकान्तमणिशकलतुल्यकान्तिभिः, दलितचन्द्रकान्तमणेः अतिधावल्यं लोकसिद्धम् । वशिन्याद्याभिः वशिनीप्रमुखाभिः । तद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः—वशिनी आद्या यासां ताः शक्तयोऽष्टौ वशिन्याद्याः, योगिन्यो द्वादश, गन्धाकर्षिण्यादयश्चतस्रः, इति वशिन्याद्याः । अत्र एकस्य आद्यशब्दस्य लोपः—वशिन्याद्याद्या इत्यर्थः । वशिन्यष्टकं—वशिनी, कामेश्वरी, मोदिनी, विमला, अरुणा, जयिनी, सर्वेश्वरी, कौलिनी। एताभिः त्वां भवतीं, सह साकं, जननि ! हे मातः ! सञ्चिन्तयति यः, सः साधकः कर्ता रचयिता, काव्यानां प्रबन्धानां, भवति समर्थः प्रभवति । महतां महात्मनां कालिदासप्रभृतीनां, भङ्गिरुचिभिः भङ्गीनां रेखाणां, रुचिभिः स्वादुभिः वचोभिः वाग्विलासैः, वाग्देवीवदनकमलामोदमधुरैः वाग्देव्या भारत्याः वदनकमले यः आमोदः परिमलः तेन मधुरैः अत्यच्छैः, पुम्भावमापन्नायाः भारत्याः वाग्विलासाः इमे इत्येवं भ्रमजनकैरित्यर्थः ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्रेत्थं पदयोजना—हे जननि! वाचां सवित्रीभिः शशिमणिशिलाभङ्गरुचिभिः 'वशिन्याद्याभिः सह त्वां यः सञ्चिन्तयति, स महतां भङ्गिरुचिभिः वाग्देवीवदनकमलामोदमधुरैः वचोभिः काव्यानां कर्ता भवति॥

अत्रेदमनुसन्धेयम्—'वशिन्याद्याभिः त्वां' इत्यत्र त्वामित्यनेन भगवत्याः स्वरूपमुक्तम्। भगवत्याः स्वरूपं तु पञ्चाशद्वर्णात्मिका मातृकैव। एतत्तु 'शिवश्शक्तिः कामः'* इत्यादिश्लोकव्याख्यानावसरे प्रपञ्चयिष्यते। सेयं पञ्चाशद्वर्णात्मिका मातृका अष्टवर्गात्मिका भवति। ते चाष्टवर्गाः अकचटतपयशादयः। अकारादयः षोडश स्वराः प्रथमवर्गः। कादयः पञ्च द्वितीयः। चादयः पञ्च तृतीयः। टादयः पञ्च चतुर्थः। तादयः पञ्च पञ्चमः। पादयः पञ्च षष्ठः। यादयश्चत्वारः सप्तमः। शादयः पञ्च अष्टमः। एवं अष्टवर्गात्मिका भगवती मातृका त्रिपुरसुन्दरी अकचटतपयशवर्गेषु यथाक्रमं वशिन्यादिशक्तिभिर्योजिता बिन्दुत्रिकोणात्मकशिवचक्रचतुष्टयवसुकोणदशारद्वितय,चतुर्दशकोणात्मकेषु अष्टसु चक्रेषु योजिता ध्याता सती काव्यकर्तृत्वसंपादिका। वशिन्याद्याभिरिति आदिशब्देन कामेश्वरीप्रभृतीनां अष्टानां सङ्ग्रहणं विद्यादिद्वादशयोगिनीसङ्ग्रहणं गन्धाकर्षिण्यादिचतुष्टयसङ्ग्रहणं कृतमित्युक्तं भवति। वशिन्यष्टकमुक्तम्। योगिनीद्वादशकं तु—विद्यायोगिनी, रेचिकायोगिनी, मोचिकायोगिनी, अमृतायोगिनी दीपिकायोगिनी, ज्ञानयोगिनी, आप्यायनीयोगिनी, व्यापिनीयोगिनी, मेधायोगिनी, व्योमरूपा योगिनी, सिद्धिरूपा योगिनी, लक्ष्मीयोगिनी। एवं द्वादशयोगिनीभिः सार्धं वशिन्याद्यष्टकं मिलित्वा विंशतिकलाः भवन्ति। ताः विंशतिकलाः शुद्धस्फटिकसङ्काशाः दशारयुग्मकोणेषु सञ्चिन्तनीयाः उक्तफलदाः। अयं च भूप्रस्तारभेदः। भूप्रस्तारः 'चतुष्षष्ट्या तन्त्रैः'† इत्यादिश्लोकव्याख्यानावसरे निपुणतरं निरूप्यते। गन्धाकर्षि[illegible]ी, रसाकर्षिणी,

* ३२ श्लोकः, † ३१ श्लोः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri


रूपाकर्षिणी स्पर्शाकर्षिणी च चतुर्द्वारेषु [1]योजिताः उक्तफलदाः । तथा च श्रुतिः—

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥*

अस्या अर्थः—गन्धद्वारां गन्धरसरूपस्पर्शाः गन्धशब्देन संगृहीताः, तेन गन्धाकर्षिण्यादयः अधिदेवताः संगृहीता भवन्ति—गन्धाकर्षिणी, रसाकर्षिणी, रूपाकर्षिणी, स्पर्शाकर्षिणी चेति । ताभिर्युक्तानि चतुर्द्वाराणि यस्यां सा गन्धद्वारा, तां गन्धद्वाराम् । दुराधर्षां दुष्प्रधर्षां, मन्दभाग्यानामिति शेषः । नित्यपुष्टां नित्यानन्दस्वरूपिणीम्, करीषिणीं गन्धाद्याकर्षिणीमित्यर्थः । यद्वा—करिभिः गजैः ईषिणीं परिवृताम् । ईश्वरीं अधिदेवतां सर्वभूतानाम्, तां इह चक्रे उपह्वये श्रियं श्रीविद्याम् । गन्धद्वारामिति गन्धाकर्षिणी-चतुष्कं वशिन्याद्यष्टकं योगिनीद्वादशकं संगृहीतम् । तथा च शम्भुवचनम्—

मातृकां वशिनीयुक्तां योगिनीभिस्समन्विताम् ।
गन्धाद्याकर्षिणीयुक्तां संस्मरेत्त्रिपुराम्बिकाम् ।

अत्रेदमनुसन्धेयम्—वशिन्यादयः शक्तयः पञ्चाशद्वर्णात्मिका इत्युक्तम् । तत्र वशिनीशक्तिः स्वरात्मिका । स्वराः षोडश अकारादयः । तेषां स्वरूपं सनत्कुमारसंहितायां पञ्चशत्यामुक्तं संक्षेपेण कथ्यते—अकारात्मिका शक्तिः अष्टभुजा पाशाङ्कुशवराभयपुस्तकाक्षमालाकमण्डलुव्याख्यामुद्राकरा । एवं आकाराद्यात्मिकाः शक्तयः शुभ्रवर्णाः । इयांस्तु विशेषः—अकारात्मिकायाः शक्तेः मण्डलं अशीतिलक्षयोजनायतम् । आकारस्य तद्द्विगुणम् । इकारस्य नवतिलक्षयोजनायतम् । ईकारस्य तद्द्विगुणम् । उकारस्य कोटियोजनपरि-

[1] ध्यातास्तत्तदुक्तफलदाः.
* याज्ञिकी उ. १.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



मितपरिणाहं मण्डलम् । ऊकारस्य तद्द्विगुणम् । ऋकारस्य पञ्चाशल्लक्षयोजनपरिमितं मण्डलम् । तद्द्विगुणं ॠकारस्य । तद्द्विगुणं ऌकारॡकारयोरपि । एवं एकारस्य सार्धकोटिपरिणाहं मण्डलम् । ऐकार—ओकार—औकाराणां सममेव एकारेण । बिन्दुविसर्गयोस्तु अकारद्विगुणं मण्डम् । व्यञ्जनशक्तीनां अकारमण्डलादर्धं मण्डलम् । ताः शक्तयः पाशाङ्कुशाक्षमालाकमण्लुधराः । अन्तस्थास्तु पाशाङ्कुशाभयवरकराः । ऊष्माणस्तु पाशाङ्कुशाक्षमालावरकराः । ळकारक्षकारौ पाशाङ्कुशैक्षवशरासनपुष्पबाणयुक्तकरौ । एताः शक्तयः पञ्चाशद्वर्णात्मिकाः ॥

केचित्तु—स्वरात्मिकाः शक्तयः स्फटिकाभाः । कादयो मावसानाः विद्रुमाभाः, यादयो नव पीतवर्णाः, क्षकारः अरुणवर्णः इति ॥

अपरे तु—अकारादयो धूम्रवर्णाः, ककारादयः ठान्ताः सिन्दूरवर्णाः, डादिफान्ताः गौरवर्णाः, बादिलान्ताः अरुणवर्णाः, वादिसान्ताः कनकवर्णाः,* हक्षौ तटिदाभौ, ळकारस्तु लकार एवान्तर्भूतः, इति वदन्ति । इदमेवास्मन्मतं भगवत्पादाचार्याणामपि सम्मतम् । एतत्सर्वं सुभगोदयव्याख्यानावसरे चन्द्रकलायां सम्यङ्निरूपितमस्माभिः ॥ १७ ॥

**तनुच्छायाभिस्ते तरुणतरणिश्रीसरणिभिः**
**दिवं सर्वामुर्वीमरुणिमनि मग्नां स्मरति यः ।**
**भवन्त्यस्य त्रस्यद्वनहरिणशालीननयनाः**
**सहोर्वश्या वश्याः कतिकति न गीर्वाणगणिकाः ॥**

---

*"हक्षयोस्तु पादौ गादौ वा अन्तर्भावः" इत्यधिकः पाठः घ.—पुस्तके दृश्यते.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**तनुच्छायाभिः** तनोः देहस्य छायाभिः कान्तिभिः, **ते** भवत्याः, **तरुणतरणिश्रीसरणिभिः** तरुणतरणिः बालसूर्यः, तस्य श्रीः शोभा, तस्या इव सरणिः मार्गः—सौभाग्यमिति यावत्—यासां ताभिः, **दिवं** आकाशं, **सर्वां उर्वीं** कृत्स्नां भूमिं, रोदःप्रदेशमित्यर्थः । **अरुणिमनि** आरुण्ये, **मग्नां** अत्यरुणामिति यावत् । यद्वा—**अरुणिमनिमग्नां** नितरां मग्नाम् । यथोक्तं शम्भुना—

**यावकाब्धौ निमग्नां यो दिवं भूमिं विचिन्तयेत् ।**
**तस्य सर्वा वशं याताः त्रैलोक्यवनिता द्रुतम्** * ॥ इति ।

अतश्च अरुणिमशब्देन यावकाब्धिर्लक्ष्यते, यावकाब्धिमध्यस्थितामित्यर्थः । **स्मरति** चिन्तयति, **यः** साधकः, **भवन्ति**, **अस्य** साधकस्य, **त्रस्यद्वनहरिणशालीननयनाः** त्रस्यन्तो वनहरिणाः—वन(हरिण)शब्दः स्वच्छन्दचारित्वलक्षणया अतित्रासं लक्षयति—तेषामिव शालीने ह्रीणे, अतिसुन्दरे इति यावत्, नयने यासां ताः तथोक्ताः **सह** साकम्, **ऊर्वशी** नाम देवगणिका तया, **वश्याः** वशङ्गताः **कतिकति** आभीक्ष्ण्ये द्विरुक्तिः । **नः** निषेधे । **गीर्वाणगणिकाः** देववाराङ्गनाः ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति ! तरुणतरणिश्रीसरणिभिः ते तनुच्छायाभिः सर्वां दिवं उर्वीं च अरुणिमनि मग्नां यः स्मरति अस्य त्रस्यद्वनहरिणशालीननयनाः गीर्वाणगणिकाः ऊर्वश्या सह कतिकति न वश्या भवन्ति? सर्वा अप्सरसो वश्या भवन्तीत्यर्थः ॥ १८ ॥

**मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो**
**हरार्धं ध्यायेद्यो हरमहिषि ते मन्मथकलाम् ।**
**स सद्यस्संक्षोभं नयति वनिता इत्यतिलघु**
**त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगाम् ॥**

* 'ध्रुवम्' इति पाठान्तरम्.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**मुखं** वक्त्रं, **बिन्दुं** बिन्दुरूपं, **कृत्वा,** बिन्दुस्थाने मुखं ध्यात्वेत्यर्थः। **कुचयुगं** स्तनद्वयं, **अधः** अधस्तात्, **तस्य** मुखस्य। **तदधः** तस्य कुचयुगस्य अधःप्रदेशे, **हरार्धं** हरस्य अर्धं शक्तिः त्रिकोणं योनिरिति यावत्। **ध्यायेत्** चिन्तयेत्, **यः** साधकः। 'तत्र' इत्यध्याहार्यम्। **हरमहिषि!** हरस्य सदाशिवस्य महिषि जाये, **ते** भवत्याः, **मन्मथकलां** कामराजवीजम्, **सः** साधकः, **सद्यः** तदानीमेव, **संक्षोभं** सर्वजगत्संक्षोभं चित्तविकारं, **नयति** प्रापयति, **वनिताः** स्त्रियः। इतिशब्दः क्रियाविशेषणद्योतकः। **अतिलघु** अतितुच्छम्, **त्रिलोकीमपि** त्रिभुवनमपि, **आशु** शीघ्रं, **भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगां**—रवीन्दू सूर्यचन्द्रौ, तावेव स्तनौ, तयोः युगं यस्यास्सा ताम्॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे हरमहिषि! मुखं बिन्दुं कृत्वा, तस्याधः कुचयुगं कृत्वा, तदधः हरार्धं कृत्वा, तत्र ते मन्मथकलां यः ध्यायेत् सः सद्यः वनिताः संक्षोभं नयतीति यत् तत् अतिलघु, किंतु रवीन्दुस्तनयुगां त्रिलोकीमपि आशु भ्रमयति॥

अत्र त्रिलोक्याः रवीन्दुस्तनयुगवत्त्वविशेषणेन स्त्रीत्वारोपणं अयं मादनप्रयोगो वनितास्वेव प्रयोक्तव्य इति ज्ञापयितुम्॥

अत्रेदमनुसन्धेयम्—साधकः त्रिकोणे बिन्दुस्थाने साध्यायाः कान्तायाः वक्त्रं ध्यात्वा, तदधस्तात् तस्याः कुचयुगं ध्यात्वा, तत्कुचद्वयस्याधस्तात् तस्याः योनिं विचिन्त्य तत्र वक्त्रकुचद्वययोनिषु प्रधानाङ्गेषु मारवीजं सञ्चिन्त्य तया कान्तया आत्मनस्तादात्म्यं सम्पादयेत्। यथोक्तं चतुश्शत्याम्—

**बिन्दुं सङ्कल्प्य वक्त्रं तु तदधस्तात्कुचद्वयम्।**
**तदधश्च हरार्धं तु चिन्तयेत्तदधोमुखम्॥**
**तत्र कामकलारूपामरुणां चिन्तयेदिह।**
**ततस्तेनैव रूपेण निजरूपं विचिन्तयेत्॥** इति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri


एवं मादनप्रयोगाः अनेके सनत्कुमारसंहितायां सतशत्यामुक्ताः । अत्र कतिचन निरूप्यन्ते—

बिन्दौ तद्वक्त्रमारोप्य तदधो बाहुयुग्मकम् ।
तदधः कुचयुग्मं तु तदधो योनिमेव च ॥
एतेषु पञ्चस्थानेषु पञ्चबाणान्विचिन्तयेत् ॥

पञ्चबाणबीजानि मुखे बाहुयुग्मे कुचमध्ये योनिमध्ये यथाक्रमं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स इति चिन्तयेत् इत्यर्थः । अयं प्रयोगः कामराजप्रयोगसमय एव ॥

त्रिकोणे बैन्दवस्थाने अधोवक्त्रं विचिन्तयेत् ।
बिन्दोरुपरिभागे तु वक्त्रं सञ्चिन्त्य साधकः ॥
तदुपर्येव वक्षोजद्वितयं संस्मरेद्बुधः ।
तदुपर्येव योनिं च क्रमशो भुवनेश्वरीम् ॥
श्रीविद्यां कामराजं च विन्यस्याशु विमोहयेत् ॥

अयं प्रयोगः 'मुखं बिन्दुं कृत्वा' इति प्रयोगात् अतिशीघ्रकरः । अत्रापि पञ्चबाणप्रयोगः पूर्ववत् । एवमेतादृशमादनप्रयोगाः सनत्कुमारसंहितायां अवगन्तव्याः ग्रन्थविस्तरभयान्नोक्ताः ॥ १९ ॥

## किरन्तीमङ्गेभ्यः किरणनिकुरुम्बामृतरसं
## हृदि त्वामाधत्ते हिमकरशिलामूर्तिमिव यः ।
## स सर्पाणां दर्पं शमयति शकुन्ताधिप इव
## ज्वरप्लुष्टान् दृष्ट्या सुखयति सुधाधारसिरया ॥ २० ॥

किरन्तीं वर्षन्तीं, अङ्गेभ्यः अवयवेभ्यः, किरणनिकुरुम्बामृतरसं-किरणानां मरीचीनां निकुरम्बः समूहः, तस्मादुत्पन्नः अमृतरसः, तम् । हृदि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



हृदये, त्वां भवतीं, आवत्ते स्मरतीति यावत् । हिमकरशिलामूर्तिं हिमकरशिलायाः चन्द्रकान्तमणेः मूर्तिं पुत्थलिकां सालभञ्जिकां चन्द्रकान्तमणिनिर्मितदेहां, इव यः, साधकः, सः साधकः, सर्पाणां दर्पं शमयति शकुन्ताधिपः शकुन्तानां पक्षिणां अधिपो गरुत्मान् इव । इवेति सम्भावनायाम्—गरुत्मदाकाराकारित्वमात्रं न भवति, अपि तु तत्कार्यकारित्वं सम्भावितमिति, गरुत्मान् भूत्वा, प्रत्यक्षो गरुत्मानिवेत्यर्थः । ज्वरप्लुष्टान् ज्वरेण प्लुष्टान् सन्तप्तान्, दृष्ट्या वीक्षणेन । अत्र दृष्टिप्रयोगः कथितः । सुखयति सुखिनः करोति । 'तत्करोति' इति णिचि 'णाविष्ठवत्प्रातिपदिकस्य' इति टिलोपः । एवं सुखयतीति रूपं सिद्धम् । सुधाधारसिरया सुधायाः आधारभूता सिरा अमृतस्यन्दिनी नाडी । यद्वा—सुधा धारात्मिका यस्यां सिरायामिति बहुव्रीहिः । 'स्त्रियाः पुंवत् भाषितपुंस्कात्' इत्यादिना पुंवद्भावः ?। सुधाधारा चासौ सिरा च तया । सुधासारसिरयेति वा पाठः—सुधासारात्मिका सिरा ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे देवि ! यः साधकः अङ्गेभ्यः किरणनिकुरुम्बामृतरसं किरन्तीं हिमकरशिलामूर्तिमिव हृदि त्वां आधत्ते, सः शकुन्ताधिप इव दृष्ट्या सर्पाणां दर्पं शमयति । सुधाधारसिरया दृष्ट्या ज्वरप्लुष्टान् सुखयति ॥

अनेन श्लोकेन गारुडप्रयोग उक्तः । तदुक्तं चतुश्शत्याम्—

षण्मासध्यानयोगेन जायते गरुडोपमः ।
दृष्ट्या कर्षयते लोकं दृष्ट्यैव कुरुते वशम् ॥
दृष्ट्या संक्षोभयेन्नारीं दृष्ट्यैव हरते विषम् ।
दृष्ट्या चातुर्थिकादींश्च ज्वरान् नाशयते क्षणात् ॥
चन्द्रकान्तशिलामूर्तिं चिन्तयित्वा विनाशयेत् ।
तापज्वरानशेषांश्च शीघ्रं तार्क्ष्य इवापरः ॥
गरुडध्यानयोगेन स्मरणान्नाशयेद्विषम् ॥ इति ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अतश्च प्रातीतिकमन्वयं—यथा शकुन्ताधिपः सर्पाणां दर्पं शमयति एवं साधकेन्द्रः ज्वरप्लुष्टान् सुखयतीति—तिरस्कृत्य, साधकेन्द्रो ज्वरप्लुष्टान् सर्पाणां दर्पमपि शकुन्ताधिप इवेति आश्रित इति अनुसन्धेयम् ॥ २० ॥

**तटिल्लेखातन्वीं तपनशशिवैश्वानरमयीं**
**निषण्णां षण्णामप्युपरि कमलानां तव कलाम्**
**महापद्माटव्यां मृदितमलमायेन मनसा**
**महान्तः पश्यन्तो दधति परमाह्लादलहरीम् ॥**

**तटिल्लेखा** विद्युल्लेखा, तद्वत् **तन्वी** दीर्घसूक्ष्मा ज्योतिर्मयी क्षणप्रभा च ताम् । स्थिरसौदामिन्याः क्षणप्रभात्वं आज्ञाचक्रे क्षणमात्रदर्शनात् । एतच्च आज्ञाशब्दार्थनिरूपणावसरे पूर्वमेव प्रतिपादितम् । **तपनशशिवैश्वानरमयीं** सूर्यचन्द्रानलात्मिकाम् । एच्च त्रिखण्डनिरूपणावसरे सम्यङ्निरूपितम् । **निषण्णां** आसीनाम्, **षण्णां** षट्सङ्ख्याकानाम्, **अपि**स्समुच्चये—ग्रन्थित्रयं समुच्चिनोति । ग्रन्थित्रयस्यापि । **उपरि कमलानां** पद्मानाम्, षट्चक्राणां आधारस्वाधिष्ठानमणिपूरकानाहतविशुद्ध्याज्ञात्मकानां कमलस्वरूपत्वं पूर्वमेव निरूपितम् । **तव** भवत्याः, **कलां** सादाख्यां बैन्दवीकलाम्, **महापद्माटव्यां** महान्ति बहूनि पद्मानि पद्मदलानि सहस्रसंख्याकानि, तान्येव अटवी, तस्यां सहस्रदलकमलकर्णिकायामित्यर्थः । यद्वा—महापद्मं सहस्रदलकमलं, तदेव अटवी, तस्याम् । **मृदितमलमायेन** मृदिताः क्षपिताः मलाः, कामादयः, मायाऽविद्याऽस्मिताहङ्कारादयः यस्य तत् तेन, **मनसा** अन्तःकरणेन, **महान्तः** योगीश्वराः, **पश्यन्तः** सादाख्यकलासुधाधारानिष्यन्दं अनुभवन्तः, **दधति** अवरुन्धते । **परमाह्लादलहरीं** परमः निरतिशयः, आह्लादः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



सुखविशेषः, तस्य लहरीं उद्रेकं उद्रिक्तपरमानन्दं सादाख्यकलामृतानुभव-जनितं, सर्वदा सम्पादयन्तीत्यर्थः ॥

अत्रेत्थं पदयोजना–हे भगवति ! तटिल्लेखातन्वीं तपनशशिवैश्वानर-मयीं निषण्णां षण्णां कमलानामप्युपरि महापद्माटव्यां निषण्णां तव कलां मृदितमलमायेन मनसा पश्यन्तो महान्तः परमाह्लादलहरीं दधति ॥ २१ ॥

**भवानि त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणां**
**इति स्तोतुं वाञ्छन् कथयति भवानि त्वमिति यः।**
**तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्यपदवीं**
**मुकुन्दब्रह्मेन्द्रस्फुटमकुटनीराजितपदाम् ॥ २२**

हे **भवानि !** भवस्य पत्नि ! **त्वं** भवती, **दासे मयि** दासभूते किङ्करे मयि, **वितर** देहि । **दृष्टिं** कटाक्षं, **सकरुणां** करुणायुक्तां, **इति** एवंप्रकारेण, **स्तोतुं** स्तोत्रं कर्तुं, **वाञ्छन्** इच्छन्, **कथयति** वदति । **भवानि त्वमिति** 'भवानि त्वं दासे मयि वितर दृष्टिं सकरुणाम्' इति वाक्यप्रतीकं 'भवानि त्वं' इत्येवं **यः** साधकः, **तदैव** 'भवानि त्वम्' इति वाक्यैकदेशोच्चारणसमय एव, **त्वं** भवती **तस्मै** वाक्यैकदेशोच्चारकाय, **दिशसि** ददासि । **निजसायुज्यपदवीं** निजस्य आत्मनः सायुज्यपदवीं तादात्म्यम् । **मुकुन्दब्रह्मेन्द्रस्फुटमकुटनीराजितपदां** मुकुन्दो विष्णुः, ब्रह्मा द्रुहिणः, इन्द्रः आखण्डलः, तेषां स्फुटं यथा भवति तथा मकुटैः नीराजिते नीराजनविधिक्रियाञ्चिते पदे पादाम्बुजे यस्यास्ताम् ॥

अत्रेत्थं पदयोजना–हे भवानि ! त्वं दासे मयि सकरुणां दृष्टिं वितरेति स्तोतुं वाञ्छन् भवानि त्वमिति यः कथयति तस्मै तदैव त्वं मुकुन्दब्रह्मेन्द्रस्फुटमकुटनीराजितपदां निजसायुज्यपदवीं दिशसि ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अयमर्थः–'भवानि त्वं दासे मयि' इत्यादिवाक्यप्रतीके 'भवानि त्वं' इति पदद्वये 'भवानि' इति पदस्य लोडुत्तमपुरुषैकवचनान्तत्वमवगम्य तत्सामानाधिकरण्येन त्वं पदस्यान्वये महावाक्यप्रयोगोऽनेन साधकेन प्रयुक्त इति मत्वा महावाक्यफलं तादात्म्यं दिशति भगवती, जपहोमाद्युपासना-विधिभ्यः तादात्म्योपासनायाः सद्यः फलदायित्वात्–

अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥

इति न्यायेन अविवक्षया प्रयुक्तमपि महावाक्यं फलदायकमिति, नापि अविमृश्यकारित्वं देव्या इति रहस्यम् ॥ २२ ॥

**त्वया हृत्वा वामं वपुरपरितृप्तेन मनसा**
**शरीरार्धं शम्भोरपरमपि शङ्के हृतमभूत् ।**
**यदेतत्त्वद्रूपं सकलमरुणाभं त्रिनयनं**
**कुचाभ्यामानम्रं कुटिलशशिचूडालमकुटम् ॥**

त्वया भवत्या, हृत्वा अपहृत्य, वामं वामार्धं, वपुः शरीरं, अपरितृप्तेन असन्तुष्टेन, मनसा अन्तःकरणेन, शरीरार्धं शम्भोरपरमपि दक्षिणमपि, शङ्के मन्ये, हृतं गृहीतं, अभूत् । यत् यस्मात् एतत् हृदय-कमलान्तःप्रतिभासि, त्वद्रूपं तव शरीरं, सकलं कृत्स्नं वामदक्षिणभागात्मकं, अरुणाभं अरुणस्य प्रातःकालसूर्यस्याभेवाभा यस्य तत् । यद्वा–अरुणा रक्तवर्णा आभा प्रभा यस्य तत् अरुणाभम् । त्रिनयनं नयनत्रययुक्तं, कुचाभ्यामानम्रं स्तनाभ्यामीषन्नम्रं, कुटिलशशिचूडालमकुटं कुटिलशशिना वक्रचन्द्रकलया चूडालं चूडावन्तं मकुटं यस्य तत् ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति ! शम्भोर्वामं वपुः त्वया हृत्वा अपरितृप्तेन मनसा अपरमपि शरीरार्धं हृतमभूदिति शङ्के; यत् एतत् त्वद्रूपं सकलमरुणाभं त्रिनयनं कुचाभ्यामानम्रं कुटिलशशिचूडालमकुटम् ॥

अयमर्थः—भगवत्या शम्भोः एकस्मिन्नर्धे अपहृते अपरार्धस्याप्यपहार उत्प्रेक्ष्यते। यद्वा—उत्तरकौलसिद्धान्तप्रतिपादकोऽयं श्लोकः। उत्तरकौलसिद्धान्ते शक्तितत्त्वात् अन्यत् शिवतत्त्वं नास्ति। अतश्च शिवतत्त्वं शक्तितत्त्वे अन्तर्भूतमिति तदेव उपास्यमिति प्रस्तुतम्। एतच्च 'मनस्त्वं व्योम त्वम्'* इति श्लोकव्याख्यानावसरे तवाधारे मूले† ' इति श्लोकव्याख्यानावसरे च निपुणतरमुपपादयिष्यामः ॥ २३ ॥

**जगत्सूते धाता हरिरवति रुद्रः क्षपयते**
**तिरस्कुर्वन्नेतत्स्वमपि वपुरीशस्तिरयति ।**
**सदापूर्वस्सर्वं तदिदमनुगृह्णाति च शिवः**
**तवाज्ञामालम्ब्य क्षणचलितयोर्भ्रूलतिकयोः ॥**

जगत् स्थावरजङ्गमात्मकं जगत्, सूते सृजति, धाता ब्रह्मा। हरिः विष्णुः, अवति रक्षति। रुद्रः क्षपयते संहरति। धातृहरिरुद्राः सृष्टिस्थिति[1]लयाधिकारिणः। तिरस्कुर्वन् उपसंहरन्, एतत् धातृहरिरुद्रात्मकं त्रितयं, स्वमपि स्वकीयमपि, वपुः देहं, ईशः महेश्वरतत्त्वं, तिरयति अन्तर्हितं करोति। ईश्वरः धातृहरिरुद्रान् आत्मन्यारोप्य स्वयमपि सदाशिवतत्त्वे अन्तर्भूत इत्यर्थः। अनेन ब्रह्माण्डप्रलय उक्तः। तदनन्तरं ब्रह्माण्डोत्पिपित्सा सदाशिवस्य जायते। तदानीमाह—सदापूर्व इति।

* ३५ श्लोकः. † ४१ श्लोकः. [1] लयकारिणः.



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

सदाशब्दः पूर्वः यस्य शिवशब्दस्य सः सदापूर्वः शिवशब्दः। तेन सदाशिवशब्देन वाच्यवाचकयोः अभेदोपचारात् सदाशिवरूपं तत्त्वं उपचर्यते। सर्वं तदिदं पूर्वोक्तं धातृहरिरुद्रेशानात्मकं तत्त्वचतुष्टयं अनुगृह्णाति। चकारः शङ्काच्छेदे। शिवः सदाशिवः। कथमनुगृह्णातीत्याशङ्कायामाह—तवाज्ञामालम्ब्य इति। तव भवत्याः, क्षणचलितयोः भ्रूलतिकयोः क्षणमात्रं चलितयोः, भ्रूलतिकाचलनेन विज्ञेयामाज्ञामालम्ब्येत्यर्थः। भवद्भ्रूविक्षेपमात्रेण धातृहरिरुद्रेशानात्मकं तत्त्वचतुष्टयमुत्पन्नं, भ्रुकुटीकरणमात्रेण तद्विनष्टमिति अनेककोटिब्रह्माण्डानामुत्पादने संहरणे च त्वद्भ्रूविक्षेपमात्ररूपा शक्तिः साचिव्यं सदाशिवस्य करोतीति तात्पर्यम्॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! धाता जगत् सूते। हरिः जगत् अवति। रुद्रः जगत् क्षपयते। ईशः एतत् तिरस्कुर्वन् स्वमपि वपुः तिरयति! सदापूर्वः शिवः सर्वं तदिदं तव क्षणचलितयोः भ्रूलतिकयोः आज्ञामालम्ब्य अनुगृह्णाति॥ २४॥

## त्रयाणां देवानां त्रिगुणजनितानां तव शिवे
## भवेत्पूजा पूजा तव चरणयोर्या विरचिता।
## तथा हि त्वत्पादोद्वहनमणिपीठस्य निकटे
## स्थिता ह्येते शश्वन्मुकुलितकरोत्तंसमकुटाः॥२५

त्रयाणां देवानां धातृहरिरुद्राणामित्यर्थः। त्रिगुणजनितानां सत्त्वरजस्तमःप्रभवानाम्, तव भवत्याः, हे शिवे! शिवमहिषि! भवेत् भवत्येव। प्राप्तकाले लिङ्। पूजा सपर्या, सैव पूजा नान्येति द्वितीयपूजाशब्दस्यार्थः। तव चरणयोः या पूजा विरचिता निर्मिता। युक्त

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



चैतदित्याह—तथाहीत्यादिना। तथाहि युक्तमेतत्। त्वत्पादोद्वहनमणिपीठस्य तव पादयोः उद्वहनार्थं यन्मणिपीठं परिकल्पितं तस्य निकटे उपसिंहासनसमीपे, स्थिताः वर्तन्ते स्म। हि यस्मात्, एते धातृहरिरुद्राः अधिकारिपुरुषाः, शश्वत् अनवरतं, मुकुलितकरोत्तंसमकुटाः मुकुलिताः कृताञ्जल्यः करा एव उत्तंसाः तद्युक्ताः मकुटाः येषां ते॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे शिवे! तव त्रिगुणजनितानां त्रयाणामपि देवानां तव चरणयोः या पूजा विरचिता भवेत् सैव पूजा। तथाहि त्वत्पादोद्वहनमणिपीठस्य निकटे हि यस्मात् मुकुलितकरोत्तंसमकुटाः शश्वदेते स्थिताः॥

अयं भावः—भगवत्याः पादपीठसेवा पूजामात्रेण न लभ्यते, अपि तु भगवत्याः प्रसादवशादेवेति॥ २५॥

**विरिञ्चिः पञ्चत्वं व्रजति हरिराप्नोति विरतिं**
**विनाशं कीनाशो भजति धनदो याति निधनम्।**
**वितन्द्री माहेन्द्री विततिरपि सम्मीलितदृशा**
**महासंहारेऽस्मिन् विहरति सति त्वत्पतिरसौ॥**

विरिञ्चिः ब्रह्मा, पञ्चत्वं पञ्चभूतानां व्यष्टिरूपतां, मरणमिति यावत्, व्रजति याति। हरिः विष्णुः, आप्नोति प्राप्नोति, विरतिं उपरतिं, मरणमिति यावत्। विनाशं मृतिं, कीनाशः यमः, भजति। धनदः कुबेरः, निधनं मरणं, याति प्राप्नोति। वितन्द्री विशेषेण तन्द्री प्रमीला जाड्यं यस्यास्सा, निद्राणेत्यर्थः, माहेन्द्री महेन्द्रस्येयं माहेन्द्री, चतुर्दशानां मनूनां इन्द्राणां विततिरपि सङ्घोऽपि, सम्मीलितदृशा सम्मीलिता दृशा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



दृष्टिर्यस्यास्सा। 'हलन्तादपि टाबिष्यते' इति टाप्। यद्वा, सम्मीलितदृशा करणेन वितन्द्री माहेन्द्री। महासंहारे कल्पान्ते, अस्मिन् विहरति विशृङ्खलतया वर्तते। हे सति! प्रतिव्रते! त्वत्पतिः सदाशिवः हरः; असौ सहस्रदलकमले परिदृश्यमानः॥

अत्रेत्थं पदयोजना—विरिञ्चिः पञ्चत्वं व्रजति। हरिः विरतिं आप्नोति। कीनाशः विनाशं भजति। धनदः निधनं याति। माहेन्द्री विततिरपि सम्मीलितदृशा वितन्द्री। अस्मिन् महासंहारे सति! असौ त्वत्पतिः हरः विहरति॥

अयं भावः—सर्वेषां अधिकारिपुरुषाणां [1]च संहारे ब्रह्माण्डभङ्गसमये तव पत्युर्यत् विहरणं तत् तव पातिव्रत्यमहिमायत्तमिति॥ २६॥

**जपो जल्पश्शिल्पं सकलमपि मुद्राविरचना**
**गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमशनाद्याहुतिविधिः।**
**प्रणामस्संवेशस्सुखमखिलमात्मार्पणदृशा**
**सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम्॥**

जपः मन्त्रजपः, 'उपांशूच्चैर्वा क्रियते' इत्यादिभिश्चोदितः सः, जल्पः याटच्छिकसल्लापः। शिल्पं सकलमपि हस्तविन्यासादिक्रियानिचयः, मुद्राविरचना मुद्राणां संक्षोभद्रावणाकर्षवश्योन्मादमहाङ्कुशखेचरीवीजयोनित्रिखण्डात्मकानां विरचना करणम्। गतिः याटच्छिकगमनं, प्रादक्षिण्यक्रमणं प्रदक्षिणक्रिया। अशनादि ओदनादियत्किञ्चित्पदार्थचर्वणं, आहुतिविधिः आहुतीनां देवतोद्देशेन हविःप्रक्षेपणात्मकानां विधिः करणम्। प्रणामः

---

[1] ईश्वराणामित्यधिकम्.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



नमस्कारः, संवेशः यादृच्छिकदण्डवल्लुठनम्, जल्पशिल्पव्यतिरेकेण अङ्गभङ्गनयनोन्मीलननिमीलनादिकं च सुखं सुखकरं वस्तु अखिलं समस्तं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धादिकं, आत्मार्पणदृशा आत्मार्पणबुद्ध्या, सपर्यापर्यायः सपर्या पूजा तस्याः पर्यायः रूपान्तरं, सपर्यैवेत्यर्थः, तत्र ते, भवतु भूयात्। यत् प्रसिद्धं, मे मम, विलसितं विलासः ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! आत्मार्पणदृशा जपः जल्पः, सकलमपि शिल्पं मुद्राविरचना, गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणं, अशनादि आहुतिविधिः, संवेशः प्रणामः, अखिलं सुखं मे यद्विलसितं च तव सपर्यापर्यायः भवतु ॥

अयमर्थः—जल्पादीनां जपादिरूपता यथार्हं कल्पिता। एवं नयनोन्मीलिननिमीलननिमेषोन्मेषाङ्गभङ्गजृम्भादीनां यथार्हं सपर्यापर्यायता ऊह्या। शब्दादेः सुखकरस्य वस्तुनः षोडशोपचारव्यतिरेकेण आत्मार्पणबुद्ध्या त्याग एव सपर्यापर्यायः, न तु स्वीकृतानाम्। द्वा—शब्दादीनां यादृच्छिकसम्भवेन सुखप्रादुर्भावे तत्सुखं मच्छेषं न भवति किन्तु सदाशिवायेत्यर्पणं सपर्यापर्यायः ॥

अत्रेदमनुसन्धेयम्—समयिनां मते समयस्य सादाख्यतत्त्वस्य सपर्या सहस्रदलकमल एव, न तु बाह्ये पीठादौ। ये ये समयिनो योगीश्वरा जीवन्मुक्ताः संसारयात्रामनुवर्तमानाः सादाख्यतत्त्वमनुचिन्तयन्तः आत्मैकप्रवणाः वर्तन्ते तेषां 'जपो जल्पश्शिल्पम्, इत्यादिना सपर्याप्रकारो निरूपितः। ये तु समयिनो योगीश्वराः विजने गुहान्तरे वा बद्धपद्मासनाः निगृहीतेन्द्रियाः सादाख्यतत्त्वध्यानैकनिष्ठाः वर्तन्ते तेषां वक्ष्यमाणचतुर्विधपद्धैक्यानुसन्धानमेव भगवत्याः सपर्येति अर्थादुक्तं भवति। अतश्च पक्षद्वयेऽपि बाह्यपूजायां तत्क्रियाकलापे च [1] तत्सम्पादनायां च क्लेशो नास्ति समयिनामिति रहस्यम्। यत्तु चन्द्रज्ञानविद्यायामुक्तम्—

---

[1] तत्सम्पादनायासलेशो नास्ति.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम् ।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणान् धारयन्तीं प्रपूजयेत् ॥ इति ॥

बाह्यपूजाप्रकारकथनं, तत्तु समयैकदेशिमतमिति पुरस्तात्प्रपञ्चयते ॥ २७ ॥

'विरिञ्चिः पञ्चत्वम्' इति श्लोकेन यदुक्तं तदेव सोपस्करमाह—

**सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभयजरामृत्युहरिणीं**
**विपद्यन्ते विश्वे विधिशतमखाद्या दिविषदः ।**
**करालं यत्क्ष्वेलं कबलितवतः कालकलना**
**न शम्भोस्तन्मूलं तव जननि ताटङ्कमहिमा ॥**

सुधां अमृतम्, अपिः विरोधे, आस्वाद्य पीत्वा, प्रतिभयजरामृत्युहरिणीं प्रतिभयौ भयङ्करौ जरामृत्यू जरामरणे हरतीति प्रतिभयजरामृत्युहरिणी ताम् । विपद्यन्ते म्रियन्ते, विश्वे अखिलाः, विधिशतमखाद्याः विधिः ब्रह्मा, शतमखो देवेन्द्रः, तौ आद्यौ प्रभृतिभूतौ येषां ते, दिविषदः सुराः, करालं अत्युग्रं, यत् क्ष्वेलं विषं कालकूटं, कबलितवतः भक्षितवतः, कालकलना कालेन अवसानकालेन कलना अवच्छेदः, मरणमिति यावत्, न शम्भोः तन्मूलं तस्य कालकलनाभावस्य मूलं कारणं तव भवत्याः, जननि ! हे मातः ! ताटङ्कमहिमा ताटङ्कस्य कर्णाभरणस्य सामर्थ्यम् ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे जननि ! विश्वे विधिशतमखाद्याः दिविषदः प्रतिभयजरामृत्युहरिणीं सुधां आस्वाद्यापि विपद्यन्ते । करालं क्ष्वेलं कबलितवतः शम्भोः कालकलना नास्तीति यत् तन्मूलं तव ताटङ्कमहिमा ॥

अयं भावः—यदि शम्भोरपि विपत्तिस्स्यात् ताटङ्कच्युतिः तर्हि स्यात् । ताटङ्कच्यावकत्वं कालस्य नास्ति, कालोत्पत्तिस्थितिलयानां ताटङ्कैकनियतत्वादिति देव्याः पातिव्रत्यमहिमा सर्वातिशायी इति ॥ १८ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



किरीटं वैरिञ्चं परिहर पुरः कैटभभिदः
कठोरे कोटीरे स्खलसि जहि जम्भारिमकुटम्।
प्रणम्रेष्वेतेषु प्रसभमुपयातस्य भवनं
भवस्याभ्युत्थाने तव परिजनोक्तिर्विजयते ॥

किरीटं मकुटं, वैरिञ्चं विरिञ्चिसम्बन्धि, परिहर दूरत एव कुरु, पुरः अग्रभागे। कैटभभिदः कैटभासुरं भिनत्तीति कैटभभित् तस्य विष्णोः, कठोरे कोटीरे मकुटाञ्चले, स्खलसि। अत्र काकुः अनुसन्धेया। जहि त्यज, जम्भारिमकुटं जम्भारेः इन्द्रस्य मकुटं किरीटम्। प्रणम्रेषु प्रकर्षेण दण्डवत् नतेषु, एतेषु विरिञ्चिकैटभजिज्जम्भारिषु, प्रसभं अतिशीघ्रं ससम्भ्रममित्यर्थः। उपयातस्य समागतस्य, भवनं मन्दिरं, भवस्य परमेश्वरस्य, अभ्युत्थाने अभिमुखोत्थितौ, तव परिजनोक्तिः सेवकानां वचनं, विजयते सर्वोत्कर्षेण वर्तते ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! पुरः वैरिञ्चं किरीटं परिहर, कैटभभिदः कठोरे कोटीरे स्खलसि, जम्भारिमकुटं जहि, (इत्येवंरूपा) एतेषु प्रणम्रेषु सत्सु भवनमुपयातस्य भवस्य प्रसभं तवाभ्युत्थाने परिजनोक्तिर्विजयते ॥

अत्र उदात्तालङ्कारः 'समृद्धिमद्वस्तुवर्णनमुदात्तम्' इति लक्षणात् ॥२९॥

स्वदेहोद्भूताभिर्घृणिभिरणिमाद्याभिरभितः
निषेव्ये नित्ये त्वामहमिति सदा भावयति यः।
किमाश्चर्यं तस्य त्रिनयनसमृद्धिं तृणयतः
महासंवर्ताग्निर्विरचयति नीराजनविधिम् ॥३०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



स्वदेहोद्भूताभिः स्वस्याः देहः स्वदेहः तस्मादुद्भूताभिः, अत्र देहशब्दो देहावयवं चरणं लक्षयति। घृणिभिः मयूखैः, मयूखानां चरणोद्भवत्वमुक्तं प्राक्। अणिमाद्याभिः अणिमागरिमेत्यादिभिः अष्टसिद्धिभिः, अभितः आवरणत्वेन अवस्थिताभिः* युक्तामिति शेषः। निषेव्ये! संसेव्ये! नित्ये! आद्यन्तरहिते! त्वामेतादृशीम्, अहमिति अहम्भावनया, सदा सर्वकालं, भावयति ध्यानं करोति, यः साधकः, किमाश्चर्यं नास्त्याश्चर्यं, तस्य साधकस्य त्रिनयनसमृद्धिं त्रीणि नयनानि मार्गाः [1]प्रापकाः सूर्यचन्द्राग्निरूपाः यस्य दर्शनायेति स त्रिनयनः। यद्वा–इडापिङ्गलासुषुम्नामार्गाः त्रयः तद्दर्शने उपाया इति त्रिनयनः सदाशिवः। यद्वा—त्रीणि नयनानि चक्षूंषि यस्य सः त्रिनयनः। क्षुभ्नादित्वात् णत्वाभावः। तस्य समृद्धिं ऐश्वर्यं तृणयतः तृणीकुर्वतः, महासंवर्ताग्निः प्रळयकालाग्निः विरचयति करोति। नीराजनविधिं नीराजनानुष्ठानम्। [2]तस्य नीराजनक्रियायामवस्थितः प्रळयाग्निरपीत्यर्थः॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे नित्ये! निषेव्ये! स्वदेहोद्भूताभिः घृणिभिः अणिमाद्याभिः अभितोऽवस्थिताभिः† परिवृतां त्वां यः साधकः अहमिति सदा भावयति, त्रिनयनसमृद्धिं तृणयतः तस्य महासंवर्ताग्निः नीराजनविधिं विरचयतीत्यत्र किमाश्चर्यम्?

अयं भावः—अहमिति भावनया तादात्म्यसिद्धौ भगवत्याः तन्नीराजनविधिराश्चर्यकरो न भवतीति॥ ३०॥

---

*'नित्याभिः त्रिपुरसुन्दर्यादिभिः' इति प. भृ.-कोशयोः

[1] प्रकाराः, [2] तस्याम्.

†'नित्याभिश्च' इति प. भृ.—कोशयोः,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**चतुष्षष्ट्या तन्त्रैः सकलमतिसन्धाय भुवनं**
**स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रैः पशुपतिः ।**
**पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिलपुरुषार्थैकघटना-**
**स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम् ॥ ३१**

**चतुष्षष्ट्या** चतुष्षष्टिसङ्ख्याकैः महामायाशम्बरादिभिः, **तन्त्रैः** सिद्धान्तैः । अत्र चतुष्षष्टिशब्दस्य सङ्ख्येयपरत्वात् एकवचनान्तत्वम् । **सकलं** समस्तं, **अतिसन्धाय** अपवाह्य वञ्चयित्वा, **भुवनं** प्रपञ्चं, **स्थितः** निवृत्तव्यापारः, **तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रैः** ताश्च ताश्च सिद्धयः तत्तत्सिद्धयः चतुष्षष्टितन्त्रेषु एकस्मिन् एकस्मिन् तन्त्रे प्रयोजनभूताः एकैकसिद्धय इत्यर्थः, तासां प्रसवः उत्पत्तिः, तत्र परतन्त्रैः । यद्वा—तेषां तेषां सिद्धयः तत्तत्सिद्धयः, येषां येषां साधकानां स्वस्वाभिमतास्सिद्धयः तासां प्रसवपरतन्त्रैः उत्पादकैकनियतैः । **पशुपतिः** पशूनां प्राणिनां पतिः, पश्यन्तीति पशवः । यद्वा—इन्द्रियाण्येव पश्यन्तीति व्युत्पत्त्या पशवः, तान् पशून् पाति रक्षतीति पशुपतिः जीवः, शिव एव जीव इति पशुपतिः शिवः, **पुनः** भूयः, **त्वन्निर्बन्धात्** त्वया निर्बन्धः तस्मात् । चतुष्षष्टितन्त्रप्रतिपादित-सर्वसिद्धान्तरूपसकलपुरुषार्थसाधनभूततन्त्रान्तरोपदेशस्वीकारव्यग्रया देव्या भवत्या कृतो निर्बन्ध इति यावत् । यद्वा—त्वदिति भिन्नं पदं पञ्चम्यन्तम् । **अखिलपुरुषार्थैकघटनास्वतन्त्रं** अखिलानां पुरुषार्थानां मुख्यत्वेन घटनायां स्वतन्त्रं स्वयमेव प्रधानं, **ते** भवत्याः, **तन्त्रं**, **क्षितितलं** भूतलं, **अवातीतरत्** । तरतेर्णौ चङि रूपम् । गत्यर्थत्वात् 'गतिबुद्धि' इत्यादिसूत्रेण द्विकर्मकत्वम् । **इदं** वक्ष्यमाणम् ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति ! पशुपतिः सकलं भुवनं तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रैः चतुष्षष्ट्या तन्त्रैः अतिसन्धाय स्थितः । पुनस्त्वन्निर्बन्धात् अखिलपुरुषार्थैकघटनास्वतन्त्रं ते तन्त्रमिदं क्षितितलमवातीतरत् ॥

चतुष्षष्टितन्त्राणि चतुश्शत्याम्—

चतुष्षष्टिश्च तन्त्राणि मातृणामुत्तमानि च ।
महामायाशम्बरं च योगिनीजालशम्बरम् ॥
तत्त्वशम्बरकं चैव भैरवाष्टकमेव च ।
बहुरूपाष्टकं चैव यमळाष्टकमेव च ॥
चन्द्रज्ञानं मालिनी च महासम्मोहनं तथा ।
वामजुष्टं महादेवं वातुलं वातुलोत्तरम् ॥
हृद्भेदं तन्त्रभेदं च गुह्यतन्त्रं च कामिकम् ।
कलावादं कलासारं तथान्यत् कुण्डिकामतम् ॥
मतोत्तरं च वीणाख्यं त्रोतलं त्रोतलोत्तरम् ।
पञ्चामृतं रूपभेदं भूतोड्डामरमेव च ॥
कुलसारं कुलोड्डीशं कुलचूडामणिस्तथा ।
सर्वज्ञानोत्तरं चैव महाकाळीमतं तथा ॥
अरुणेशं [1]मोदिनीशं विकु[2]ण्ठेश्वरमेव च ।
पूर्वपश्चिमदक्षं च उत्तरं च निरुत्तरम् ॥
विमलं विमलोत्थं च देवीमतमतःपरम् ॥

इत्येवं चतुष्षष्टितन्त्राणि पार्वतीं प्रति कथितानि । एतानि तन्त्राणि जगतां अतिसन्धानकारणानि विनाशहेतुभूतानि, वैदिकमार्गदूरवर्तित्वात् । अत एवोक्तं भगवत्पादैः 'चतुष्षष्ट्या तन्त्रैः सकलमतिसन्धाय भुवनम्' [3]सकलविद्वल्लोकप्रतारकाणि इमानि चतुष्षष्टितन्त्राणि इति । तथाहि—

[1] मेदिनीशम्. [2] विकुण्डीश्वर. [3] इति वदद्भिः इत्यधिकम्.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



महामायाशम्बरतन्त्रं मायाप्रपञ्चनिर्माणफलम् । मायाप्रपञ्चनिर्माणं नाम सर्वेषां चक्षुरादीनां अन्यथापदार्थग्रहणकारणं, यथा घटस्य पटाकारेण प्रतिभासनम् ॥

योगिनीजालशम्बरम्—मायाप्रधानतन्त्रं शम्बरमित्युच्यते । तत्र तन्त्रे योगिनीनां जालदर्शनम् । तच्च श्मशानादिकुमार्गे । साध्यते ॥

तत्त्वशम्बरम्—तत्त्वानां पृथिव्यादीनां शम्बरं महेन्द्रजालविद्या । महेन्द्रजालविद्यायां पृथिवीतत्त्वे उदकतत्त्वादीनि उदकतत्त्वे पृथिव्यादीनि तत्त्वानि एवमन्योन्यं प्रतिभासन्ते ॥

भैरवाष्टकं नाम—सिद्धभैरव—वटुकभैरव—कङ्काळभैरव—कालभैरव—कालाग्निभैरव—योगिनीभैरव—महाभैरव—शक्तिभैरवप्रधानानि अष्टतन्त्राणि निध्यादैहिकफलसाधनान्यपि कापालिकमतत्वात् वैदिकमार्गदूराणि ॥

बहुरूपाष्टकम्—शक्तेस्समुद्भूतानि रूपाणि ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा, शिवदूती चेत्यष्टौ रूपाणि । एतान्यवलम्ब्य प्रवृत्तानि तन्त्राणि अष्टौ, तेषां गणः अष्टकम् । एतदपि वेदमार्गदूरत्वात् हेयम् । अत्र श्रीविद्यायाः प्रसङ्गः बहुरूपाष्टकप्रस्तावे प्रसक्तानुप्रसक्त्या पातित इति न कश्चिद्दोषः ॥

यमळाष्टकम्—यमळो नाम कामसिद्धान्तः ? तत्प्रतिपादकानि तन्त्राणि यमळान्यष्टौ । तेषां गणः यमळाष्टकम् । तदपि वैदिकमार्गदूरम् । यद्यपि चतुष्षष्टितन्त्राणां यमळत्वं लोकव्यवहारसिद्धं; तत्तु अवैदिकत्वसाम्यात् उपचारादिति ध्येयम् ॥

चन्द्रज्ञानम्—चन्द्रज्ञानविद्यायां षोडशनित्याप्रतिपादनम् । नित्याप्रतिपादकत्वेऽपि कापालिकमतान्तःपातित्वात् हेयमेव । उपादेयचन्द्रज्ञानविद्या चतुष्षष्टितन्त्रातीता ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



मालिनीविद्या—समुद्रयानोपायहेतुः । सापि वैदिकमार्गदूरवर्तिनी ॥

महासम्मोहनम्—जाग्रतामपि निद्राहेतुः । सापि बालजिह्वाच्छेदनादिकुमार्गेण साध्येति निषिद्धा ॥

वामजुष्टमहादेवतन्त्रे-वामाचारप्रवर्तके इति हेये ॥

वातुलं, वातुलोत्तरं, कामिकं च तन्त्रत्रयं कर्षणादिप्रतिष्ठान्तविधिप्रतिपादकम् । तस्मिन् तन्त्रत्रये कर्षणादिप्रतिष्ठान्ता विधयः एकदेशे प्रतिपादिताः । स चैकदेशो वैदिकमार्ग एव । अवशिष्टस्तु अवैदिकः ॥

हृद्भेदतन्त्रं कापालिकमेव । यद्यपि हृद्भेदतन्त्रे षट्कमलभेदसहस्रारप्रवेशौ प्रतिपादितौ, तथापि तस्मिन् तन्त्रे वामाचार एव प्रवृत्त इति कापालिकमेव तत्तन्त्रम् ॥

तन्त्रभेद—गुह्यतन्त्रयोः—प्रकाशेन रहस्येन च परकृततन्त्राणां भेद इति तद्विद्यानुष्ठाने बहुहिंसाप्रसक्तेः तत्तन्त्रद्वयं वैदिकमार्गदूरम् ॥

कलावादम्—कलानां चन्द्रकलानां वादः प्रतिपादनं यस्मिन् तन्त्रे तत् कलावादं वात्स्यायनादिकम् । यद्यपि कामपुरुषार्थत्वेऽपि कलाग्रहणमोक्षणदशस्थानग्रहणचन्द्रकलारोपणादीनां कामपुरुषार्थे अनुपयोगात् परदारगमनादिनिषिद्धाचारोपदेशाच्च एकदेशे निषिद्धम् । यद्यपि निषिद्धांशः कापालिकतन्त्रं न भवति; तथापि तत्र प्रवर्तमानः पुरुषः अवश्यं कापालिकाचारो भवतीति कापालिकत्वेन गणना तन्त्रस्य ॥

कलासारम्—वर्णोत्कर्षविधिर्यत्र प्रवर्तते तत् कलासारं वामाचारप्रधानम् ॥

कुण्डिकामतम्—घुटिकासिद्धिहेतुः । सोऽपि वामाचारप्रधान एव ॥

मतोत्तरमते—रससिद्धिः ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



वीणाख्ये—वीणा नाम योगिनी । सा सिद्ध्यतीति वीणाख्यम् । सा वीणा सम्भोगयक्षिणीति केचिदाहुः ॥

त्रोतले—घुटिकाञ्जनपादुकासिद्धिः । घुटिका पानपात्रम् ॥

त्रोतलोत्तरे—चतुष्षष्टिसहस्रसङ्ख्याकयक्षिणीनां दर्शनम् ॥

पञ्चामृतम्—पञ्चानां पृथिव्यादीनां पिण्डाण्डे अमृतं यत्र मरणाभावः प्रतिपादितः तत् पञ्चामृतं तन्त्रम् । तदपि कापालिकमेव ॥

रूपभेदादितन्त्रपञ्चकं मारणहेतुरिति अवैदिकम् ॥

सर्वज्ञानादितन्त्रपञ्चकं कापालिकसिद्धान्तैकदेशिदिगम्बरमतमिति दूरत एव हेयम् ॥

पूर्वादिदेवीमतपर्यन्तं दिगम्बरैकदेशक्षपणकमतमिति तत्तोऽपि दूरत एव हेयम् ॥

एवं चतुष्षष्टितन्त्राणि परिज्ञातॄणामपि वञ्चकानि । ऐहिकसिद्धिमात्रपरत्वात् वैदिकमार्गदूराणि । परिज्ञातारोऽपि ऐहिकफलापेक्षया तत्र कतिचन प्रवृत्ताः प्रतारिता एवेति रहस्यम् ॥

ननु विप्रलिप्साद्याशयदोषरहितस्य भगवतः परमेश्वरस्य पशुपतेः कांश्चित्प्रति विप्रलम्भत्वं कथमिति चेत्—

मैवम्—परमेश्वरे परमकारुणिके विप्रलिप्साद्याशयदोषाः न सन्त्येव । किन्तु परमेश्वरः पशुपतिः ब्रह्मक्षत्रवैश्यशूद्रजातीयान् मूर्धावसिक्ताद्यनुलोमप्रतिलोमजातीयानधिकृत्य तन्त्राणि निर्मितवान् । तत्र त्रैवर्णिकानां चन्द्रकलाविद्यासु वक्ष्यमाणास्वधिकारः । [1]शूद्रादीनां चतुष्षष्टितन्त्रेष्वधिकारः ।

---

[1] शूद्राणां सङ्कीर्णानां च.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



एवमधिकारभेदमजानानाः अमीमांसकाः व्यामुह्यन्ति । तेषामेवायं दोषः, न पशुपतेः परमेश्वरस्येति ध्येयम् ॥

चन्द्रकलाविद्याष्टकं श्रीविद्याप्रतिपादकं तन्त्रं—चन्द्रकला, ज्योत्स्नावती, कलानिधिः, कुलार्णवम्, कुलेश्वरी, भुवनेश्वरी, बार्हस्पत्यं, दूर्वासमतं चेति। अस्मिन् तन्त्राष्टके त्रैवर्णिकानां शूद्रादीनां च अधिकारोऽस्ति। तत्र ब्राह्मणादीनधिकृत्य सव्यमार्गेण प्रादक्षिण्येन सर्वोऽप्यनुष्ठानकलापः प्रतिपादितः। शूद्रादीनधिकृत्य अपसव्यमार्गेण वामाचारो निरूपितः ॥

शुभागमतन्त्रपञ्चके वैदिकमार्गेणैव अनुष्ठानकलापो निरूपितः। अयं शुभागमपञ्चकनिरूपितो मार्गः वसिष्ठसनकशुकसनन्दनसनत्कुमारैः पञ्चभिः मुनिभिः प्रदर्शितः। अयमेव समयाचार इति व्यवह्रियते। तथैवास्माभिरपि शुभागमपञ्चकानुसारेण समयमतमवलम्ब्यैव भगवत्पादमतमनुसृत्य व्याख्या रचिता। चन्द्रकलाविद्याष्टकं तु कुलसमयानुसारित्वेन मिश्रकमित्युच्यते विद्वद्भिः। चतुष्षष्टितन्त्राणि कुलमार्ग एव—

**मिश्रकं कौलमार्गं च परित्याज्यं हि शाङ्करि ॥**

इति ईश्वरवचनात् मिश्रकमतं कौलमार्गं च परित्याज्यम्। कौलैः मृग्यते अवलम्ब्यत इति कौलमार्गः कौलमतम्। कर्मणि घञ्। अतश्च शुभागमपञ्चकमेव वैदिकैरादरणीयम्। केवलसमयमार्गप्रदर्शनपरत्वात्। समयमार्गस्वरूपं तु 'तवाधारे मूले सह समयया* इत्यादिश्लोकव्याख्यानावसरे निपुणतरमुपपादयिष्यामः ॥

तत्र शुभागमपञ्चके षोडशनित्यानां प्रतिपादनं मूलविद्यायामन्तर्भावमङ्गीकृत्य अङ्गतया। चक्रविद्यायां अङ्गतयैवान्तर्भावः कथितः। अत एव चतुष्षष्टिविद्यान्तर्भूतायां चन्द्रज्ञानविद्यायां षोडशनित्याः प्रधानत्वेन प्रति-

* श्लोक ४१.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



पादिता इति, तत्प्रतिपादकं तन्त्रं कौलमार्गः अयं तु समयमार्ग इति भेदः ॥

अत्रेदमनुसन्धेयम्—शुभागमपञ्चकं नाम वासिष्ठसंहिता, सनकसंहिता, शुकसंहिता, सनन्दनसंहिता, सनत्कुमारसंहिता, इति पञ्च संहिताः शुभागमपञ्चकम्। तत्र वसिष्ठसंहितायां देवीं प्रति ईश्वरवचने वसिष्ठेन शक्तिर्बोधिता। यथा—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि नित्याषोडशकं तव *।
न कस्यचिन्मयाऽऽख्यातं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥
तत्रादौ प्रथमा नित्या महात्रिपुरसुन्दरी।
ततः कामेश्वरी नित्या नित्या च भगमालिनी।
नित्यक्लिन्ना तथा चैव भेरुण्डा वह्निवासिनी।
महा[1]विद्ये[वज्रे]श्वरी रौद्री त्वरिता कुलसुन्दरी ॥
नित्या नीलपताका च विजया सर्वमङ्गला।
ज्वालामालिनिचिद्रूपाः एता नित्यास्तु षोडश ॥
प्रतिपत्प्रभृतौ देव्याः पौर्णमास्यन्तमर्चयेत्।
एकादिवृद्ध्या हान्या च दर्शान्तं देवि विग्रहम् ॥

एतच्च षोडशनित्यानां षोडशतिथ्यात्मकत्वं उत्तरश्लोके निरूप्यते ॥

इदानीं षोडशनित्यानां श्रीचक्रे अङ्गतया अन्तर्भावो निरूप्यते—षोडशनित्यास्तु अष्टवर्गात्मकतया अष्टदलपद्मे अष्टपत्रेषु स्थिताः यथाक्रमं अष्टकोणचक्रे प्रागादिकोणमारभ्य एकैकस्मिन् कोणे द्विकंद्विकमन्तर्भूतम्। एवमष्टद्विकानि अष्टकोणेषु अन्तर्भूतानि। एता एव नित्याः षोडशस्वरात्मकतया षोडशदलपद्मे स्थिताः द्विदशारेऽन्तर्भूताः। एतासां नित्यानां

---

*'षोडशकं नवम्' 'षोडशिकार्णवं तव' इत्यपि पाठान्तरे. [1] विश्वेश्वरी.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



मध्ये प्रथमं नित्याद्वयं त्रिकोणबिन्दुरूपेण स्थितम्। अवशिष्टास्तु चतुर्दश नित्याः मन्वश्रे अन्तर्भूताः मेखलात्रयभूपुरत्रये बैन्दवत्रिकोणयोरन्तर्भूते। एवं नित्यानां चक्रे अन्तर्भावः। इममेवान्तर्भावं मेरुप्रस्तारमाहुः। अत एव चन्द्रकलाविद्यायाः चक्रविद्यायाः अङ्गत्वं नित्यानां सिद्धम्।

सनन्दनसंहितायां ऋषीन् प्रति सनन्दनवचनम्—एतास्तु षोडशनित्याः चन्द्रकलायाः चक्रविद्याया अङ्गभूताः। एताश्च षोडशनित्याः स्वरात्मकाः पञ्चदशाक्षरीमन्त्रगत 'ए'कारादिभूत 'अ'कारविसर्गात्मक 'स' काराभ्यां सङ्गृहीताः जीवकलारूपाः बैन्दवस्थाने स्थापिताः तत्रैव अन्तर्भूताः। कादयो मावसानाः पाशाङ्कुशबीजयुक्तास्सन्तः अष्टारे दशकोणद्वये च अन्तर्भूताः। शिष्टास्तु यकारादयो नव वर्णाः द्विरावृत्त्या मन्वश्रे चतुर्दशकोणेषु चतुर्दश अन्तर्भूताः, शिष्टं वर्णचतुष्टयं शिवचक्रचतुष्टयेऽन्तर्भूतम्। इममेव कैलासप्रस्तारमाहुः। एवं नित्यानां चक्रविद्याया अङ्गत्वं प्रतिपादितम्॥

सनत्कुमारसंहितायामपि चक्रविद्यायां षोडशनित्यानां अङ्गत्वं प्रतिपादितम्। यथा सनत्कुमारवचनम्—श्रीचक्रस्याङ्गभूताः नित्याः वशिन्यादिभिः द्विकंद्विकं मेलयित्वा बैन्दवं त्रिकोणं विहाय अष्टसु कोणेष्वन्तर्भाव्याः। मध्ये त्रिपुरसुन्दरी अन्तर्भाव्या। अष्टवर्गास्तु अष्ट वशिन्यादयः, षोडश नित्याः, द्वादश योगिन्यः, चतस्रो गन्धाकर्षिण्यादयः—एवं चतुश्चत्वारिंशत्। अत्र एकां शक्तिं विहाय त्रयश्चत्वारिंशत्कोणेषु त्रयश्चत्वारिंशद्देवता अन्तर्भाव्याः, एकां त्रिपुरसुन्दरीं बैन्दवस्थानादधस्तात्, गन्धाकर्षिण्यादयस्तु चतुर्द्वारेषु इति नित्यानां अङ्गत्वं प्रतिपादितम्। इममेव भूप्रस्तारमाहुः। अष्टानां वशिन्यादीनां द्वादशयोगिनीनां गन्धाकर्षिण्यादीनां नामधेयानि 'सवित्रीभिर्वाचाम्' * इत्यादिश्लोकव्याख्यानावसरे कथितानि॥ ३१॥

* १७ श्लोकः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अथ निखिलपुरुषार्थैकघटनास्वतन्त्रं भगवत्यास्तन्त्रं पशुपतिः क्षिति-तलमवातीतरदित्युक्तं पूर्वश्लोके। तदेव तन्त्रं प्रस्तौति—

**शिवश्शक्तिः कामः क्षितिरथ रविश्शीतकिरणः**
**स्मरो हंसश्शक्रस्तदनु च परामारहरयः।**
**अमी हृल्लेखाभिस्तिसृभिरवसानेषु घटिताः**
**भजन्ते वर्णास्ते तव जननि नामावयवताम्॥**

शिवः ककारः। शक्तिः एकारः। कामः ईकारः। क्षितिः लकारः। अथशब्दः अवसानद्योतकः। रविः हकारः। 'शीतकिरणः सकारः। स्मरः ककारः। हंसः हकारः। शक्रः लकारः। 'तदनु च' इति अवसानं द्योतयति। परा सकारः। मारः ककारः। हरिः लकारः। अमी द्वादश वर्णाः। हृल्लेखाभिः ह्रीङ्कारैः, तिसृभिः त्रित्वविशिष्टैः, अवसानेषु विरामस्थानेषु चतुष्कपञ्चकत्रिकाणामुपरि, घटिताः योजिताः, भजन्ते प्राप्नुवन्ति। वर्णाः ते पूर्वोक्ताः ककारादयः, तव भवत्याः, जननि! हे मातः! नामावयवतां नाम्नः त्रिपुरसुन्दरीमन्त्रस्य अवयवतां प्रतीकत्वम्॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे जननि! शिवः शक्तिः कामः क्षितिः अथ रविः शीतकिरणः स्मरः हंसः शक्रः तदनु च परामारहरयः इत्येते वर्णाः तिसृभिः हृल्लेखाभिः अवसानेषु घटिताः ते वर्णाः तव नामावयवतां भजन्ते॥

अत्रेदमनुसन्धेयम्—शिवः शक्तिः कामः क्षितिरिति वर्णचतुष्टयं आग्नेयं खण्डम्। रविः शीतकिरणः स्मरः हंसः शक्र इति वर्णपञ्चकं सौरं



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



खण्डम् । उभयोः खण्डयोः मध्ये रुद्रग्रन्थिस्थानीयं ह्लेखाबीजम् । परामारहरय इति वर्णत्रयेण सौम्यं खण्डं निरूपितम् । सौम्यसौरखण्डयोर्मध्ये विष्णुग्रन्थिस्थानीयं भुवनेश्वरीबीजम् । तुरीयमेकाक्षरं चन्द्रकलाखण्डम् । सौम्यचन्द्रकलाखण्डयोर्मध्ये ब्रह्मग्रन्थिस्थानीयं ह्लेखाबीजम् । चन्द्रकलाखण्डं तु गुरूपदेशवशादवगन्तव्यमिति न प्रकाशितम् । अत एव—

त्रिखण्डो मातृकामन्त्रः सोमसूर्यानलात्मकः ॥ इति ॥

अवरोहक्रमेणेति शेषः । 'सोमसूर्यानलात्मकः' इत्येतावन्मात्रे वक्तव्ये त्रैखण्ड इत्युक्तिः ज्ञानशक्तीच्छाशक्तिक्रियाशक्त्यात्मकं खण्डत्रयमिति जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थात्रयात्मकं, विश्वतैजसप्राज्ञवृत्तित्रयात्मकम्, तमोरजस्सत्त्वगुणात्मकं, इत्येवंपरा । एतच्च पुरस्तात्प्रपञ्चयिष्यामः ॥

अत्र शिवश्शक्तिरित्यादिशब्दाः क्वचित् लक्षितलक्षणया क्वचित् लक्षणया ककारादिवर्णपराः । तथाहि त्रिपुरसुन्दरीमन्त्रस्य षोडशवर्णाः । ते च षोडश वर्णाः षोडशनित्यात्मतया स्थिताः । अत्र षोडश्याः कलायाः नित्यात्वव्यपदेशः चन्द्रकलात्वरूपसाम्यात् । सा च परा कला चिदेकरसा । तस्याश्छाया विशुद्धिचक्रे षोडशारे कलात्मतया भ्रमतीति* रहस्यम् । सा प्रधानं प्रकृतिश्च । अस्या अङ्गभूताः पञ्चदश नित्या इति पूर्वश्लोके प्रतिपादितम् ॥

यद्यपि ककारादयः श्रूयमाणाः पञ्चदश वर्णाः संप्रदायतो ज्ञातव्याः; एको वर्णः षोडशकलात्मकः [1]प्रधानभूत इति, यद्यपि षोडशी कला गुरुमुखादेव अवगन्तव्या; तथापि तस्या अप्रतिपादने व्याख्यानं सापेक्षमेव। अतोऽनुपादेयं स्यादेवेति सा कला निरूप्यते ॥

* 'भ्राजती' इति तं-पुस्तके. [1]प्रकृतिभूत इति.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



न च—

सच्छिष्यायोपदेष्टव्या गुरुभक्ताय सा कला ॥ इति ॥

शिष्याणामेवोपदेष्टव्या नान्येषामिति वाच्यम्। ये तु मदीयं ग्रन्थं दृष्ट्वा तां कलां जानन्ति ते मच्छिष्या एवेत्यस्माकमनुग्रहः॥

ननु पादवन्दन–पादोपसङ्ग्रहण–हस्तमस्तकसंयोगादेः अङ्गकलापस्य शिष्यत्वापादकस्याभावे कथं तेषु शिष्यत्वमिति चेत्—

सत्यम्, अस्मदीयग्रन्थं दृष्ट्वा षोडश्याः कलायाः स्वरूपं गुर्वन्तरमुखादेव जानतां शिष्यत्वं मास्तु। ये तु न जानन्ति गुरुमुखादपि तेषामुपदेशो न सम्भाव्यत एव, तदानीं गुर्वेकपरतन्त्रे अस्मिन् मन्त्रे "केवाऽस्माकं गुरवः?" इति जिज्ञासायामुदयमानायां तेषां जिज्ञासूनां वर्तमानानां वर्तिष्यमाणानां च वयमेव गुरव इति तेष्वनुग्रहः कृतोऽस्माभिः॥

षोडशी कला नाम शकार–रेफ–ईकार–बिन्द्वन्तो मन्त्रः। एतस्यैव बीजस्य नाम श्रीविद्येति। श्रीबीजात्मिका विद्या श्रीविद्येति रहस्यम्। एवं षोडशनित्यानां प्रकृतिभूताः ककारादयः। ताश्च षोडश नित्याः शुक्लप्रतिपदमारभ्य पौर्णमास्यन्ततिथिरूपाः, कृष्णपक्षप्रतिपदमारभ्य अमावास्यान्ततिथिरूपाः। एता एव चन्द्रकलाभिधानाः। चन्द्रकला एव प्रतिपदादितिथय इति सुप्रसिद्धम्। यथोक्तं ज्योतिश्शास्त्रे—

प्रतिपन्नाम विज्ञेया चन्द्रस्य प्रथमा कला।
द्वितीयाद्या द्वितीयाद्याः पक्षयोश्शुक्लकृष्णयोः॥ इति॥

अयमर्थः—चन्द्रस्य प्रथमायाः कलायाः प्रतिपदिति नामधेयम्। सैव कलात्मिका सूर्यमण्डलान्निर्गता। कृष्णपक्षे तु सूर्यमण्डलं प्रविष्टा। एवं शुक्लपक्षे सूर्यमण्डलान्निर्गता द्वितीया कला द्वितीया तिथिः। कृष्णपक्षे तु सूर्यमण्डलं प्रविष्टा द्वितीया कला द्वितीया तिथिरिति। एवं सर्वत्र ऊह-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



नीयम् । अतश्च पञ्चदशकलाव्यवधानं सूर्यचन्द्रयोर्यत्र सा पौर्णमासी । पञ्चदश्यां कलायां सूर्यचन्द्रयोरत्यन्तसंयोगः सा अमावास्येति ज्ञेयम् । अतः कौलमते चन्द्रकलात्मिकानां षोडशानां नित्यानां प्रतिदिनं एकस्या एवानुष्ठानम् । सर्वासां समयिमते । षोडश्याः कलायास्तु पञ्चदशस्वपि तिथिषु अनुष्ठानं सिद्धम्, पञ्चदशानां नित्यानां तत्रैव अन्तर्भावात् ॥

अयं च सम्प्रदायक्रमः सम्यगुक्तोऽपि दुर्विज्ञेयं प्रमेयजातमिति विस्पष्टार्थं पुनरुच्यते । प्रतिपदि त्रिपुरसुन्दरीकला ध्येया । द्वितीयायां कामेश्वरीकला । तृतीयायां भगमालिनीकला । चतुर्थ्यां नित्यक्लिन्नाकला उपास्या । पञ्चम्यां भेरुण्डाख्या कला । षष्ठ्यां वह्निवासिनीकला । सप्तम्यां महा[1]विद्ये[वज्रे]श्वरीकला । अष्टम्यां रौद्रीकला । नवम्यां त्वरिताकला । दशम्यां कुलसुन्दरीकला । एकादश्यां नीलपताकाख्या कला । द्वादश्यां विजयाख्या कला । त्रयोदश्यां सर्वमङ्गळाख्या कला । चतुर्दश्यां ज्वालाख्या कला । पञ्चदश्यां मालिन्याख्या कला । सर्वासु तिथिषु चिद्रूपाख्या कला षोडशी उपास्या । प्रतिपदि या त्रिपुरसुन्दरी कथिता सा चिद्रूपात्मिका न भवति, चिद्रूपात्मिकायाः मूलविद्यायाः भिन्नत्वेन अनुष्ठानात् । मन्त्रभेदश्च-स मन्त्रः प्रतिपद्येव अनुष्ठेयो न द्वितीयायामिति । त्रिपुरसुन्दरीनित्यायाः नाम-साम्यमित्यवगन्तव्यम् ॥

एतासां षोडशनित्यानां चन्द्रकलात्मिकानां विशुद्धिचक्रं षोडशारं स्थानम् । तत्र प्रागादिक्रमेण षोडश नित्याः तत्कोणेषु परिवर्तन्ते । तद-धस्स्थितद्वादशारे संवित्कमले द्वादशसूर्यमण्डलानि प्रादक्षिण्यक्रमेण परिवर्तन्ते । तेषां द्वादशानां सूर्याणां द्वादशमासेषु अधिकारः ॥

एतच्च सनत्कुमारसंहितायां श्लोकैः सप्तशत्या निरूपितं[2] संक्षेपेणो-च्यते—सूर्यचन्द्रयोः देवयानपितृयानात्मकेडापिङ्गळानाडीमार्गेण अहोरात्रयोः

[1] विश्वेश्वरीकला. [2] तत्तु संक्षेपेणोच्यते.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



सञ्चरणम् । चन्द्रस्तु वामनाडीमार्गेण सञ्चरन् द्विसप्ततिसहस्रनाडीमार्गं अमृतेन सिञ्चति । सूर्यस्तु दक्षिणनाडीमार्गेण सञ्चरन् तदुत्क्षिप्तान् अमृत-बिन्दून् उपाहरति। यदा चन्द्रसूर्ययोः उभयोः आधारचक्रे समावेशः तदा अमावास्यातिथिरुत्पद्यते । कृष्णपक्षतिथयः ततः उत्पद्यन्ते । अत एव कुण्डलिनीशक्तिः आधारकुण्डे सूर्यकिरणसम्पर्कात् विलीनचन्द्रमण्डलमध्य-गलत्पीयूषपरिपूरिते स्वपिति । स्वापावस्थैव कृष्णपक्ष इत्युच्यते । योगी यदा समाहितचित्तः चन्द्रं चन्द्रस्थाने सूर्यं सूर्यस्थाने वायुना निरोद्धुं क्षमते तदा चन्द्रसूर्यौ निरुद्धौ अमृतसेचनतदाहरणयोः अशक्तौ । तदानीं वायुना प्रेरितेन स्वाधिष्ठानवह्निना शुष्कीभूते अमृतकुण्डे निराहारा कुण्डलिनी सुप्तोत्थिता सती सर्पवत् फूत्कारं कुर्वती ग्रन्थित्रयं भित्वा सहस्रदलकमलमध्यवर्ति चन्द्र-मण्डलं दशति । तस्माद्गलत्पीयूषधाराः आज्ञाचक्रोपरिस्थितचन्द्रमण्डलं आप्ला-वयन्ति । तस्माद्गलिताभिः अमृतधाराभिः सर्वं देहमाप्लावयन्ति । ततश्च आज्ञाचक्रोपरिस्थितस्य चन्द्रमसः कलाः पञ्चदश नित्याः । ताः पञ्चदश तदधस्स्थितविशुद्धिचक्रमाश्रित्य परिवर्तन्ते।सहस्रदलकमलान्तरस्थितचन्द्रमण्डलं बैन्दवस्थानम् । तत्कला चिन्मयी आनन्दरूपा आत्मेति गीयते । सैव त्रिपुरसुन्दरी । एवं शुक्लपक्ष एव कुण्डलिनीप्रबोधः कर्तुं शक्यते योगीश्वराणां, न तु कृष्णपक्ष इति रहस्यम् । सर्वाः शुक्लपक्षतिथयः पौर्णमासीसंज्ञकाः । सर्वाः कृष्णपक्षतिथयस्तु अमावास्यायां अन्तर्भवन्ति । एकैवामावास्या कृष्ण-पक्ष इति गीयते । अत एव आधारं अन्धतामिस्रम् । स्वाधिष्ठानं तु सूर्य-किरणसम्पर्कात् मिश्रलोकः । मणिपूरस्तु अग्निस्थानत्वेऽपि तत्र स्थिते जले सूर्यकिरणप्रतिबिम्बात् मिश्रक एव लोकः । अनाहतं ज्योतिर्लोकः । एवं अनाहतचक्रपर्यन्तं ज्योतिस्तमोमिश्रको लोकः । विशुद्धिचक्रं चान्द्रो लोकः । आज्ञाचक्रं तु चन्द्रस्थानत्वात् सुधालोकः । अनयोर्लोकयोः सूर्यकिरणसम्पर्कात् ज्योत्स्ना नास्ति । सहस्रकमलं तु ज्योत्स्नामयं एव लोकः । तत्र स्थित-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्चन्द्रो नित्यकलायुक्तः। चन्द्रबिम्बं श्रीचक्रम्। कला सादाख्या। अतश्च त्रिकोणं आधारः, अष्टकोणं स्वाधिष्ठानम्, दशारं मणिपूरं, द्वितीयदशारं अनाहतं, चतुर्दशारं विशुद्धिचक्रम्, शिवचक्रचतुष्टयं आज्ञाचक्रं, बिन्दुस्थानं चतुरश्रं सहस्रकमलमिति सिद्धम्। आज्ञाचक्रगतचन्द्रे पञ्चदश कलाः, षोडश्याः कलायाः प्रतिफलनं च। श्रीचक्ररूपचन्द्रबिम्बे एकैव कला, सा परमा कला। मिलित्वा षोडशकलाः। यथा—

षोडशेन्दोः कला भानोः द्विर्द्वादश दशानले।
सा पञ्चाशत्कला ज्ञेया मातृकाचक्ररूपिणी॥ इति॥

एताः पञ्चाशत्कलाः पञ्चाशद्वर्णात्मिकाः पञ्चदशाक्षरीमन्त्रे अन्तर्भूताः। यथा—आदिमेन ककारेण अन्तिमो लकारः प्रत्याहृतः तन्मध्यवर्तिनां वर्णानां ग्राहकः। अयमेव लकारः एकारपूर्ववर्तिना अकरेण प्रत्याहृतः पञ्चाशद्वर्णग्राहकः॥

ननु अनेनैव प्रत्याहारग्रहणेन पञ्चाशद्वर्णात्मकमातृकाग्रहणे किमर्थं ककारलकारयोः प्रत्याहारग्रहणप्रयासः?

उच्यते—ककारादिलकारान्तानां कलाशब्दवाच्यत्वं गौणम्, व्यञ्जनानां स्वरान् प्रति अङ्गत्वात्; कलानां स्वराणां प्रधानत्वमिति गुणप्रधानभावप्रदर्शनार्थं प्रत्याहारद्वयाश्रयणं कृतं सनकादिभिरिति ध्येयम्॥

चत्वारोऽनुस्वाराः विन्दुलक्षकाः। तेन बिन्दुना तदुपरि प्रतीयमानो नादः सङ्गृहीतः। एवं नादविन्दुकलात्मकं श्रीचक्र त्रिखण्डमिति कथितम्। सादाख्या कला श्रीविद्यापरपर्याया नादविन्दुकलातीता॥

एताः षोडशनित्यासु अन्तर्भूताः। तथाहि—षोडश स्वराः, कादयः तान्ताः षोडश, थादयः सान्ताश्च षोडश। षोडशत्रिकं षोडशनित्यासु

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अन्तर्भूतम्। हकारः आकाशबीजं बैन्दवाकाशे निलीनम्। ळकारः अन्तस्थास्वन्तर्भूतोऽपि ककारेण प्रत्याहारार्थं पुनर्गृहीतः। क्षकारस्तु ककार-षकारसमुदायरूपत्वात्। ककारादयस्सान्ताः द्विष्षोडश नित्यासु अन्तर्भूताः स्वरसंहिताः॥

अकारेण प्रत्याहृतः क्षकारः अक्षमालेति गीयते। अ-ः क्षकारेण* सर्वा मातृकाः सङ्गृहीता भवन्ति। अत एव† अन्तिमखण्डे सकलह्रीमिति ककारलकारयोर्योगे कलाशब्दनिष्पत्तिः, कषयोर्योगे क्षकारनिष्पत्तिरिति, एवं मन्त्रेण सर्वा मातृकाः सङ्गृहीता इति तात्पर्यम्॥

अतश्च षोडशनित्यानां मन्त्रगतषोडशवर्णात्मकत्वं, षोडशवर्णानां पञ्चाशद्वर्णात्मकत्वं, पञ्चाशद्वर्णानां सूर्यचन्द्राग्निकलात्मकत्वं, सूर्यचन्द्राग्निरूपेण त्रिखण्डत्वमिति ऐक्यचतुष्टय§मनुसन्धेयम्॥

एवं चक्रमन्त्रयोरपि। यथा ह्रीङ्कारत्रयं श्रीबीजं च शिवचक्रचतुष्टयात्मकत्रिकोणे बिन्दुरूपेण अन्तर्भूतम्। सकलेति वर्णत्रयेण सङ्गृहीता मातृका, अक्षमालात्मिका मातृका, उभयमपि यथायोगं चक्रे अन्तर्भूतम्। तथाहि—अन्तस्थाश्चत्वारः, ऊष्माणश्चत्वारः–एवमष्टौ वर्णाः अष्टकोणात्मकाः। कादयो मावसानाः वर्गपञ्चमान् विहाय दशारयुग्मे अन्तर्भूताः। वर्गपञ्चमास्तु अनुस्वाररूपेण बिन्दावन्तर्भूताः। चतुर्दशारे चतुर्दश स्वरा अन्तर्भूताः। अनुस्वारविसर्गयोः बिन्दावन्तर्भावः। इति चक्रमन्त्रयोरैक्यं सुभगोदयमतानुसारेण कथितम्॥

पूर्णोदयमतानुसारेण तु—सोमसूर्यानलात्मकतया चक्रस्य त्रिखण्डत्वम्। एवं मन्त्रस्यापि त्रिखण्डत्वं सुप्रसिद्धम्। [1]चन्द्रस्य कलाः षोडश इन्दुखण्डे

---

*'अतः अच्च इति प्रत्याहारेण' इति प.–कोशे. † अथवा इति प. †कोशे.
§'विद्याचतुष्टय' इति त.–कोशे. [1] बैन्दव्यः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri


अन्तर्भूताः। स[1] च इन्दुखण्डः इन्द्वात्मके यन्त्रखण्डेऽन्तर्भूतः। एवं भानोः चतुर्विंशतिकलाः भानुखण्डेऽन्तर्भूताः। स च खण्डः यन्त्रखण्डेऽन्तर्भूतः। एवमाग्नेया दशकला आग्नेयखण्डे अन्तर्भूताः। स च खण्डः यन्त्रे आग्नेयखण्डे अन्तर्भवतीति कलायन्त्रमन्त्राणां ऐक्यमनुसन्धेयम्॥

सुभगोदये नित्यानां स्वरूपमुक्तम्—

दर्शाद्याः पूर्णिमान्ताश्च कलाः पञ्चदशैव तु।
षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी॥ इति॥

अस्यार्थः—दर्शाद्याः पूर्णिमान्ताश्च तिथयः। दर्शा नाम अमावास्यानन्तरभाविनी प्रतिपत्कला। तस्या ईषद्दर्शनात् दर्शा। दर्शा आद्या यासां ताः। पूर्णिमा अन्तो यासां ताः॥

दर्शा, दृष्टा, दर्शता, विश्वरूपा, सुदर्शना, आप्यायमाना, आप्यायमाना, आप्याया, सूनृता, इरा, आपूर्यमाणा, आपूर्यमाणा, पूरयन्ती, पूर्णा, पौर्णमासी—एतानि नामधेयानि श्रुतिबोधितानि सङ्गृहीतानि 'दर्शाद्याः पूर्णिमान्ताः' इत्यनेन। एतासां स्वरूपं पुरस्तात् निवेदयिष्यते। दर्शादीनां पञ्चदशानां कलानां यथाक्रमं त्रिपुरसुन्दरीप्रभृतयः पञ्चदश नित्याः अधिदेवताः। षोडश्याः चिद्रूपात्मिकायाः कलायाः सादाख्यतत्त्वरूपत्वात् अधिदेवतान्तरं नास्ति। स्वयमेव सर्वस्य अधिदेवतेति ध्येयम्। एतासां नित्यानां अभिमानिनी देवता कामदेवः एक एव। अधिष्ठानदेवता कामेश्वरी एकैव। अतश्च मूलविद्यागतपञ्चदशवर्णानां दर्शादयः कलाः, नित्याः कलाश्च, विग्रहान्तरमिति अनुसन्धेयम्। अत एव दर्शादिकलानां त्रिखण्डत्वं स्पष्टम्। दर्शा दृष्टा दर्शता विश्वरूपा सुदर्शना—एष आग्नेयः खण्डः। आप्यायमाना आप्यायमाना आप्याया सूनृता इरा—एष सौरः खण्डः। आपूर्य-

[1] सचायं खण्डद्वयात्मके.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



माणा आपूर्यमाणा पूरयन्ती पूर्णा पौर्णमासीति—एष चान्द्रः खण्डः तृतीयो निरूपितः ! एतासां कलानां नित्यात्वेन ऐक्यं सम्पाद्य प्रतिपदादौ उपासनाप्रकारः पूर्वमेव दिङ्मात्रं उदाहृतः। दर्शा कला शिवतत्त्वात्मिका। दृष्टा कला शक्तितत्त्वात्मिका। दर्शता कला मायातत्त्वात्मिका। विश्वरूपा कला शुद्धविद्यातत्त्वात्मिका। सुदर्शना कला जलतत्त्वात्मिका। एवं पञ्चतत्त्वात्मकं खण्डं आग्नेयमित्यग्निरत्र अधिदेवता, कामदेवस्तु सर्वत्र अधिदेवता, कामेश्वरी सर्वत्र अधिष्ठात्रीत्युक्तम्। आप्यायमाना कला तेजस्तत्त्वात्मिका। आप्यायमाना कला वायुतत्त्वात्मिका। आप्याया कला मनस्तत्त्वात्मिका। सूनृता कला पृथिवीतत्त्वात्मिका। इरा कला आकाशतत्त्वात्मिका। अपूर्यमाणा कला विद्यातत्त्वात्मिका। एष सौरः खण्डो द्वितीयः। तत्र सूर्यो देवता। कामदेवस्तु सर्वत्र अधिदेवता। कामेश्वरी सर्वत्र अधिष्ठात्रीत्युक्तम्। आपूर्यमाणायाः कलायाः चन्द्रखण्डान्तस्स्थिताया अपि सौरखण्डे अन्तर्भावः। इराकलाप्रभेदत्वात् इराऽऽपूर्यमाणयोः ऐक्यमिति अनुसन्धेयम्। आपूर्यमाणा कला महेश्वरतत्त्वात्मिका। पूरयन्ती कला परतत्त्वात्मिका। पूर्णा कला आत्मतत्त्वात्मिका। पौर्णमासी कला सदाशिवतत्त्वात्मिका। एष सौम्यः खण्डः। सोमः अत्र अधिदेवता। कामदेवः सर्वत्र अधिदेवता। कामेश्वरी सर्वत्र अधिष्ठात्रीत्युक्तम्। नित्या कला सादाख्यतत्त्वात्मिका। एतास्तु विशुद्धिचक्रे षोडशारे प्रागादिक्रमेण षोडशदिक्षु परिभ्रमन्ति ॥

तास्तु आज्ञाचक्रोपरिस्थितचन्द्रमण्डलस्य षोडश कलाः इति सुभगोदये यत् प्रपञ्चितं तत्तु—पञ्चदशकलानामेव षोडशारे परिभ्रमणं, षोडश्याः कलायाः सहस्रदलकमल एव अवस्थानं, तत्र अवस्थितायाः नित्यायाः कलायाः प्रभापटलं षोडशारे स्फुरति—इत्येवंपरमित्येव अनुसन्धेयम् ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अयमर्थः—शिवः शक्तिः कामः क्षितिरिति शिवशब्देन शिवतत्त्वात्मिका दर्शाख्या कला त्रिपुरसुन्दरीनामधेया कथ्यते। तया तत्प्रकृतिभूतः ककारो लक्ष्यते। एवं शक्तिशब्देन शक्तितत्त्वात्मिका या दृष्टा कला तया एकारो लक्ष्यते। काम इत्यनेन कामदेवत्या या दर्शता कला तया ईकारो लक्ष्यते। क्षितिरित्यनेन "लकारः क्षितितत्त्वं" इति शास्त्रान्तरप्रसिद्ध्या लकारो लक्ष्यते। रविरित्यनेन सूर्यखण्डात्मतया रविः हकारो लक्ष्यते। शीतकिरणः चन्द्रः। "सकारः चन्द्रबीजं" इति शास्त्रान्तरप्रसिद्ध्या शीतकिरणशब्देन सकारो लक्ष्यते। स्मरशब्देन कामराजप्रकृतिभूतः ककारो लक्ष्यते। हंसः सूर्यः हकाराधिपतिरित्युक्तं प्राक्। शक्रः इन्द्रः। "लकारः इन्द्रबीजं" इति शास्त्रान्तरप्रसिद्धेः शक्रशब्देन लकारो लक्ष्यते। परा चन्द्रकलेति चन्द्रबीजं सकारो लक्ष्यते। मारः कामराजबीजमिति तत्प्रकृतिभूतः ककारो लक्ष्यते। हरिः इन्द्रः लकारो लक्ष्यते। एवं मन्त्रगतवर्णानां ककारादीनां शिवादिपदानि लक्षकाणि, क्वचित् लक्षितलक्षकाणीति ध्येयम्॥

एवं पञ्चदशनित्यानां समुदायात्मकस्य मन्त्रस्य पञ्चदशतिथिषु अनुष्ठानं विहितम्। पृथक् नित्यानुष्ठानं तु प्रतिदिनं पृथक् नियतम्। एतच्च अतिरहस्यं गुरुमुखादेव अवगन्तव्यमपि शिष्यानुजिघृक्षया कथितम्। अतश्च इममेव अर्थं श्रुतिरप्याह।

**दर्शाद्याः पूर्णिमान्ताश्च कलाः पञ्चदशैव तु।**

इत्यत्र यत् बहु वक्तव्यं, तत्तु श्रुतिव्याख्यानावसरे निरूपयिष्यामः। तथा च तैत्तिरीयशाखायां काठके श्रूयते—'इयं वाव सरघा' इत्यनुवाकः*। तत्र षोडशनित्यात्मकदिवसपरिज्ञाने फलं प्रतिपादितं, ज्ञानमात्रफलप्रतिपादकत्वात्। अनारभ्याधीतं अश्वमेधकाण्डानन्तरं 'संज्ञानं विज्ञानम्'† इति, तिथिप्रतिपादकवाक्यानां प्रकरणभेद एव। तस्य अनुवाकस्य ब्राह्मणं 'इयं वाव सरघा'*

* तै. ब्रा. ३-१०-१०. † तै. ब्रा. ३-१०-१.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



इति । एवं उभयं मन्त्रब्राह्मणात्मकं अनारभ्याधीतं ज्ञानैकफलं वाक्यजातम् ॥

*इयं वाव सरघा ।

अस्यार्थः—इयं चन्द्रकला सादाख्या सरघा सरधावत् मधुस्यन्दिनी अमृतस्यन्दिनीति श्रीचक्रात्मकचन्द्रस्य सरघात्वनिरूपणम् ॥

*तस्यां अग्निरेव सारघं मधु ।

तस्याः सरघायाः अग्निरेव अग्निस्थानमेव बैन्दवं त्रिकोणं सारघं सरघोद्भूतं मधु, तस्यैव सुधासिन्धुरूपत्वात् ॥

सारघस्य मधुनः उपचयापचयप्रकारमाह—

*या एताः पूर्वपक्षापरपक्षयो रात्रयः ।

[1] एताः संज्ञानानुवाके कथिताः । पूर्वपक्षापरपक्षयोः शुक्लकृष्णपक्षयोः रात्रयः ॥

*ता मधुकृतः ।

ताः रात्रयः मधु कुर्वन्तीति मधुकृतः । रात्रिष्वेव मधुनः सङ्ग्रह इति लोकप्रसिद्धिः । रात्रावेव चन्द्रकलारूपायाः श्रीविद्यायाः अनुष्ठानं, न च दिवसे इति उपदेशः । पूर्वपक्षरात्रयः दर्शादिपौर्णमास्यन्ताः पूर्वं निरूपिताः । कृष्णपक्षरात्रिनामधेयानि तु—

†सुता सुन्वती प्रसुता सूयमानाऽभिषूयमाणा ।
पीती प्रपा संपा तृप्तिस्तर्पयन्ती । कान्ता
काम्या कामजाताऽऽयुष्मती कामदुघा ॥

*तै. ब्रा. ३–१०–१०. †तै. ब्रा. ३–१०–१. [1] यस्याः सरघायाः इत्यधिकः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



एताः कृष्णपक्षरात्रयः। एतासां कृष्णपक्षरात्रीणां आधारचक्रे एव अमावास्यात्मकतया अवस्थानात्, समयिनां तत्र व्यवहाराभावात् शुक्लपक्षरात्रिष्वेव चन्द्रकलासञ्चारात्, तत्रैव कुण्डलिनीप्रबोधात्, स्वरूपमात्रोद्देश एव कृतः। शुक्लपक्षरात्रीणामेव कलात्वम्। तत्स्वरूपं पूर्वमेव निरूपितम्॥

अत एव कुण्डलिनीप्रबोधो रात्रावेव, न दिवा, दिवसानां मधुनः स्रावकत्वादित्याह—

यान्यहानि। ते मधुवृषाः।

मधु वर्षन्तीति मधुवृषाः। अत एव दिवा योगिनः कुण्डलिनीं (न) बोधयन्तीति, शुक्लकृष्णपक्षयोः दिवसानां नामानि नोक्तानि अप्रस्तुतत्वात्। तथापि वेदे फलश्रवणात् उद्देशमात्रेण कथ्यन्ते। शुक्लपक्षदिवसनामानि—

†संज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं जानदभिजानत्। सङ्कल्पमानं प्रकल्पमानमुपकल्पमानमुपक्लृप्तं क्लृप्तम्। श्रेयो वसीय आयत् संभूतं भूतम्॥

इति शुक्लपक्षदिवसनामानि। कृष्णपक्षदिवसनामानि तु—

†प्रस्तुतं विष्टुत ँ संस्तुतं कल्याणं विश्वरूपम्। शुक्रममृतं तेजस्वि तेजस्समिद्धम्। अरुणं भानुमन्मरीचिमदभितपत्तपस्वत्॥

एतेषामुभयेषां शुक्लकृष्णपक्षाहोरात्राणां नामधेयानि [1]यो वेद तस्य फलमाह—

---

* तै. ब्रा. ३–१०–१०. † तै. ब्रा. ३–१०–१. [1]तेषां वेदनस्य.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



*स यो ह वा एता मधुकृतंश्च मधुवृषाꣳश्च वेद। कुर्वन्ति हास्यैता अग्नौ मधु। नास्येष्टापूर्तं धयन्ति ॥

सः यः एताः मधुकृतो रात्रीः मधुवृषान् दिवसान् पूर्वोक्तान् यो वेद अस्य वेत्तुः एताः अग्नौ बैन्दवस्थाने मधु सुधासिन्धुं कुर्वन्ति। अस्य इष्टापूर्तं वाञ्छितार्थपूर्तिं न धयन्ति न रिक्तीकुर्वन्ति ॥

व्यतिरेके अनिष्टमाह—

*अथ यो न वेद। न हास्यैता अग्नौ मधु कुर्वन्ति। धयन्त्यस्येष्टापूर्तम् ॥

व्याख्यातप्रायमेतत् ॥

अयमर्थः—चन्द्रकलाविद्यानुष्ठानं नाम मातृकामन्त्रयोरैक्यम्। मन्त्रचक्रयोरैक्यं, चक्रनित्ययोरैक्यं, नित्याप्रतिपदादिकलयोरैक्यमिति समयिमततत्त्वम्। एतदनुष्ठाने शुक्लपक्षकृष्णपक्षविवेकः, दिवसरात्रिविवेकश्च उपयुज्यते। दर्शादिपौर्णमास्यन्तास्वेव कलासु [1]चतुर्वै-क्यानुसन्धानं, न अमावास्यायाम्। कृष्णपक्षशब्दः अमावास्यापरः इत्युक्तं प्रागेव। अतश्च अमावास्यायामिव शुक्लपक्षदिवसेष्वपि न अनुष्ठानमिति ध्येयम्। एवं परिशेषवृत्त्या अमावास्यायां उपासनानिषेधः, न तु सर्वस्मिन् कृष्णपक्षे। अतश्च सर्वासु रात्रिषु अमावस्याव्यतिरिक्तासु उपासना, न सर्वेषु दिवसेषु, इति गुरूपदेशवशात् ज्ञेयं रहस्यम्॥

*तै. ब्रा. ३-१०-१०.

[1] चतुष्टयैक्यानुसन्धानम् ?

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत उत्तरम्–

*यो ह वा अहोरात्राणां नामधेयानि वेद। नाहोरात्रेष्वार्तिमार्छति। संज्ञानं विज्ञानं दर्शा दृष्टेति। एतावनुवाकौ पूर्वपक्षस्याहोरात्राणां नामधेयानि। प्रस्तुतं विष्टुत ँसुता सुन्वतीति। एतावनुवाकावपरपक्षस्याहोरात्राणां नामधेयानि। नाहोरात्रेष्वार्तिमार्छति। य एवं वेद ॥

इति वाक्यजातं पूर्वव्याख्ययैव व्याकृतम्। इतः परं वक्ष्यमाणं मुहूर्तार्धमासघटिकादीनां कालानां नामधेयजातं तत्रैव अन्तर्भूतमिति तद्व्याख्यानेनैव व्याख्यातमिति अनुसन्धेयम्। अत एव संज्ञानानुवाकः 'इयं वाव सरघा' इत्यनुवाकश्च व्याकृतावेवेति अवगन्तव्यम्। यत्तु सावित्रप्रकाशके 'प्रजापतिर्देवानसृजत' इत्यनुवाके* 'स यदाह' इत्यारभ्य 'जनको ह वैदेहः' इत्यन्तेन तिथ्यात्मकत्व सवितुः प्रतिपादितम्, तत्तु सादाख्यतत्त्वात्मिकायाः चन्द्रकलाविद्यायाः श्रीविद्याऽपरनामधेयायाः पञ्चदश[1] तिथ्यात्मिकायाः प्रसादसमासादितसामर्थ्यं सवितुः, नान्यथेति प्रतिपादयितुं गौण्या वृत्त्या आह श्रुतिः। अत एव 'एष एव तत्।* इति गौणवृत्त्याश्रयणं प्रकटीकृतम्। अत एतद्ग्रन्थकलापानन्तरवाक्यम्–

जनको ह वैदेहः अहोरात्रैस्समाजगाम* ॥

इति आम्नातम्। जनकः उत्पादकः श्रीविद्यायाः ऋषिः। विदेह एव वैदेहः मन्मथः। अहोरात्रैः अहोरात्रात्मकैः पञ्चदशाक्षरीमन्त्रवर्णैः दर्शादिपूर्णिमा-

*तै. ब्रा. ३–१०–९. [1] विद्यात्मिकायाः ?

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



न्तकलात्मकैः समाजगाम, तं मन्त्रं आहृतवानित्यर्थः। यस्तु मन्त्रं आहरति स ऋषिरित्युच्यते। अत एव अरुणोपनिषदि—

पुत्रो निर्ऋत्या वैदेहः।*

निर्ऋत्याः लक्ष्म्याः। यद्वा—अनिर्ऋत्याः लक्ष्म्याः। पुत्रः वैदेहः मन्मथः॥

अचेता यश्च चेतनः।*

अनङ्गत्वादेव चेतोरहितः। चेतनश्च सर्वभूतान्तर्यामित्वात्॥

स तं मणिमविन्दत्।*

सः अनङ्गः तं प्रसिद्धं मणिं विद्यात्मकं रत्नं अविन्दत् लब्धवान् अपश्यत्। असौ अनङ्गः अन्धोऽपि अपश्यदिति 'अन्धो मणिमविन्दत्'* इति वाक्यशेषबलात् लभ्यते। अत एव परचित्कलायाः विद्यायाः त्रिपुरसुन्दर्याः मन्मथः ऋषिरभूत्॥

सोऽनङ्गुलिरावयत्।*

स मन्मथः अनङ्गत्वादेव अनङ्गुलिः आवयत् असीव्यत्॥

सीवनानन्तरकृत्यमाह—

सोऽग्रीवः प्रत्यमुञ्चत्।*

सः मन्मथः अनङ्गत्वादेव अग्रीवः मणिसम्पादनफलं प्रत्यामोचनं अकरोत्, धृतवानित्यर्थः॥

विद्यारत्ने मणित्वारोपणस्य फलं धारणमेव न भवतीत्याह—

---

*तै. आ. ११-१.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



## सोऽजिंह्वो असश्चंत । *

सः अनङ्गः अनङ्गत्वादेव अजिह्वः जिह्वारहितः असश्चत अचोषत्, आस्वादितवानित्यर्थः ॥

एतदुक्तं भवति—अनङ्गः पूर्वं विद्यारत्नं पञ्चाशद्वर्णात्मकं षोडशनित्यात्मकं षोडशकलात्मकं नानावेदेषु नानास्मृतिषु नानापुराणेषु नानाविधागमेषु विप्रकीर्णं दृष्टवान् । तदनन्तरं विप्रकीर्णं इमं मन्त्रं दृष्ट्वा सीवनं कृतवान् । पञ्चाशद्वर्णान् त्रिधा विभज्य खण्डत्रयं कृत्वा त्रिपुरसुन्दर्यादिषोडशनित्याः तत्र अन्तर्भाव्य प्रतिपदादितिथीन् षोडश तत्रैव अन्तर्भाव्य, पञ्चदशवर्णात्मकं त्रिखण्डं कृत्वा, तत्र सोमसूर्यानलात्मकतया ब्रह्मविष्णुमहेश्वरात्मकतया सत्त्वरजस्तमस्तत्त्वव्यवस्थिततया जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थापन्नतया सृष्टिस्थितिलयहेतुभूततया निश्चित्य श्रीविद्यात्मके चतुर्थे खण्डे पञ्चदशकलानां अन्तर्भावं निश्चित्य भुवनेश्वरीप्रभृतीनां योगिनीविद्यानां नवानां त्रिकस्य त्रिकस्य एकैकह्रीङ्कारेण अन्तर्भावं अङ्गीकृत्य, सर्वभूतात्मकं सर्वमन्त्रात्मकं सर्वतत्त्वात्मकं सर्वावस्थात्मकं सर्वदेवात्मकं सर्ववेदार्थात्मकं सर्वशब्दात्मकं सर्वशक्त्यात्मकं त्रिगुणात्मकं त्रिखण्डं त्रिगुणातीतं [1]सादाख्यापरपर्यायं षट्त्रिंशशिवशक्तिसंपुटात्मकं निश्चित्य वर्णपञ्चदशकेन मूलविद्यां असीव्यत् । तदनन्तरं स्यूतं मन्त्रराजं [2]ग्रीवायां धृतवान्, चिरकालं ध्यानयोगेन पूजितवान् । तदनन्तरं चन्द्रकलामृतास्वादं कृतवानिति सः मन्मथः ऋषिः अस्य मन्त्रस्येत्यर्थः ॥

## नैतमृषिं विदित्वा नगरं प्रविशेत् । *

एतं ऋषिं मन्मथं विदित्वा नगरं श्रीचक्रात्मकं न प्रविशेत् ऋषिज्ञानपूर्वकं श्रीचक्रात्मकं नगरं न पूजयेत्, बाह्यपूजां न कुर्यादिति निषेधविधिः,

---

* तै. आ. १-११. [1] सादाख्यकलापर्यायम्. [2] गृहीत्वा.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



बाह्यपूजायामेव ऋषिच्छन्दःप्रभृतिज्ञानपूर्वकत्वम्। आन्तरपूजायां तादात्म्यानुसन्धानात्मिकायां ऋष्यादिज्ञानं नास्त्येव। उपयोगस्तु दूरत एव। अतो वस्तुसिद्धऋष्यादिपर्युदासमुखेन श्रीचक्रस्य बाह्यपूजनं त्रैवर्णिकैः न कर्तव्यमिति नियम्यते। तदुक्तं सनत्कुमारसंहितायाम्—

बाह्यपूजा न कर्तव्या कर्तव्या बाह्यजातिभिः।
सा [1]क्षुद्रफलदा नृणां ऐहिकार्थैकसाधनात्॥
बाह्यपूजारताः कौलाः क्षपणाश्च कपालिकाः।
दिगम्बराश्चेतिहासा †वामकास्तन्त्रवादिनः॥
आन्तराराधनपरा वैदिका ब्रह्मवादिनः।
जीवन्मुक्ताश्चरन्त्येते त्रिषु लोकेषु सर्वदा॥ इति।

कौलाः आधारचक्रपूजारताः। क्षपणकाः योषित्त्रिकोणपूजारताः। कापालिकाः दिगम्बराश्च उभयत्र निरताः। इतिहासाः भैरवयामळप्रामाण्यवादिनः। वामकाः तन्त्रवादिनः इत्येके वदन्ति, वामकेश्वरतन्त्रप्रामाण्यवादिनः। केवलचक्रपूजकाः ते वेदबाह्या इत्यन्वयः। आन्तरपूजारताः ब्रह्मवादिनः शुभागमतत्त्ववेदिनः। शुभागमपञ्चकं पूर्वमेवोक्तम्। आन्तरपूजाप्रकारः पुरस्ताद्वक्ष्यते च॥

## *यदि प्रविशेत्।

असंशये संशयोक्तिः 'यदि वेदाः प्रमाणं' इतिवत्। प्रविशेदेवेत्यर्थः॥

## *मिथौ चरित्वा प्रविशेत्।

[2]मिथौ रहस्ये एकान्ते, चरित्वा अवगत्य। चर गतिभक्षणयोः। प्रविशेत्, आन्तरपूजां कुर्यादित्यर्थः। यद्वा—मिथौ मिथुनीभूतौ शिवौ,

---

[1] क्षुद्रधर्मदा. * तै. आ. १-११. † 'वीतवासा' इत्यपि क्वचित् दृश्यते.
[2] मिथौ=मिथ इत्यर्थः.



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



उभयोः मेलनं अवगत्य प्रविशेत् अनुसन्दधीतेति । पूर्वव्याख्यानेऽपि ऐकात्म्यानुसन्धाने सहायान्तरं न कर्तव्यम् । एकान्ते एव विद्या फलतीत्युपदेशः । तत्कथमित्याशङ्क्य दृष्टान्तेन द्रढयति—

*तत्सम्भवस्य व्रतम् ।

सम्भवो मन्मथः, चित्तजातत्वात् । तस्य व्रतं माहात्म्यं, सहायान्तरं तिरस्कृत्य एकाकिनैव रहस्ये स्त्रीपुरुषसंयोजनरूपम् । अतः मन्मथोपदिष्टमन्त्रानुष्ठानव्रतां तथैव तदनुष्ठानमिति गोप्येयं विद्येति तात्पर्यम् । द्वितीयव्याख्याने मन्मथो मिथुनं अवगत्य तस्मिन् मिथुने प्रविशति । एवं शिवशक्तिसंपुटं अवगत्य साधकेन प्रवेष्टव्यमिति श्रुतेरर्थः । अतश्च 'पुत्रो निर्ऋत्या वैदेहः'* 'जनको ह वैदेहः'† इति च श्रुतिद्वयस्य वैदेहयोः उभयोः एकप्रत्यभिज्ञाविषयत्वात्, 'स यदाह'† इत्यादिवाक्यकदम्बकं प्रतिपदादितिथिरूपचन्द्रकलात्मिकायाः श्रीविद्यायाः प्रतिपादनद्वारा सवितुः तत्प्रसादजन्यं माहात्म्यं नान्यथेत्येवंपरमिति सर्वं अनवद्यम् ॥३२॥

**स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमादौ तव मनोः**
**निधायैके नित्ये निरवधिमहाभोगरसिकाः ।**
**भजन्ति त्वां चिन्तामणिगुणनिबद्धाक्षवलयाः**
**शिवाग्नौ जुह्वन्तस्सुरभिघृतधाराहुतिशतैः ॥**

स्मरं कामराजं, योनिं भुवनेश्वरीं, लक्ष्मीं श्रीबीजम्, इदं त्रितयं आदौ तव मनोः मन्त्रस्य, निधाय संयोज्य, एके विरलाः समयिनः, नित्ये ! आद्यन्तरहिते ! निरवधिमहाभोगरसिकाः अपरिच्छिन्ननित्यानुभव-

---
*तै. आ. १–११. †तै. ब्रा. ३–१०–९.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



रसज्ञाः, परमयोगीश्वरा इति यावत्। भजन्ति सेवन्ते। त्वां भवतीं, सहस्रदळकमलात् अवरोप्य हृत्कमले संस्थाप्य तादृग्विधां चिन्तामणिगुण-निबद्धाक्षवलयाः चिन्तामणीनां गुणः गुणनं आम्रेडनं, समूह इति यावत्, तेन निबद्धो रचितः अक्षवलयः अक्षमालिका येषां ते। यद्वा—चिन्ता-मणय एव गुणनिबद्धाक्षाः सूत्ररचिताक्षाः पद्मबीजानि, तेषां वलयः मालिका येषां ते तथोक्ताः, शिवाग्नौ शिवा शक्तिः त्रिकोणमिति यावत्, तत्र संस्कृतः अग्निः शिवाग्निः। त्रिकोणे वैन्दवस्थाने स्वाधिष्ठानाग्निं अवप्लुत्य तत्र निक्षिप्य पाशाङ्कुशाभ्यां सन्निरुध्य भुवनेश्वर्या अवकुण्ठ्य अग्नेः जात-कर्मादिषोडशसंस्काराः यत्र क्रियन्ते सः शिवाग्निरिति रहस्यमिति। अय-माशयः—त्रिकोणे बैन्दवस्थाने स्वाधिष्ठानाग्निं निक्षिप्येति। यद्यपि वैन्दव-स्थानं चतुष्कोणं, तथापि पुरश्चरणात्मकक्रियायां संवित्कमले त्रिकोणं आरोप्य सहस्रकमलात् बैन्दवस्थानस्थां कामेश्वरीं अवरोप्य पुरश्चरणं कार्य-मिति समयिमतरहस्यमिति आचार्याणां आशय इति। जुह्वन्तः सन्तर्पयन्तः, सुरभिघृतधाराहुतिशतैः सुरभिः कामगवी, तस्याः घृतं आज्यं, तस्य धाराः, ताभिः आहुतयः हविःप्रक्षेपाः, तासां शतानि सहस्रं तैः॥

अन्वेत्थं पदयोजना—हे नित्ये! तव मनोः आदौ स्मरं योनिं लक्ष्मीं इदं त्रितयं निधाय निरवधिमहाभोगरसिकाः एके चिन्तामणिगुण-निबद्धाक्षवलयाः शिवाग्नौ त्वां सुरभिघृतधाराहुतिशतैः जुह्वन्तः भजन्ति॥

अत्रेदं तत्त्वम्—समयिनां मन्त्रस्य पुरश्चरणं नास्ति। जपो नास्ति। बाह्यहोमोऽपि नास्ति। बाह्यपूजाविधयो न सन्त्येव। हृत्कमल एव सर्वं यावत् अनुष्ठेयम्। एतच्च 'जपो जल्पश्शिल्पम्'* इत्यादिश्लोकव्याख्याना-वसरे किञ्चिदुक्तम्। अवशिष्टं कृत्स्नं 'तवाज्ञाचक्रस्थम्'† इत्यादि श्लोक-षट्कव्याख्यानावसरे निपुणतरमुपपादयिष्यामः॥

* २७ श्लोकः. † ३६ श्लोकः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



'तवाज्ञाचक्रस्थम्'* इत्यादिश्लोकषट्केन सामयिकं मतं निरूपयिष्यन् सप्रभेदं कौलमतं तदुपयोगितया निरूपयति । कौलमतं द्विविधं, पूर्वकौलं उत्तरकौलं चेति । एतद्द्वितयं क्रमेण श्लोकद्वितयेनाह—

**शरीरं त्वं शम्भोश्शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं**
**तवात्मानं मन्ये भगवति नवात्मानमनघम् ।**
**अतश्शेषश्शेषीत्ययमुभयसाधारणतया**
**स्थितस्सम्बन्धो वां समरसपरानन्दपरयोः ॥**

शरीरं देहः, त्वं भवती महाभैरवी, शम्भोः आनन्दभैरवस्य, शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं शशी चन्द्रः मिहिरः सूर्यः तावेव वक्षोरुहौ कुचौ तयोर्युगं युग्मं यस्य तत् । तव भवत्याः महाभैरव्याः, आत्मानं देहं, मन्ये जानामि । भगवति ! भगः अस्या अस्तीति भगवती तस्यास्सम्बुद्धिः ।

उत्पत्तिं च विनाशं च भूतानामागतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥

इति स्मरणात् उत्पत्त्यादिवेदनं भगः तद्वती भगवती । यद्वा—इन्दुकलाविद्यायाः नवयोन्यात्मकत्वात् नवयोनिमती भगवती । प्राशस्त्ये मतुप् । नवयोनिभिः प्रशस्तेत्यर्थः । नवात्मानं—[1] आनन्दभैरवं नवव्यूहात्मकम् । आनन्दभैरवस्य नवव्यूहात्मकत्वं उपरिष्टात् वक्ष्यते । अनघं निर्दोषम्, अतः अस्माद्धेतोः, यतः कारणात् परानन्दपरयोः ऐक्यं तस्मादित्यर्थः । शेषः गुणभूतः अप्रधानम्, शेषी प्रधानम्, इत्ययं एवंप्रकारः, उभय-

* ३६ श्लोकः.

[1] आनन्दभैरवो नवव्यूहात्मतयोदाहृतः । आनन्द.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



साधारणतया उभयोः भैरवीभैरवयोः साधारणतया साधारण्यात्, स्थितः अवस्थितः, सम्बन्धः शेषशेषिभावरूपः, वां युवयोः समरसपरानन्दपरयोः समरसे सामरस्ययुक्ते परानन्दः आनन्दभैरवः परा आनन्दभैरवीरूपा चिच्छक्तिः कला, समरसे च ते परानन्दपरे च तयोः ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! शम्भोस्त्वं शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं शरीरं भवसीति शेषः। आनन्दभैरवस्य कालव्यूहान्तःपातित्वात् सूर्यचन्द्रयोः वक्षोरुहयुगत्वारोपणं युक्तम्। यद्वा—अयमन्वयः—हे भगवति! शशिमिहिर-वक्षोरुहयुगं शरीरं शम्भोस्त्वमेव।

सूर्यचन्द्रौ स्तनौ देव्याः तावेव नयने स्मृतौ।
उभौ ताटङ्कयुगलमित्येषा वैदिकी श्रुतिः॥

इत्यनेन भगवत्याः शम्भुं प्रति शेषत्वमुक्तम्। हे भगवति! तवात्मानमनघं नवात्मानं मन्ये। अतः "शेषः शेषी" इत्ययं सम्बन्धः समरसपरानन्द-परयोः वां उभयसाधारणतया स्थितः॥

अत्रेदमनुसन्धेयम्—महाभैरवस्य नवात्मेति संज्ञा, नवव्यूहात्म-कत्वात्। नव व्यूहास्तु—

कालव्यूहः कुलव्यूहो नामव्यूहस्तथैव च।
ज्ञानव्यूहस्तथा चित्तव्यूहस्स्यात्तदनन्तरम्॥
नादव्यूहस्तथा बिन्दुव्यूहस्स्यात्तदनन्तरम्।
कलाव्यूहस्तथा जीवव्यूहस्स्यादिति ते नव॥

अस्यार्थः—

कालव्यूहो नाम—निमेषादिकल्पान्तावच्छिन्नकालसमुदायः कालव्यूहः। सूर्यचन्द्रयोरपि कालावच्छेदकतया कालव्यूहे अन्तर्भाव उक्तः॥

कुलव्यूहो नाम—नीलादिरूपव्यूहः॥

नामव्यूहो नाम—संज्ञास्कन्धः॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



ज्ञानव्यूहो नाम—विज्ञानस्कन्धः । [1]भागव्यूह इति नामान्तरमस्ति । स च द्विविधः [2]सभागविभागभेदात् । [3]सभागो विकल्पः, [4]विभागो निर्विकल्पः ॥

चित्तव्यूहो नाम—अहङ्कारपञ्चकस्कन्धः । अहङ्कारपञ्चकं नाम—अहङ्कारचित्तबुद्धिमहन्मनांसि ॥

नादव्यूहो नाम—रागेच्छाकृतिप्रयत्नस्कन्धः । अनेन मातृकायाः परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी इति चत्वारि रूपाणि । परा नाम सान्तरोहरूपा । अन्तरे अन्तःकरणे ऊहेन तर्केण सहितं रूपं यस्याः सा सान्तरोहरूपा । युक्तावस्थायामेव ज्ञातव्येत्यभिसन्धिः । यथोक्तं कामकलाविद्यायाम्—

या सान्तरोहरूपा परा[5] महेशी परा नाम ।

पश्यन्ती नाम एषैव स्पष्टा उच्यते । यथोक्तं तत्रैव—

स्पष्टा[6] पश्यन्त्याख्या त्रिमातृका चक्रतां याता ॥

त्रिमातृका त्रिखण्डयुक्ता मातृका पञ्चदशाक्षरी, तदात्मिका । सा च चक्रतां चक्रत्वं याता । त्रिखण्डात्मकचक्रैक्यं त्रिखण्डात्मकमातृकाया इति रहस्यम् । एतच्च पूर्वं बहुधा प्रपञ्चितम् । स्पष्टा युक्तावस्थायां अतिसूक्ष्मतया प्रतीता इत्यभिसन्धिः । मध्यमा नाम परापश्यन्त्योः उच्चानुच्चावस्थात्मिका । सा द्विविधा, वामादिव्यष्टिरूपा वामादिसमष्टिरूपा चेति । वामादिसमष्टिरूपा सूक्ष्मा; वामादिव्यष्टिरूपा स्थूला । वामादयः शक्तयः वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका । एताश्चतस्रः शक्तयः श्रीचक्रान्तर्गताधोमुखचतुर्योन्यात्मिकाः ।

[1] भोगव्यूह इति. [2] सम्भोगविसम्भोगभेदात्. [3] सम्भोगो विकल्पः. [4] विसम्भोगो निर्विकल्पः. [5] महेशी त्रिभाविवा सैव, [6] पश्यन्त्यादित्रिमातृका· इति क्वचित्पाठो दृश्यते.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



इच्छा, ज्ञानं, क्रिया, शान्ता, परा चेति पञ्च शक्तयः श्रीचक्रान्तर्गतोर्ध्वमुखशक्तियोन्यात्मिकाः। एताभिः शक्तिभिः नवव्यूहात्मिकाभिः भगवत्याः नवात्मत्वं उच्यते। यथोक्तं तत्रैव—

एका परा तदन्या वामादिव्यष्टिमातृसृष्ट्यात्मा।
तेन नवात्मा माता जाता सा मध्यमाऽभिधानाभ्याम्॥
द्विविधा हि मध्यमा सा सूक्ष्मा स्थूलाकृतिः स्थिरा सूक्ष्मा।
नवनादमयी स्थूला नववर्गात्मा तु भूतलिप्याख्या॥
आद्या कारणमन्या कार्यं त्वनयोर्यतस्ततो हेतोः।
सैवेयं न हि भेदस्तादात्म्यं हेतुहेतुमदभीष्टम्॥

अस्यार्थः—एका परेति सत्त्वरजस्तमोगुणसाम्यरूपा। तदन्या पश्यन्ती अन्यतरगुणवैषम्यरूपेत्यर्थः। मध्यमा वामादिव्यष्टिरूपा स्थूलात्मिका। वामादयश्शक्तयो बैन्दवस्थानस्य उभयत्र सम्पुटत्वेनावस्थिताः। अत एव एताः व्यूहशब्दवाच्यास्सत्यः नवात्मशब्देन व्यवह्रियन्ते। समष्टिरूपास्तु परायामन्तर्भूताः। तेन कारणेन माता मातृका नवात्मा जाता। सा मध्यमा अभिधानाभ्यां द्विविधा, हि यस्मात् सा मध्यमा सूक्ष्मा स्थूलाकृतिश्चेति द्विविधा। सूक्ष्मास्वरूपमाह—स्थिरेति। स्थैर्यावस्थायां युक्तावस्थायामेव अवभास्या। नवनादमयीति—नव नादाः अकचटतपयशक्षाः। एते परस्परं भिन्नजातीयाः, स्वरकवर्गचवर्गटवर्गतवर्गपवर्गयवर्गशवर्गक्षवर्गाणां परस्परं भिन्नत्वेन प्रतीयमानत्वात्। तत्र प्रमाणमाह—भूतलिप्याख्येति। मिथ्याविज्ञेयमिथ्यारूपायाः लिपेः आख्यापकत्वं दर्पणप्रतिबिम्बस्य मुखज्ञापकत्वमिव न विरुध्यते। आद्या कारणमन्येति—आद्या सूक्ष्मरूपा मध्यमा कारणं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



स्थूलरूपायाः मध्यमायाः नववर्गात्मिकायाः। अनयोः कार्यकारणयोः यतस्ततो हेतोः सैवेयं सूक्ष्मैवेयं स्थूला। अतः स्थूलसूक्ष्मयोः ऐक्ये अभेदे विमर्शदशायामपि न कोऽपि हेतुरस्तीति तात्पर्येणोक्तम्—यतस्ततो हेतोरिति। तदेव प्रतिपादयति—न हि भेद इति। हेतुहेतुमदिति—हेतुहेतुमत्तादात्म्यं अभीष्टमित्यन्वयः। सर्वत्र तादात्म्यं हेतुहेतुमद्व्यतिरेकेण नास्तीत्यर्थः। अतश्च मध्यमात्मिकायाः चिच्छक्तेः नवात्मता सिद्धा। रागेच्छाकृतिप्रयत्नानां कारणत्वेनागमेषु प्रसिद्धाः मायाशुद्धविद्यामहेश्वरसदाशिवाः रागादीनां तत्त्वभूताः सङ्गृहीताः। तैः परापश्यन्तीमध्यमावैखर्यः अधिष्ठानभूताः सङ्गृहीता इत्यवगन्तव्यम्॥

बिन्दुव्यूहो नाम—षट्चक्रसङ्घः॥

कलाव्यूहो नाम—पञ्चाशत्कलानां वर्णात्मिकानां सङ्घः॥

जीवव्यूहो नाम—भोक्तृस्कन्धः॥

एवं नवानां व्यूहानां भोक्तृभोग्यभोगरूपेण त्रैविध्यम्। आत्मव्यूहस्य भोक्तृत्वेऽपि भोग्यभोगतादात्म्यात् [1]त्रैविध्यम्। एवं भोगव्यूहस्याप्यूह्यम्। अयमाशयः—आत्मव्यूहस्य भोक्तृत्वं, ज्ञानव्यूहस्य भोगत्वम्, कालव्यूहादीनां भोग्यत्वमेवेति आचार्याणां त्रैविध्यमभिप्रेतमिति। सर्वेषां व्यूहानां जीवव्यूहस्य सर्वत्र अन्वयादैक्यम्। कालव्यूहस्य अवच्छेदकत्वादैक्यम्। कुलनामव्यूहयोः निरूपकत्वादैक्यम्। ज्ञानव्यूहस्य बिन्दुव्यूहे तादात्म्यादैक्यम्। नादकलयोरैक्यात् नवव्यूहात्मकत्वं परमेश्वरस्य सिद्धमेव। अतो नवविधैक्यं भैरवीभैरवयोः ज्ञातव्यमिति कौलमतरहस्यम्। अत एव कौलाः [2]परमेश्वरं नवात्मेति व्यवहरन्ति। यथाहुः कौलाः—

---

[1] अविरुद्धम्। एवं भोग्यव्यूहस्य भोगव्यूहस्याप्यूह्यम्. [2] परमेश्वरस्य नवात्मतेति.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



नवव्यूहात्मको देवः परानन्दपरात्मकः ।
नवात्मा भैरवो देवो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥
परानन्दपराशक्तिः चिद्रूपाऽऽनन्दभैरवी ।
तयोर्यदा सामरस्यं जगदुत्पद्यते तदा ॥

इति दिङ्मात्रमुक्तम् । अवशिष्टं 'तवाधारे मूले'* इत्यादौ निरूप्यते । अयं भावः—आनन्दभैरवमहाभैरव्योः परानन्दपरासंज्ञयोः तादात्म्ये सिद्धे नवात्मता द्वयोः समाना । अतः शेषशेषिभावः आपेक्षिकः—यदा सृष्टि-स्थितिलयेषु आनन्दभैरवस्य परानन्दसंज्ञिकस्य परचित्स्वरूपायाश्च महाभैरव्याः प्रयत्नः उत्पद्यते, तदा भैरवीप्राधान्यात् प्रधानं प्रकृतिशब्दवाच्या महाभैरवीति, तस्याः प्रधानत्वं शेषित्वं; आनन्दभैरवस्य अप्रधानत्वं गुणभावः शेषत्वम् । यदा सर्वोपसंहारे प्रकृतेः तन्मात्रावस्थितौ भैरव्याः स्वात्मनि अन्तर्भावात् भैरवस्य शेषित्वं तदा भैरव्याः शेषत्वमिति ॥ ३४ ॥

मनस्त्वं व्योम त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम् ।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारं शिवयुवति भावेन बिभृषे ॥ ३५ ॥

**मनः** मनस्तत्त्वं आज्ञाचक्रस्थितं त्वं एव । **व्योम** आकाशतत्त्वं विशुद्धिचक्रान्तस्स्थितं त्वं एव । **मरुत्** वायुतत्त्वं अनाहतनामकसंविच्चक्रान्तर्गतम् । असि इति त्वमित्यर्थे अव्ययम् । **मरुत्सारथिः** वायुसखः अग्नितत्त्वं स्वाधिष्ठानगतम् । असि इति पूर्ववत् अव्ययम् । त्वं **आपः** अतत्त्वं मणिपूरान्तर्गतम् । त्वं **भूमिः** भूमितत्त्वं मूलाधारान्तर्गतम् । एवं रूपेण

---

*४१ श्लोकः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**त्वयि परिणतायां** परिणतिं तादात्म्यं गतायां, **न हि परं** इतः परं न किञ्चिदस्तीत्यर्थः। **त्वमेव स्वात्मानं** स्वस्वरूपं, **परिणमयितुं** परिणामवन्तं कर्तुं, **विश्ववपुषा** प्रपञ्चरूपेण, **चिदानन्दाकारं** चिच्छक्तेः आनन्दभैरवस्य च आकारं, **शिवयुवति!** शिवयुवती—हरपत्नि, युवतिशब्दात् 'सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके' इति ङीप्। तस्यास्सम्बुद्धिः। **भावेन** चित्तेन, **बिभृषे**। यद्वा—**चिदानन्दाकारं** च ब्रह्मस्वरूपं शिवतत्त्वं, **शिवयुवतिभावेन** शिवस्य युवतिर्जाया तस्याः भावः तत्त्वं तेन॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! मनस्त्वं व्योम त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि त्वमापस्त्वं भूमिः। त्वयि परिणतायां परं न हि। त्वमेव स्वात्मानं विश्ववपुषा परिणमयितुं शिवयुवति! भावेन चिदानन्दाकारं बिभृषे॥

अयमर्थः—'मनस्त्वं' इत्यादि 'भूमिः इत्यन्तेन पञ्चभूतात्मकः कार्यरूपः परिणामो विकारः उक्तः। 'त्वयि परिणतायाम्' इत्यनेन निर्विकारात्मकः कारणरूपेणावस्थितिविशेषः प्रकृत्याः परिणामः उक्तः। 'न हि परम्' इत्यनेन अपरिणामिन्याः परिणामो नास्ति अनवस्थापत्तेः इति हि शब्दार्थः। तथोक्तं चतुश्शत्याम्—

> श्रृणु देवि महाज्ञानं सर्वज्ञानोत्तमं प्रिये।
> येन विज्ञातमात्रेण भवाब्धौ न निमज्जति॥
> त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या जाता महेश्वरि।
> स्थूलसूक्ष्मविभागेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका॥
> कवलीकृतनिश्शेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणी।
> यस्यां परिणतायां तु न किञ्चित्परमिष्यते॥

[1]अयमर्थः—कवलीकृतः आत्मन्यारोपितः कारणात्मतया अवस्थितः, यथा मृदि घट इव निश्शेषं यथा भवति तथा तत्त्वानां पञ्चतत्त्वानां ग्रामः

[1] कवलीकृतनिश्शेषतत्त्वग्रामस्वरूपिणीत्यस्यायमर्थः,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



समूहः कवलीकृतनिश्शेषतत्त्वग्रामः, स एव स्वरूपं यस्यास्सा, कार्याणि कारणे उपसंहृत्य स्वयं कारणात्मना अवस्थितेत्यर्थः, सत्कार्यवादिनां मते कारणे कार्यस्यापि शक्तिरूपेण विद्यमानत्वात् इति। एतदुक्तं भवति— उत्तरकौलमते प्रधानमेव जगत्कर्तृ। प्रधानत्वादेव शेषभावो नास्ति, शिवस्याभावात्। तस्य परिणतिः पञ्चतत्त्वात्मिका। मनस्तत्त्वादिरूपेण प्रधानात्मिका शक्तिः परिणता। अतः मनःप्रभृतीनां शक्तिपरिणामः, तत्त्वानां स्वरूपपरिणामः। एवं प्रपञ्चं कार्यरूपं स्वस्यामारोप्य कारणरूपेण अवस्थिता। सा च [1]आधारकुण्डलिनीत्यभिधीयते। इतःपरं यद्वक्तव्यमस्ति तदपि तवाधारे मूले* इत्यादिश्लोकव्याख्यानावसरे निपुणतरमुपपादयिष्यामः ॥ ३५ ॥

तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरं
परं शम्भुं वन्दे परिमिलितपार्श्वं परचिता।
यमाराध्यन् भक्त्या रविशशिशुचीनामविषये
निरालोकेऽलोके निवसति हि भालोकभुवने॥

तव त्वदीये, आज्ञाचक्रस्थं आज्ञाचक्रे स्थितं, तपनशशिकोटिद्युतिधरं तपनः सूर्यः शशी चन्द्रः तयोः कोटयः, अगणितकोटिसङ्ख्याका इत्यर्थः, तासां द्युतिः कान्तिः तां धरतीति धरः, तं परं शम्भुम्[2]। पर इति संज्ञा शम्भोः। परिमिलितपार्श्वं परिमिलितौ पार्श्वौ दक्षिणोत्तरौ यस्य तम्। परा चासौ चिच्च परचित्। परशब्दः चित्संज्ञायां प्रसिद्धः। यं परचित्संवलितं परशिवं, आराध्यन् प्रसादयन् भक्त्या भजनप्रीत्या, रविशशिशुचीनां सूर्यचन्द्राग्नीनां, अविषये अगोचरे, अत एव निरा-

* ४१ श्लो.

[1] आधारकुण्डे कुण्डलिनी, [2] वन्दे इत्यधिकः,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



लोके आलोकरहिते, अलोके विजने एकान्ते, निवसति, त्वत्सायुज्यं प्राप्येति शेषः। हिः प्रसिद्धौ। भालोकभुवने ज्योत्स्नामये लोके सहस्रकमले॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिद्युतिधरं परं शम्भुं परचिता परिमिलितपार्श्वं वन्दे। यं भक्त्या आराध्यन् रविशशिशुचीनां अविषये निरालोके अलोके भालोकभुवने निवसति हि॥

अत्रेदमनुसन्धेयम्—'तवाज्ञाचक्रस्थं' इति चक्रशब्देन साधकस्य भ्रूमध्यान्तरगतश्रीचक्रान्तर्गतशिवचक्रचतुष्टयं कथ्यते। न तु द्विदलं पद्मं, तवेतिपदानन्वयादिति। एवमुत्तरत्राप्यूह्यम्। अत्र स्वाधिष्ठानाग्रे अग्निमण्डलं, अनाहतचक्राग्रे सूर्यमण्डलं, आज्ञाचक्राग्रे चन्द्रमण्डलमिति पूर्वमेव प्रतिपादितम्। अतश्च अग्निसूर्यचन्द्राणां [1] मयूखाः षष्ट्युत्तरत्रिशतसङ्ख्याकाः आधारचक्रप्रभृति आज्ञाचक्रपर्यन्तमेव विचरन्ति। एतदपि पूर्वमेव सम्यक् निरूपितम्। आज्ञाचक्रस्थितचन्द्रात् अन्य एव सहस्रकमलस्थितश्चन्द्रः श्रीचक्रात्मकः नित्यकल इत्यपि पूर्वमेव सम्यक् निरूपितम्॥ ३६॥

**विशुद्धौ ते शुद्धस्फटिकविशदं व्योमजनकं**
**शिवं सेवे देवीमपि शिवसमानव्यवसिताम्।**
**ययोः कान्त्या यान्त्याश्शशिकिरणसारूप्यसरणेः**
**विधूतान्तर्ध्वान्ता विलसति चकोरीव जगती॥**

**विशुद्धौ** विशुद्धिचक्रे ते भवत्याः **शुद्धस्फटिकविशदं** [2] त्रासरहितस्फटिकोपलसदृशं अतिनिर्मलं **व्योमजनकं** व्योम्नः आकाशतत्त्वस्य जनकं उत्पादकं, 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशस्सम्भूतः'* इत्यादिश्रुतेः। आज्ञाचक्रे आत्मतत्त्वात् उत्पन्नं आकाशतत्त्वमित्यर्थः। अत्र आत्मशब्दो मनःपर्याय-

[1] किरणा इत्यधिकः, [2] त्रासः मण्यादिनिष्ठो दोषः इति मेदिनी. * तै. उ. २–१.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



वचनः। **शिवं** शिवतत्त्वं, **सेवे** उपासे। **देवीं** भगवतीम्, **अपि**शब्दः समुच्चये। **शिवसमानव्यवसितां** शिवेन समानं व्यवसितं व्यवसायः प्रयत्नः यस्याः तां, स्वयमपि शिव[1]शब्दवाच्येत्यर्थः। **ययोः** शिवयोः, **कान्त्याः** प्रभायाः, **यान्त्याः** सरन्त्याः, **शशिकिरणसारूप्यसरणेः** चन्द्रकिरणसादृश्यमार्गात्, **विधूतान्तर्ध्वान्ता** विधूतं अन्तर्ध्वान्तं अज्ञानं यस्यास्सा, **विलसति** प्रकाशते। **चकोरीव** चकोरविहगीव, **जगती** त्रिलोकी॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! ते विशुद्धौ शुद्धस्फटिकविशदं व्योमजनकं शिवं। शिवसमानव्यवसितां देवीमपि सेवे; ययोः यान्त्याः शशिकिरणसारूप्यसरणेः कान्त्यास्सकाशात् जगती विधूतान्तर्ध्वान्ता चकोरीव विलसति॥

अयमर्थः—यथा ज्योत्स्नापानेन चकोरी सन्तुष्टान्तरङ्गा, एवं शिवयोः ज्योत्स्नासदृशप्रभया विधूतान्तर्ध्वान्तः सन्तुष्टान्तरङ्गः साधकलोकः इति॥

अत्रेदमनुसन्धेयम्—विशुद्धिचक्रपूजायां सूर्यचन्द्रनिरोधात् षोडशारगतानां श्रीत्रिपुरसुन्दरीप्रभृतीनां षोडशकलानां ज्योत्स्नाशोषणात् तच्चक्रस्थितयोः शिवयोरेव प्रभया ज्योत्स्नाकार्यमिति॥ ३७॥

**समुन्मीलत्संवित्कमलमकरन्दैकरसिकं**
**भजे हंसद्वन्द्वं किमपि महतां मानसचरम्।**
**यदालापादष्टादशगुणितविद्यापरिणतिः**
**यदादत्ते दोषाद्गुणमखिलमद्भ्यः पय इव॥**

---

[1] शिवतत्त्व.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**समुन्मीलत्संवित्कमलमकरन्दैकरसिकं** समुन्मीलत् विकसत् संवित् ज्ञानं, तदेव कमलं, तत्र मकरन्दः पुष्परसः, स चासौ एकश्च, न च एकशब्दस्य पूर्वनिपातः, 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' इति परनिपातात्, यद्वा एकश्चासौ रसिकश्चेति एकरसिकः, मकरन्देन एकरसिकः इति पश्चात् समासः, तं तथोक्तम्। परमहंसस्वरूपयोः शिवयोः हंसत्वारोपणं संविदः कमलत्वारोपणे निमित्तम्। अतः संविदः कमलत्वे सिद्धे एकदेशरूपेण मकरन्देन चर्व्यमाणतैकप्रमाणो रस आरोप्यते। अत एव मकरन्दैकशब्दस्य तृतीयासमासः। **भजे** सेवे। **हंसद्वन्द्वं किमपि** अनिर्वाच्यं इदन्तया निर्देष्टुं अशक्यं षड्विंशं तत्त्वं शिवशक्तिसंपुटितं, **महतां** योगीश्वराणां, **मानसचरम्**। अत्र मानसशब्देन मनसि मानससरस्त्वं आरोप्यते, मानससरसि हंसानां नित्यवासात्। **यदालापात्** यस्य हंसद्वन्द्वस्य आलापात्, **अष्टादशगुणितविद्यापरिणतिः** अष्टादशविद्याः आलापरूपेण परिणता इत्यर्थः। **यत्** हंसद्वन्द्वं, **आदत्ते** गृह्णाति। **दोषात्**—ल्यब्लोपे पञ्चमी, दोषं अवधूय **गुणं**—गुणशब्दो दोषाभावस्याप्युपलक्षकः, गुणवत् दोषभावस्यापि ग्राह्यत्वात्। **अखिलं**—समस्तं, **अद्भ्यः** उदकेभ्यः, **पय इव** दुग्धमिव॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! [1]समुन्मीलत्संवित्कमलमकरन्दैकरसिकं महतां मानसचरं किमपि हंसद्वन्द्वं भजे; यदालापात् अष्टादशगुणितविद्यापरिणतिः, यत् दोषात् अखिलं गुणं अद्भ्यः पय इव आदत्ते॥

अत्रेदमनुसन्धेयम्—संवित्कमलं अनाहतचक्रनामकमिति पूर्वमेवोक्तम्। उपासकाः [2] परमहंसमिथुनं संवित्कमले उपासते इति समयैकदेशिमतम्। अत एव महतां मानसचरमित्युक्तम्। भगवत्पादमतं तु—शिखिज्वालारूपः परमेश्वरः शिखिन्या स्वशक्त्या संवलितः अनाहतचक्रे दीपाङ्कुरवत् प्रतिभातीति। यथोक्तं भगवत्पादैः सुभगोदयव्याख्याने—

---

[1] तवेत्यधिकः. [2] परमहंसाः हंसमिथुनम्.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



शिखिज्वालारूपः समय इह सैवात्र समया
तयोस्सम्भेदो मे दिशतु हृदयाब्जैकनिलयः ॥

इति । एतदेव अस्माकमपि अभिमतम् ॥ ३८ ॥

तव स्वाधिष्ठाने हुतवहमधिष्ठाय निरतं
तमीडे संवर्तं जननि महतीं तां च समयाम् ।
यदालोके लोकान् दहति महति क्रोधकलिते
दयार्द्रा या दृष्टिश्शिशिरमुपचारं रचयति ॥ ३९

तव भवत्याः, स्वाधिष्ठाने स्वाधिष्ठानचक्रे, हुतवहं अग्नितत्त्वं, अधिष्ठाय, आश्रित्य निरतं, अनवरतं तं प्रसिद्धं, ईडे स्तुवे, संवर्तं संवर्तनामकं अग्निं, जननि! हे मातः! महतीं महच्छब्दवाच्यां, तां संवर्ताग्निरूपामित्यर्थः, समयाम् । यदालोके दर्शने, लोकान्, भूरादीन् दहति सति, महति क्रोधकलिते, दयार्द्रा कृपाविष्टा, या दृष्टिः आलोकः, शिशिरं शीतलं, उपचारं रचयति ॥

अन्नेत्थं पदयोजना—हे जननि! तव स्वाधिष्ठाने हुतवहं संवर्तमधिष्ठाय निरतं तं ईडे, समयां तां महतीं च ईडे । महति क्रोधकलिते यदालोके लोकान् दहति सति या दयार्द्रा दृष्टिः शिशिरमुपचारं रचयति सा त्वदीया दृष्टिरिति शेषः ॥

अत्रेदमनुसन्धेयम्—स्वाधिष्ठानं अग्नितत्त्वोत्पत्तिस्थानम् । तत्र उत्पन्नं अग्निं संवर्ताग्नितया आरोप्य तत्रैव महासंवर्ताग्निज्वालाकारशक्तिरूपतया अवस्थिता शक्तिः संभाव्या । ततः तयोः आलोकेन जगन्ति दग्धानि ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



तानि जगन्ति पुनः प्रसन्नायाः भगवत्या एव कृपारसपूरिता दृष्टिः मणिपूरप्रतिपादिता शिशिरोपचारं रचयतीति स्तुतिमात्रं, न वस्तुत इति ॥ ३९ ॥

**तटित्त्वन्तं शक्त्या तिमिरपरिपन्थिस्फुरणया**
**स्फुरन्नानारत्नाभरणपरिणद्धेन्द्रधनुषम् ।**
**तव श्यामं मेघं कमपि मणिपूरैकशरणं**
**निषेवे वर्षन्तं हरमिहिरतप्तं त्रिभुवनम् ॥४०॥**

**तटित्त्वन्तं** तटित् सौदामिनी सा अस्यास्तीति तटित्त्वान् तं, **शक्त्या** तटिद्रूपया, **तिमिरपरिपन्थिस्फुरणया** तिमिरस्य मणिपूरगतस्य—मणिपूरचक्रं तामिस्रलोक इति प्रागुक्तः—तस्य परिपन्थि विरोधि स्फुरणं यस्यास्सा । अनेन स्थिरसौदामिनीत्वं भगवत्याः सूचितम् । इदमपि मेघस्य प्रावृषेण्यत्वसूचकं विशेषणम् । **स्फुरन्नानारत्नाभरणपरिणद्धेन्द्रधनुषं** स्फुरन्ति च तानि रत्नानि नानाविधानि तैः निर्मितानि आभरणानि भूषणानि तैः परिणद्धं निर्मितं इन्द्रधनुः यस्य तम् । 'वा संज्ञायाम्' इति नानङ् । नानाविधरत्नकान्तिसंवलिता स्थिरसौदामिनी इन्द्रचापभ्रान्तिं जनयतीति प्रावृषेण्यत्वे हेत्वन्तरम् । यथोक्तं सिद्धघुटिकायाम्—

**मणिपूरैकवसतिः प्रावृषेण्यस्सदाशिवः ।**
**अम्बुदात्मतया भाति स्थिरसौदामिनी शिवा ॥** इति ।

**तव** भवत्याः, **श्यामं** श्यामवर्णं, **मेघं** मेघात्मना अवस्थितं पशुपतिं, **कमपि** इयत्तया निर्देष्टुमशक्यं, **मणिपूरैकशरणं** मणिपूरमेव एकं शरणं गृहं यस्य तम् । मणिशब्देन मणिधनुरुच्यते, मणिधनुस्स्वरूपत्वात् भगवत्याः; तया पूर्यते शरणं मणिपूरमिति रहस्यम् । **निषेवे** नितरां सेवे । **वर्षन्तं** वृष्टिं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



कुर्वन्तं, हरमिहिरतप्तं हर एव मिहिरः सूर्यः महासंवर्ताग्निरिति यावत्, तेन तप्तं दग्ध त्रिभुवनम् ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति ! तव मणिपूरैकशरणं तिमिर-परिपन्थिस्फुरणया शक्त्या तटित्त्वन्तं स्फुरन्नानारत्नाभरणपरिणद्धेन्द्रधनुषं श्यामं हरमिहिरतप्तं त्रिभुवनं वर्षन्तं कमपि मेघं निषेवे ॥

अत्रेदमनुसन्धेयम्—मणिपूरस्थाने जलतत्त्वं[1] उत्पन्नमिति प्राक् प्रतिपादितम् । तत्प्रकारः—सूर्यकिरणा एव अग्निसम्भिन्नाः मेघत्वमापन्नाः जलरूपेणेति मणिपूरस्य आधारस्वाधिष्ठानयोर्मध्ये निवेशः । अनाहतोपरिस्थितसूर्यकिरणाः स्वाधिष्ठानाग्निना संवलिताः सन्तः मणिपूरं प्रविश्य जलत्वमापन्नाः तेन जलेन स्वाधिष्ठानाग्निना दग्धं जगत् आप्लावयन्तीति आगमरहस्यम् । अत्र 'स्फुरन्नानारत्नाभरणपरिणद्धेन्द्रधनुषम्' इत्यनेन मौर्वीरहितं धनुरित्याहुः आगमविदः । तच्च श्रूयते अरुणोपनिषदि—

तदिन्द्रधनुरित्यज्यम् । अभ्रवर्णेषु चक्षते ।
एतदेव शंयोर्बार्हस्पत्यस्य । एतद्रुद्रस्य धनुः । *

इति । अस्यार्थः—रुद्रस्य मेघात्मकस्य धनुः अज्यं ज्यया मौर्व्या रहितमिति । अवशिष्टानि श्रुतिस्थपदानि सुभगोदयव्याख्याने व्याख्यातानि । एतत्सर्वं अरुणोपनिषदि 'योऽपां पुष्पम्' † इत्यनुवाके 'योऽपाम्' इत्यारभ्य 'इमे वै लोका अप्सु प्रतिष्ठिताः' इत्यन्तेन प्रतिपादितम् । उदकात् चन्द्रोत्पत्तिः सूर्योत्पत्तिः अग्न्युत्पत्तिश्च दिवसानां चन्द्रकलात्मकानां तदंशानां नक्षत्राणां च उत्पत्तिः प्रतिपादिता । तदनन्तरं सम्मतित्वेन ऋगप्युक्ता—

* तै. आ. १–५. † तै. आ. १–२२. [1] मुख्यमुत्पन्नमिति.



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



तदेषाऽभ्युक्ता। अपाꣳ रसमुदयꣳसन्। सूर्ये शुक्रꣳसमाभृतम्। अपाꣳ रसस्य यो रसः। तं वो गृह्णाम्युत्तमम्[†]। इति।

ऋचोऽयमर्थः—अपां रसं चन्द्रं उदयंसन्, योगीश्वराः प्राप्नुवन्नित्यर्थः। सूर्ये सूर्यमण्डले शुक्रं अमृतं, समाभृतं सम्यक् आसमन्तात्पूरितम्। चन्द्रमण्डलगलत्पीयूषधाराभिरेव सूर्यस्य निर्वाह इत्यर्थः। अपां रसस्य पुष्परूपस्य चन्द्रमसः, यो रसः बैन्दवस्थानस्थितः[1] नित्यकलात्मकः, तं नित्यकलात्मकं रसं वः युष्मत्सकाशात्। उदकानां प्रस्तुतत्वात् वः इति उदकानामाभिमुख्यं, मणिपूरे उदकमुत्पन्नमिति। ता आपः स्वाधिष्ठानाग्नेः उत्पादिकाः, आज्ञाचक्रस्थितस्य चन्द्रस्य उत्पादिकाः, अनाहतचक्रोपरिस्थितसूर्यस्यापि उत्पादिकाः। अत उक्तं 'तं वो गृह्णाम्युत्तमम्' इति। तं उत्तमं चन्द्रं सहस्रकमलस्थितं वः सकाशात् जानामीत्यर्थः॥

अस्मिन्नेव अनुवाके—

योऽप्सु नावं प्रतिष्ठितां वेद। प्रत्येव तिष्ठति।*

इति श्रुतम्। अप्सु उदकतत्त्वात्मके मणिपूरे प्रतिष्ठितां नावं श्रीचक्रात्मिकाम्[2]॥

तथा च श्रुत्यन्तरम्—

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसꣳ सुशर्माणमदितिꣳसुप्रणीतिम्। दैवीं नावꣳस्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये[†]॥

---

† तै. सं. १-५-११.[1०] * तै. आ. १-२२.

[1] इत्युक्तकलात्मतया तं वो गृह्णाम्युत्तममित्यधिकम्. [2] वेद.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अस्या ऋचोऽयमर्थः—षुत्र् अभिषवे। सुनोतीति सुत्रामा अग्निः अग्नितत्त्वं स्वाधिष्ठानगतमित्यर्थः, पृथिवीं मूलाधारस्थितां, द्यां गगनं विशुद्धि[1] स्थितां, अनेहसं कालं मनस्तत्त्वं आज्ञाचक्रस्थितं, सुशर्माणं वायुतत्त्वं, अदितिं अदित्यात्मकं जलतत्त्वं, सुप्रणीतिं सुमार्गे मोक्षे प्रणीतिं प्रकर्षेण नयन्तीम्। दैवीं देव्या इमां चक्रविद्यामित्यर्थः, नावं नौकां संसारसागर-तरणोपायभूतां, स्वरित्रां सुदृढानि अरित्राणि लाङ्गलानि यस्यास्सा तां, दुष्कर्म-जञ्झापवनैः अचलामिति यावत्। अनागसं अस्रवन्तीं[2] स्वयं दृढां आरुहेम तत्प्रवणा भवेम तदेकनिरताः तदुपासनपराः स्यामेत्यर्थः। स्वस्तये मोक्षाय, निरतिशयसुखावाप्तय इति। अवशिष्टं श्रुतिजातं सुभगोदयव्याख्यानावसरे सम्यक् निरूपितमस्माभिः॥ ४०॥

**तवाधारे मूले सह समयया लास्यपरया**
**नवात्मानं मन्ये नवरसमहाताण्डवनटम्।**
**उभाभ्यामेताभ्यामुदयविधिमुद्दिश्य दयया**
**सनाथाभ्यां जज्ञे जनकजननीमज्जगदिदम्॥**

तव भवत्याः, आधारे (आधारचक्रे)मूले मूलाधारचक्र इत्यर्थः। सह साकं, समयया समयसंज्ञया, लास्यपरया लास्ये नृत्ये परं तात्पर्यं यस्याः तया। स्त्रीकर्तृकं नृत्यं लास्यमित्युच्यते। नवात्मानं आनन्दभैरवं, मन्ये जानामि। नवरसमहाताण्डवनटं नवभिः शृङ्गारादिभिः रसैः महत् अद्भुतं ताण्डवं—पुंकर्तृकं नृत्यं ताण्डवमित्युच्यते- तत्र नटं अभिनेतारम्।

[1] स्थानस्थिताम्. [2] अस्रवन्तीं अरन्ध्राम्.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



उभाभ्यां एताभ्यां [1]आनन्दभैरवीमहाभैरवाभ्यां, उदयविधिं [2]उत्पत्तिं उद्दिश्य। कुत इत्याह-दययेति। दग्धलोकस्य पुनरुत्पादननिमित्तं दयया सनाथाभ्यां मिलिताभ्यां, जज्ञे उत्पन्नम्। जनकजननीमत् मातापितृमत्, जगत् प्रपञ्चं, इदं पूर्वोक्तम्। लास्यनाट्यसंविधानप्रतिपादनात् प्रकृतिपुरुषयोः दर्शने जगदुत्पत्तिः, लास्यनृत्तावसानमेव जगत्संहृतिरिति कौलसिद्धान्तः॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! तव मूले आधारे लास्यपरया समयया सह नवरसमहाताण्डवनटं नवात्मानं मन्ये। उदयविधिमुद्दिश्य एताभ्यां उभाभ्यां दयया सनाथाभ्यां इदं जगत् जनकजननीमत् जज्ञे॥

अयं भावः—आधारस्वाधिष्ठानयोः तामिस्रलोकत्वात्, तत्र कौलानां अधिकारात् समयिनां आराधनाभावेऽपि स्वमतानुसारेण सहस्रकमले निषेव्यैव भगवती आधारस्वाधिष्ठानयोः सेव्येति महाभैरवी समयापदेन* उच्यत इति॥

अत्रेदमनुसन्धेयम्—आधारचक्रं त्रिकोणम्, आधारे बिन्दुः तिष्ठतीति च तावत् प्रसिद्धम्। अत्र कौलमते त्रिकोणमेव बिन्दुस्थानम्। स एव बिन्दुः तत्र आराध्यः। अत एव कौलाः त्रिकोणे बिन्दुं नित्यं समर्चयन्ति। तत् त्रिकोणं द्विविधं, श्रीचक्रान्तर्गतनवयोनिमध्यवर्तिनी योनिः, सुन्दर्याः तरुण्याः प्रत्यक्षयोनिश्च। श्रीचक्रस्थितनवयोनिमध्यगतयोनिं भूर्जहेमपट्टवस्त्र-पीठादौ लिखितां पूर्वकौलाः पूजयन्ति। तरुण्याः प्रत्यक्षयोनिं उत्तरकौलाः पूजयन्ति। उभयं योनिद्वयं बाह्यमेव न आन्तरम्। अतः तेषां आधार-चक्रमेव पूज्यम्। तत्र स्थिता कुण्डलिनी शक्तिः कौलिनी इत्युच्यते। सैव उपास्या त्रिकोणपूजकानां इति रहस्यम्। एषा कुण्डलिनी शक्तिः

---

* 'पदेशेन' इति च पाठः.

[1] आनन्दभैरवमहाभैरवीभ्यां. पा. [2] जगदुत्पत्तिमुद्दिश्य.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



बिन्दुरूपिणी निद्राणैव संपूज्या, तस्याः सदा निद्राणस्वाभाव्यात्। सा पूजा तामिस्रा। कुण्डलिनीप्रबोधो यदा स्यात्, तत्क्षणमेव मुक्तिः कौलानाम्। अत एव क्षणमुक्ताः कौला इति व्यवहारः।* तत्र सुरामांसमधुमत्स्यादिद्रव्यैः समाराधनं वामाचारप्रवृत्त्या। प्रत्यक्षत्रिकोणे बिन्दुस्थानं मन्मथच्छत्रं कृत्वा संपूजयन्ति, अधोमुखं त्रिकोणं अधोमुखमेव छत्रं पूजयन्ति। दिगम्बरक्षपणकादयस्तु स्त्रियं उत्तानां कृत्वा ऊर्ध्वं त्रिकोणं पूजयन्तीति रहस्यम्। अत्र वहु वक्तव्यमस्ति; तत्तु अवैदिकमार्गत्वात् स्मरणार्हमपि न भवति। तथापि दिङ्मात्रं निषेध्यत्वेन समयमतमार्गप्रदर्शनोपयोगितया उक्तमिति अलं विस्तरेण॥

अत्र समयिमतं निरूप्यते—त्रिकोणादि[1]षट्चक्रं आधारादिषट्चक्रात्मना परिणतमिति प्रागेव प्रतिपादितम्। तत्र श्रीचक्रे त्रिकोणं बैन्दवस्थानमिति तावत् सुप्रसिद्धम्। तत्र [2]त्रिकोणत्रयेण अष्टकोणनिर्माणे त्रिकोणादेव बिन्दुस्थानं भवति। तच्च चतुष्कोणमेव। तत्तु सहस्रकमलान्तर्गतं चन्द्रमण्डलमिति पूर्वमेव बहुधा प्रपञ्चितम्। एतत् चतुष्कोणमध्यं बैन्दवस्थानं 'सुधासिन्धुः' 'सरघा' इति बहुधा प्रपञ्चितं पूर्वमेव। एतत चतुष्कोणमध्यं बिन्दुस्थानमिति बाह्यपूजा [3]तरुणीत्रिकोणपूजा च दूरत एव निरस्तेति ध्येयम्। अत एव समयिनां सहस्रकमले समयायाः समयस्य च शम्भोः पूजा। समया नाम–शम्भुना साम्यं पञ्चविधं यातीति समया। [4]समयत्वं शम्भोरपि–पञ्चविधं साम्यं देव्या सह यातीति। अतः उभयोः समप्राधान्येनैव साम्यं विज्ञेयम्। पञ्चविधसाम्यं तु—अधिष्ठानसाम्यं, अव-

---

* "तस्मात् कौलानां त्रिकोणे आनन्दभैरवीमहाभैरवौ संपूज्यौ। साधकानां ताभ्यां तादात्म्येनावस्थानम्। अत एव कौलाः बिन्दुपूजावसरे भैरवाकारं दिगम्बरत्वमाश्रित्य समर्चयन्ति स्त्रीपुरुषाः" इति अधिकः पाठः केषु चित्कोशेषु.

[1] चक्रात्मकम्. [2] कोणाष्टकोणानिर्माणे. [3] तरुणीपूजा. [4] दूतीसमयस्य.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



स्थानसाम्यं, अनुष्ठानसाम्यं, रूपसाम्यं, नामसाम्यं चेति पञ्चविधं सम* प्रधानयोरेव शिवयोः। यथा—'तवाधारे' इति अधिष्ठानसाम्यमुक्तम्, उभयोः आधारचक्रस्य अधिष्ठानरूपत्वात्। अनुष्ठानसाम्यं 'जनकजननीमज्जगदिदम्' इत्यनेन प्रतिपादितम्, उत्पादनक्रियायां उभयोः व्याप्रियमाणत्वात्। अवस्थानसाम्यं लास्यताण्डवशब्दाभ्यां प्रतिपादितम्। लास्यताण्डवयोः नृत्यरूपेण एकत्वं उक्तं प्राक्। रूपसाम्यं तु आरुण्यं उभयोः तन्त्रान्तरसिद्धम्—

जपाकुसुमसङ्काशौ मदघूर्णितलोचनौ।
जगतः पितरौ वन्दे भैरवीभैरवात्मकौ॥ इति।

यद्वा—नवात्मानमिति रूपसाम्यं नामसाम्यं च प्रतिपादितमिति ध्येयम्। एवमेव इतरत्रापि ऊह्यम्। यथा—'तटित्त्वन्तम्' इत्यादौ तटित्त्वान् तटित्त्वती इति नामरूपसाम्ये। यद्यपि स्थिरसौदामिनीरूपायाः तटिद्रूपत्वात् तद्वत्त्वं नास्ति, तथापि सौदामिन्याः स्थिरत्वमेव सर्वदा तटिद्युक्तत्वमिति तटित्त्वतीति उक्तिः युक्ता इति अनुसन्धेयम्। मणिपूरस्थानं अधिष्ठानमिति 'मणिपूरैकशरणं' इत्यनेन अधिष्ठानसाम्यमुक्तम्। 'स्फुरन्नानारत्नाभरणपरिणद्धेन्द्रधनुषम्' इत्यनेन 'वर्षन्तं' इत्यनेन च प्रावृषेण्यत्वावस्थानसाम्यं प्रतिपादितम्'। 'तव स्वाधिष्ठाने' इत्यादिश्लोके 'स्वाधिष्ठाने' इत्यनेन अधिष्ठानसाम्यं उक्तम्। 'महतीं' इत्यनेन महासंवर्तात्मकरूपनामसाम्ये प्रतिपादिते। स्वाधिष्ठानगताग्निसंश्रयणं अवस्थानसाम्यम्। लोकान् दहतीति अनुष्ठानसाम्यं प्रतिपादितम्। अनाहतचक्रे अनाहतं अधिष्ठानमिति अधिष्ठानसाम्यमुक्तम्। हुतभुक्कणिकारूपतया रूपसाम्यं नामसाम्यं च। निवातदीपत्वोक्त्या अवस्थानसाम्यम्। वायुतत्त्वोत्पादकत्वं अनुष्ठानसाम्यमिति रहस्यम्। विशुद्धिचक्रं अधिष्ठानमिति अधिष्ठानसाम्यं उक्तम्। 'शुद्धस्फटिक-

* 'समययोः प्रधानयोः' इति च पाठः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



विशदं' इत्यनेन रूपसाम्यं उक्तम्। 'व्योमजनकं' इत्यनेन अनुष्ठानसाम्यं उक्तम्। 'शिवं सेवे' इत्यनेन नामसाम्यम् 'शशिकिरणसारूप्यसरणेः' इत्यनेन अवस्थानसाम्यमिति। 'तवाज्ञाचक्रस्थं' इत्यनेन अधिष्ठानसाम्यमुक्तम्। 'तपनशशिकोटिद्युतिधरं' इत्यनेन रूपसाम्यमुक्तम्; 'परं शम्भुं' इत्यनेन नामसाम्यमुक्तम्। 'यमाराध्यन् भक्त्या' इत्यनेन अवस्थानसाम्यमुक्तम्। मुक्तिप्रदत्वमनुष्ठानसाम्यमिति साम्यपञ्चकं विज्ञेयम्। एतत् अतिरहस्यं शिष्यानुजिघृक्षया प्रकाशितम्॥

अतः समयपूजकाः समयिनः। तेषां षट्चक्रपूजा न नियता, अपि तु सहस्रकमल एव पूजा। सहस्रकमलपूजा नाम सहस्रकमलस्य बैन्दवस्थानत्वेन तन्मध्यगतचन्द्रमण्डलस्य चतुरश्रात्मना, तन्मध्यबिन्दोः पञ्चविंशतितत्त्वातीतषड्विंशात्मकशिवशक्तिमेलनरूपसादाख्यात्मना च अनुसन्धानम्। अत एव समयिमते बाह्याराधनं दूरत एव निरस्तम्। षोडशोपचाररूपपूजाङ्गकलापश्च ततोऽपि दूरत एव॥

तथा हि—आधारादिषट्चक्राणां त्रिकोणादिषट्चक्रत्वेन तादात्म्यम्, बिन्दुस्थानस्य चतुरश्रसहस्रकमलत्वेन तादात्म्यं बिन्दुशिवयोस्तादात्म्यम्, एवं देवी*शिवयोस्तादात्म्यमिति तादात्म्यत्रयम्। चक्रमन्त्रयोः ऐक्यं पूर्वमेवोक्तमिति, तेन सह चतुर्धा ऐक्यं समयिनां समाराधनमिति महत् रहस्यम्॥

अत्र किंचित् उच्यते—समयिनां चतुर्विधैक्यानुसन्धानमेव भगवत्याः समाराधनमित्येतत् सर्वसम्मतम्। केचित्तु षोढा ऐक्यमाहुः। यथा—नादबिन्दुकलातीतं भागवतं तत्त्वमिति सर्वागमरहस्यम्। नादः परापश्यन्तीमध्यमावैखरीरूपेण चतुर्विधः इति प्रागेवोक्तम्। परा त्रिकोणात्मिका,

* देह' इत्यपि पाठः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



पश्यन्ती अष्टकोणचक्ररूपिणी, मध्यमा * द्विदशाररूपिणी, वैखरी चतुर्दशाररूपिणी। शिवचक्राणां अत्रैव अन्तर्भावः प्रतिपादित इति चतुश्चक्रात्मकं श्रीचक्रं नादशब्दवाच्यम्। बिन्दुर्नाम—षट्चक्राणि मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरानाहतविशुद्ध्याज्ञात्मकानि बिन्दुशब्दवाच्यानि पूर्वमेव उक्तानि। कलाः पञ्चाशत्, षष्ट्युत्तरत्रिशतसङ्ख्याका वा। एवं नादबिन्दुकलातीता भगवतीति। सहस्रकमलं बिन्दतीतं बैन्दवस्थानात्मकं सुधासिन्ध्वपरपर्यायं सरघाशब्दवाच्यम्। नादातीततत्त्वं तु त्रिपुरसुन्दर्यादिशब्दाभिधेयम् 'दर्शा दृष्टा दर्शता' इत्याद्यपरपर्याय—'क ए ईलह्रीम्' इत्यादिमन्त्रवर्णनामक—पञ्चाशद्वर्णात्मक—षष्ट्युत्तरत्रिशतसङ्ख्यापरिगणितमहाकालात्मक—पञ्चदशकलातीता सादाख्या श्रीविद्यापरपर्याया चित्कलाशब्दवाच्या ब्रह्मविद्यापरपर्याया भगवती नादबिन्दुकलातीतं भागवतं तत्त्वमिति तत्त्वविद्रहस्यम्। अत्र नादबिन्दुकलानां परस्परैक्यानुसन्धानं षोढा भवतीति षोढा ऐक्यमाहुः। एवं भगवतीं षड्विधैक्येन सम्भाव्य पूजयित्वा सादाख्यायां विलीनो भवति। तदनन्तरं षड्विधैक्यानुसन्धानमहिम्ना गुरुकटाक्षसञ्जातमहावेधमहिम्ना च भगवती झडिति मूलाधारस्वाधिष्ठानात्मकचक्रद्वयं भित्वा मणिपूरे प्रत्यक्षं प्रतिभाति। महावेधप्रकारः—पूर्वं अभ्यासदशायां गुर्वेकपरतन्त्रः महाविद्यां गुरुमुखादेव स्वीकृत्य ऋषिच्छन्दोदेवतापूर्वकं मूलमन्त्रस्य शुष्कजपं गुरूपदिष्टमार्गेण कुर्वन् आश्वयुजशुक्लपक्षे महानवमीशब्दाभिधेयाष्टम्यां निशीथसमये गुरोः पादोपसङ्ग्रहणं कर्तव्यम्। तन्महिम्ना गुरोः तदानीं कर्तव्यहस्तमस्तकसंयोग-पुनर्मन्त्रोपदेश—षट्चक्रपूजाप्रकारोपदेश-षड्विधैक्यानुसन्धानोपदेशवशात् महावेधः शैवः सादाख्यायाः प्रकाशरूपो जायते इति गुरुरहस्यम्। एवं महावेधे जाते भगवती मणिपूरे प्रत्यक्षा भवति। सा समाराध्या। अर्घ्यपाद्यादिभूषणप्रतिपादनपर्यन्तं पूजाकलापं मणिपूरे निर्वर्त्य

* मिश्रार इत्यपि पाठः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अनाहतमन्दिरं भगवतीं नीत्वा, धूपादिनैवेद्यहस्तप्रक्षालनान्तं कर्मकलापं तत्रैव समाप्य, विशुद्धौ भगवतीं सिंहासनासीनां सखीभिः सल्लापान् सम्भाषमाणां शुद्धस्फटिकसदृशैः मणिभिः पूजयेत् । शुद्धस्फटिकसदृशमणयो न मौक्तिकादयः, किंतु तदीयषोडशदलगतषोडशचन्द्रकला इति रहस्यम् । एवं संपूज्य आज्ञाचक्रं नीत्वा देवीं कामेश्वरीं नीराजनविधिभिः अनेकैः संप्रीणयेत् । अत एव उक्तं कर्णावतंसस्तुतौ मदीयायाम्—

आज्ञात्मकद्विदळपद्मगते तदानीं
विद्युन्निभे रविशशिप्रयतोत्कटाभे ।
गण्डस्थलप्रतिफलत्करदीपजाल-
कर्णावतंसकलिके कमलायताक्षि ॥ इति ।

एवमाज्ञाचक्रे नीराजनविधिं कृत्वा संप्रीणयेत् । तदनन्तरं झडिति विद्युल्लतेव सहस्रकमलं अनुप्रविष्टा सुधाब्धौ पञ्चकल्पतरुच्छायायां मणिद्वीपे सरघामध्ये सदाशिवेन सार्धं विहरमाणा वर्तते । तदा तिरस्करिणीं प्रसार्य समीपे मन्दिरे स्वयं निवसेत् । यावत् भगवती विनिर्गता पुनः मूलाधारकुण्डं प्रविशति तावत्पर्यन्तं स्थातव्यमिति समयमततत्त्वरहस्यम् ॥

अत्र शङ्करभगवत्पादानां चतुर्विधैक्यानुसन्धानानन्तरं मणिपूरे प्रत्यक्षायाः भगवत्याः स्वरूपं 'क्वणत्काञ्चीदामा' इत्यादिध्यानप्रतिपादितं चतुर्भुजं धनुर्बाणपाशाङ्कुशयुक्तहस्तम् । तन्मतानुसारिणामपि तथैव प्रतिभाति भगवती ॥

अस्माकं तु षड्विधैक्यानुसन्धानानन्तरं मूलाधारद्विकं भित्वा मणिपूरे प्रसन्ना भगवती दशभुजा धनुर्बाणपाशाङ्कुशवरदाभयपुस्तकाक्षमालावीणाहस्ता । मन्मतैकदेशिनां पाशाङ्कुशपुण्ड्रेक्षुचापपुष्पबाणजपमालिकाशुकाभयवरदकरा करद्वयवक्षस्स्थलस्थापितवीणा । उभयमस्माकं सम्मतमेव । कर्णावतंसस्तुतौ मदीयायाम्—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



भवानि श्रीहस्तैर्वहसि फणिपाशं सृणिमथो
धनुः पौण्ड्रं पौष्पं शरमथ जपस्रक्शुकवरम् ।
अथ द्वाभ्यां मुद्रामभयवरदानैकरसिके
कणद्वीणां द्वाभ्यामुरसि च कराभ्यां च बिभृषे ॥

समयिनां प्रत्यक्षं परिदृश्यमाना आस्ते भगवती। समयिनां सहस्रकमलपर्यन्तं आन्तरपूजा कर्तव्या। सहस्रकमले तु तिरस्करिणीप्रसारणपर्यन्तं दर्शनमेव समाराधनम्। यदुक्तं सुभगोदये—

सूर्यमण्डलमध्यस्थां देवीं त्रिपुरसुन्दरीम् ।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणहस्तां ध्यायेत्सुसाधकः ॥
त्रैलोक्यं मोहयेदाशु [1]वरनारीगणैर्युतम् ॥ इति ।

चर्चास्तोत्रेऽपि कालिदासकृते—

ये चिन्तयन्त्यरुणमण्डलमध्यवर्ति
रूपं तवाम्ब नवयावकपङ्करम्यम् † ।
तेषां सदैव कुसुमायुधबाणभिन्न-
वक्षस्स्थला मृगदृशो वशगा भवन्ति ॥ इति ।

अत्र समयिनां बाह्यपूजानिषेधात् सूर्यमण्डलान्तर्गतत्वेन पूजनं निषिद्धमित्याहुः। तन्न, ब्रह्माण्डस्थितपिण्डाण्डस्थितचन्द्रसूर्ययोः ऐक्यात् सूर्यस्य चन्द्रकलामृतनिष्यन्दवशात् उज्जीवनात्। यतः 'अपां रसमुदयंसन्' § इत्यादिश्रुत्या प्रतिपादितमिति प्राक् प्रतिपादितम्, अतः चन्द्रकलाविद्यायाः सूर्यसम्पर्कात् तेजस्तिरोधानं स्यादिति केचन सङ्गिरन्ते ; तदपि अपास्तं वेदितव्यम्। अत एव पिण्डाण्डब्रह्माण्डचन्द्रयोरैक्यात् चन्द्रमण्डलान्तर्गतत्वेन चन्द्रकलाविद्यायाः पूजनं युज्यते। यत्तु पूर्वोक्तं चन्द्रबिम्बगतत्वेन देव्याः पूजननिषेध-

† 'शोणम्' इत्यपि पाठः.

§ तै. आ १–२२ [1] नरनारीगणैः, शत

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



वचनं, तत्तु आन्तरचन्द्रस्य आज्ञाचक्रोपरिस्थितस्य सहस्रकमलान्तर्गतचन्द्र-कलामृतनिष्यन्दैः उज्जीवनमिति तत्र तस्याः पूजानिर्बन्धो नास्तीति, अत एव पिण्डाण्डब्रह्माण्डचन्द्रयोरैक्यात् ब्रह्माण्डस्थितचन्द्रमण्डलेऽपि पूजानिर्बन्धो नास्तीत्येवंपरम् ॥

एवं हृदयकमल एव समाराधिता भगवती ऐहिकानि फलानि सर्वाणि ददाति । यदा वशिन्यादियुक्ता ध्याता सारस्वतं ददाति । यावकरसाप्लुता ध्याता वशीकरणं ददाति । 'मुखं बिन्दुं कृत्वा' † इत्यादिना ध्याता तादृशं फलं ददाति । हृदयकमले एव होमादिकं तर्पणादिकं च कार्यं ऐहिकफलसाधनमिति 'स्मरं योनिं लक्ष्मीम्' § इत्यादिश्लोकव्याख्यानावसरे निपुणतरमुपपादितम् । अतः समयिनां ऐहिकामुष्मिकफलसाधनोपायः आन्तर-पूजेति समयमततत्त्वम् ॥

अत्र भगवत्पादैः आधारकमलादिक्रमं विहाय आज्ञाचक्रादिक्रमेण अवरोहक्रमेण पूजाप्रकारः कथितः । अयमाशयः—'आत्मन आकाशस्स-म्भूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी ।* इति श्रौतक्रममवलम्ब्य अवरोहक्रम उक्तः । अत एव स्वाधिष्ठानानन्तरभाविनः मणिपूरस्य तदधःप्रदेशे निरूपणं युज्यते । आधारस्वाधिष्ठानानन्तरं मणिपूर-कावस्थानमिति सर्वयोगशास्त्रसिद्धम् । तदपि संवर्ताग्निदग्धस्य जगतः उज्जी-वनानन्तरं उत्पत्तिं वक्तुमित्यवगन्तव्यम् । एतच्च शुकसंहितायां 'शृणु देवि प्रवक्ष्यामि' इत्यारभ्य एकनवतिश्लोकैः, श्रीचक्रस्य षट्चक्राणि प्रस्तुत्य 'इदानीं संप्रवक्ष्यामि' इत्यारभ्य सार्धशत्या श्लोकैश्च सप्रपञ्चं प्रतिपादितम् । तत् तत एवावधार्यम् ॥

† १९ श्लोकः § ३३ श्लोकः.

* तै. उ, २-१.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



न च 'ऊर्ध्वमूलमवाक्छाखं वृक्षं यो वेद संप्रति' † इति श्रुतेः देहरूपवृक्षस्य शिर एव मूलं, करचरणाद्यवयवाश्शाखाः, अतश्च षट्कमलानां कदलीकुसुमोपमानानां अधोमुखानां अवरोहक्रमेण कमलान्युक्तानीति तत्र पूजा सुकरेति तदानुगुण्येन भगवत्पादैरुक्तमिति वाच्यम्: तादात्म्यध्यानव्यतिरेकेण पूजायाः असंभवात्। सम्भवे वा श्रीचक्रगतत्रिकोणादिषट्चक्राणां अधोमुखत्वाभावात्,

"मूलाधारस्थितामेव देवीं सुप्तां प्रबोधयेत्" इति।

तत्रैव प्रबोधनियमात्, मूलाधारादिक्रमेणैव पूजा समयिनां कौलादीनां च [1]कार्येति परमगुरुमुखादेव अवगतं रहस्यम्। वामकेश्वरतन्त्रे आत्मपूजायां विशेष उक्तः—

पाशाङ्कुशौ तदीयौ तु रागद्वेषात्मकौ स्मृतौ।
शब्दस्पर्शादयो बाणाः मनस्तस्याभवद्धनुः॥
करणेन्द्रियचक्रस्थां देवीं संवित्स्वरूपिणीम्।
विश्वाहङ्कारपुष्पेण पूजयेत्सर्वसिद्धिभाक्॥ इति।

*इयं उपासना। विधिः क्रियात्मको नादरणीयः॥ ४१॥

एवं समयमतं सम्यक्प्रपञ्च्य समयायाः भगवत्याः किरीटप्रभृति पादान्तं वर्णयति—

**गतैर्माणिक्यत्वं गगनमणिभिस्सान्द्रघटितं**
**किरीटं ते हैमं हिमगिरिसुते कीर्तयति यः।**
**स नीडेयच्छायाच्छुरणशबलं चन्द्रशकलं**
**धनुश्शौनासीरं किमिति न निबध्नाति धिषणाम्॥**

---

[1] कायिकेति. † तै. आ. १-११.

* अयमुपासनाविधिः इति स्यात्.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**गतैः** प्राप्तैः, **माणिक्यत्वं** रत्नभावं, **गगनमणिभिः** द्वादशादित्यैः। तेषां अत्यन्तसन्निकृष्टसेवार्थं भूषणगतमणित्वं युज्यते। **सान्द्रघटितं** सान्द्रं नीरन्ध्रं यथा भवति तथा घटितं खचितं, **किरीटं** मकुटं, **ते हैमं** हेम्नो विकारं, **हिमगिरिसुते!** हे पार्वति! **कीर्तयति** वर्णयति, **यः, स** कवीन्द्रः, **नीडेयच्छायाच्छुरणशबलं** नीडं गोलं तत्र खचितं नीडेयं रत्नजातं तस्य छाया तया छुरणेन व्यापनेन शबलं शबलवर्णं, **चन्द्रशकलं** चन्द्रखण्डं, **धनुः** कोदण्डं, **शौनासीरं** शुनासीरः इन्द्रः तस्य सम्बन्धि शौनासीरं, **किमिति न निबध्नाति धिषणां** बुद्धिम् ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे हिमगिरिसुते! माणिक्यत्वं गतैः गगनमणिभिः सान्द्रघटितं हैमं ते किरीटं यः कीर्तयति सः नीडेयच्छायाच्छुरणशबलं चन्द्रशकलं शौनासीरं धनुरिति धिषणां किं न निबध्नाति ॥

अयं भावः–किरीटवर्णनां कर्तुमुद्युञ्जानः कवीश्वरः तत्र स्थितां चन्द्ररेखां नानारत्नमणिकान्तिच्छुरितां दृष्ट्वा इन्द्रचापत्वेन कथं नाशङ्कते? अवश्यं तस्य तच्छङ्का जायत एवेति ॥

अत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः, चन्द्रशकलस्य इन्द्रचापत्वेनोत्प्रेक्षणात्। यद्वा—अपह्नवालङ्कारः, इदं चन्द्रशकलं न भवति; अपि तु इन्द्रचाप इत्यपह्नवस्य प्रतिभानात्। यद्वा—सन्देहालङ्कारः, अयमिन्द्रचापः उत चन्द्रशकलमिति संशयात्। यद्वा— अतिशयोक्तिरलङ्कारः, इन्दुशकलस्य इन्द्रचापत्वेन अध्यवसानात्; स्वधिषणां इन्द्रचापे किमिति न निबध्नाति इति सामान्योक्तिः। एतेषां मध्ये एकस्य प्राधान्यं इतरस्योपसर्जनत्वमिति विनिगमकप्रमाणाभावात् सन्देहसङ्करः। (उत्प्रेक्षातिशयोक्ती स्पष्टे। अपह्नवस्तु तल्लिङ्गाभावादपि किमिति धिषणां न निबध्नाति इत्यपह्नवोल्लेखस्य शक्यत्वात्। सन्देहस्तु चन्द्रशकले दृष्टे इन्द्रचापस्य स्मृत्यारूढत्वात् उल्लेखयितुं शक्य एवेति सन्देहसङ्कर एव ज्यायान्) ॥ ४२ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



धुनोतु ध्वान्तं नस्तुलितदलितेन्दीवरवनं
घनस्निग्धश्लक्ष्णं चिकुरनिकुरुम्बं तव शिवे ।
यदीयं सौरभ्यं सहजमुपलब्धुं सुमनसो
वसन्त्यस्मिन्मन्ये वलमथनवाटीविटपिनाम् ॥

धुनोतु अपनुदतु, ध्वान्तं अन्तस्तिमिरं, नः अस्माकं, तुलितदलितेन्दीवरवनं तुलितं सदृशीकृतं दलितं भिन्नं, विकसितमित्यर्थः, इन्दीवराणां नीलोत्पलानां वनं यस्य तत् । घनस्निग्धश्लक्ष्णं घनं सान्द्रं अविरलं स्निग्धं स्नेहयुक्तमिव स्थितं श्लक्ष्णं मृदु । एवमेतेषां विशेषणानां समासः । चिकुरनिकुरुम्बं चिकुराणां केशानां निकुरुम्बं समूहः केशपाशः धम्मिल्ल इत्यर्थः । तव भवत्याः, शिवे ! भगवति ! यदीयं यस्य धम्मिल्लस्य सम्बन्धि, सौरभ्यं परिमलं, सहजं स्वभावसिद्धं उपलब्धुं समाकृष्टुं, सुमनसः पुष्पाणि, वसन्ति आसते । अस्मिन् धम्मिल्ले, मन्ये ध्रुवं, वलमथनवाटीविटपिनां वलमथनः [1]बलारिः—वबयोरभेदोपचारः अनुप्रासार्थमङ्गीकृतः—तस्य वाटी उद्यानं तत्र विटपिनः कल्पवृक्षाः तेषाम् ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे शिवे ! तुलितदलितेन्दीवरवनं घनस्निग्धश्लक्ष्णं तव चिकुरनिकुरुम्बं नः ध्वान्तं धुनोतु । यदीयं सहजं सौरभ्यं उपलब्धुं अस्मिन् वलमथनवाटीविटपिनां सुमनसः वसन्तीति मन्ये ॥

अत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः, केशपाशवासनार्थमेव धृतानां कल्पवृक्षकुसुमानां अन्यथात्वेनोत्प्रेक्षणात् । तल्लक्षणम्—

सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परेण यत् ॥ इति ।

---

[1] बलारातिः, इन्द्र इति यावत् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



तुलितदलितेन्दीवरवनमित्यत्र उपमालङ्कारः। अनयोस्संसृष्टिः, तिलतण्डुलवत् संसृज्यमानत्वात्। क्षीरनीरवत् सम्बन्धः सङ्करः॥ ४३॥

**तनोतु क्षेमं नस्तव वदनसौन्दर्यलहरी-**
**परीवाहस्रोतस्सरणिरिव सीमन्तसरणिः।**
**वहन्ती सिन्दूरं प्रबलकबरीभारतिमिर-**
**द्विषां बृन्दैर्बन्दीकृतमिव नवीनार्ककिरणम्॥**

**तनोतु** विस्तारयतु दिशत्वित्यर्थः। **क्षेमं** योगक्षेमात्मकं शुभं **नः** अस्माकं, **तव वदनसौन्दर्यलहरीपरीवाहस्रोतस्सरणिरिव**-इदमेकं पदम्, 'इवेन सह नित्यसमासो विभक्त्यलोपः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च' इति नियमात्। वदनं मुखं तस्य सौन्दर्यस्य सुन्दरभावस्य लहरी उत्सेकः तस्य परीवाहः प्रवाहः 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्' इति परिशब्देकारस्य दीर्घः। तत्र स्रोतस्सरणिरिव स्रोतसः प्रवाहस्य सरणिरिव मार्ग इव स्थिता, **सीमन्तसरणिः** सीमन्ते धम्मिल्लमध्यप्रदेशे सरणिः सरण्याकाराकारिता रेखा, **वहन्ती** धारयन्ती, **सिन्दूरं** सिन्दूरपरागं, **प्रबलकबरीभारतिमिरद्विषां** प्रबलाः केशपाशात्मना लब्धजन्मतया प्रबलाः ते च ते कबरीभाराः, त एव केशपाशनिचया एव तिमिराणि तान्येव द्विषः शत्रवः तेषां, **बृन्दैः** समूहैः, **बन्दीकृतं** बन्दीग्रहणावरुद्धम्। इव इति सम्भावनायाम्। कविप्रौढोक्तिस्थले इवशब्दस्य सम्भावनैवार्थः, [1]अन्यत्र सादृश्यमिति विवेकः। **नवीनार्ककिरणं** नवीनः प्रातःकालीनः अर्कः सूर्यः तस्य किरणः तम्॥

---

[1] अर्थतः। इति. पा.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! तव वदनसौन्दर्यलहरीपरीवाहस्रोतस्सरणिरिव स्थिता तव सीमन्तसरणिः प्रबलकबरीभारतिमिरद्विषां बृन्दैः बन्दीकृतं नवीनार्ककिरणमिव सिन्दूरं वहन्ती नः क्षेमं तनोतु ॥

अत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः; सीमन्तसरणेः स्रोतस्सरणित्वेनोत्प्रेक्षणात्। न चायमुपमालङ्कारः; स्वतस्सिद्धमनुपजीव्य कविप्रौढोक्तिमेवोपजीव्योत्थानात्; न च सम्भावनापरस्येवशब्दस्य समासविधानाभावात् उपमैवेति वाच्यम्। 'इवेन सह' इति सामान्येनोभयार्थस्य इवशब्दस्य ग्रहणात् उभयत्रापि समासोऽस्तीति ज्ञेयम्। उत्तरार्धेऽप्युत्प्रेक्षालङ्कारः; सिन्दूरस्य सूर्यकिरणात्मना सम्भावनात्। कबरीभारस्य तिमिरत्वारोपणात् रूपकालङ्कारोऽपि वर्तते। एवमनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः; सम्भावनां प्रति रूपकस्य निमित्तत्वात्॥

अरालैस्स्वाभाव्यादलिकलभसश्रीभिरलकैः
परीतं ते वक्त्रं परिहसति पङ्केरुहरुचिम्।
दरस्मेरे यस्मिन् दशनरुचिकिञ्जल्करुचिरे
सुगन्धौ माद्यन्ति स्मरदहनचक्षुर्मधुलिहः॥

अरालैः कुटिलैः, स्वाभाव्यात् स्वभावतः, अलिकलभसश्रीभिः अलिकलभैः भ्रमरपोतैः सश्रीभिः समानाभैः। समासान्तविधेरनित्यत्वात् कप्रत्ययाभावः। अलकैः चूर्णकुन्तलैः, परीतं परितः इतं परीतं व्याप्तं ते तव, वक्त्रं परिहसति, तत्तुल्यं न भवतीत्यर्थः। पङ्केरुहरुचिं पङ्केरुहस्य कमलस्य रुचिं सौभाग्यं, दरस्मेरे दरमीषत् स्मेरो विकासः यस्य तादृशे, यस्मिन् दशनरुचिकिञ्जल्करुचिरे दशनानां दन्तानां रुचय एव किञ्जल्काः केसराः तैः रुचिरे सुभगे, सुगन्धौ सुपद्मगन्धौ, माद्यन्ति नन्दन्ति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



स्मरदहनचक्षुर्मधुलिहः स्मरदहनस्य स्मरारेः ईश्वरस्य चक्षूंष्येव मधुलिहः भ्रमराः । जितमन्मथस्यापि वदनसौन्दर्यदर्शनं मादनहेतुरिति किमु वक्तव्यं त्वद्वदनसौन्दर्यस्वरूपमिति भावः ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! स्वाभाव्यादरालैः अलिकलभसश्रीभिः अलकैः परीतं ते वक्त्रं पङ्केरुहरुचिं परिहसति। दरस्मेरे दशनरुचिकिञ्जल्करुचिरे सुगन्धौ यस्मिन् स्मरदहनचक्षुर्मधुलिहः माद्यन्ति ॥

अत्र उपमालङ्कारः, पङ्केरुहरुचिं परिहसतीत्यनेन वक्त्रस्य कमलसादृश्यप्रतीतेः । अलिकलभसश्रीभिरित्यत्र उपमालङ्कारः । अनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । दशनरुचिकिञ्जल्करुचिरे इत्यत्र रूपकालङ्कारः, दशनरुचीनां किञ्जल्कत्वेनारोपणात् । स्मरदहनचक्षुर्मधुलिहः इत्यत्र रूपकालङ्कारः; चक्षुषां मधुलिट्त्वेनारोपणात् । अनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः, सङ्करद्वयस्य संसृष्टिः ॥४५॥

**ललाटं लावण्यद्युतिविमलमाभाति तव यत्**
**द्वितीयं तन्मन्ये मकुटघटितं चन्द्रशकलम् ।**
**विपर्यासन्यासादुभयमपि सम्भूय च मिथः**
**सुधालेपस्यूतिः परिणमति राकाहिमकरः ॥**

**ललाटं**, निटिलं **लावण्यद्युतिविमलं** लावण्यं तारल्यमेव द्युतिः ज्योत्स्ना तया विमलं स्निग्धं, **आभाति** आ समन्ताद्भाति । **तव यत् द्वितीयं तत् मन्ये** शङ्के। **मकुटघटितं** किरीटकलितं **चन्द्रशकलं** चन्द्रार्धखण्डम्, **विपर्यासन्यासात्**—ललाटं अवाक्कोणं वर्तते; चन्द्रशकलं ललाटस्योपरि ऊर्ध्वशृङ्गं वर्तते; उभयोर्विपर्यासन्यासः शृङ्गचतुष्कसम्मेलनं, तस्मात् **उभयमपि** ललाटचन्द्रशकले, **सम्भूय** मिलित्वा, चकारोऽतिशयवाची ।



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



मिथः अन्योन्यं सुधालेपस्यूतिः सुधायाः अमृतस्य लेपः विलेपनं तस्य स्यूतिः सीवनं यस्य सः अमृतरससान्द्र इत्यर्थः। परिणमति तादूप्यं भजति, तदाकाराकारित इत्यर्थः। राकाहिमकरः राकायां पूर्णिमायां हिमकरश्चन्द्रः॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! तव यत् ललाटं लावण्यद्युतिविमलं आभाति तत् मकुटघटितं द्वितीयं चन्द्रशकलं मन्ये। यद्यस्मात्कारणात् उभयमपि विपर्यासन्यासात् मिथः सम्भूय च सुधालेपस्यूतिः राकाहिमकरः परिणमति॥

पूर्णिमायां सम्पूर्णता चन्द्रस्य कथं भवेत्, किरीटे अर्धदेहाविष्टतया चन्द्रः परिदृश्यत इति पूर्णिमाचन्द्रं निमित्तीकृत्य ललाटमुत्प्रेक्ष्यते॥

अत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः, ललाटस्य अर्धचन्द्रत्वेनोत्प्रेक्षणात्। यद्वा—द्वितीयार्धे अतिशयोक्तिरलङ्कारः, राकाहिमकरस्य ललाटकिरीटघटितचन्द्ररेखाद्वितयनिर्माणासम्बन्धेऽपि सम्बन्धकथनात्। अत्र कविकल्पितवस्तुवृत्तसौन्दर्ययोरभेदाध्यवसायः। उत्प्रेक्षातिशयोक्त्योः अङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः। 'अध्यवसायव्यापारप्राधान्ये उत्प्रेक्षा' 'अध्यवसितप्राधान्ये त्वतिशयोक्तिः'। सूत्रद्वयस्यायमर्थः—अध्यवसायविषयभूते अध्यवसानक्रियारूपस्य व्यापारस्य प्राधान्यं यत्र तत्रोत्प्रेक्षोत्थानम्। यदा अध्यवसायविषयभूते अध्यवसितस्यैव प्राधान्यं प्रतीयते, तदा अतिशयोक्तेरुत्थानम्। अध्यवसायो नाम—निश्चयज्ञानम्। तच्च कविप्रौढोक्तिसिद्धम्, न वास्तवम्। उत्प्रेक्षास्तु अध्यवसानक्रियाप्राधान्यस्य द्योतकाः। 'मन्ये शङ्के ध्रुवम्' इत्येवमादयः स्वरूपोत्प्रेक्षाद्योतकाः। हेतूत्प्रेक्षायां हेतुरेव। फलोत्प्रेक्षायां फलमेव द्योतकम्। अत एवं स्वरूपोत्प्रेक्षायां इवाद्यभावे हेतुफलयोरसम्भवात्, अतिशयोक्त्युत्प्रेक्षयोः भेदाभावात् सैवोत्प्रेक्षा अतिशयोक्तौ अन्तर्भूतेति दिङ्मात्रमुक्तम्॥ ४६॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



भ्रुवौ भुग्ने किञ्चिद्भुवनभयभङ्गव्यसनिनि
त्वदीये नेत्राभ्यां मधुकररुचिभ्यां धृतगुणम्
धनुर्मन्ये सव्येतरकरगृहीतं रतिपतेः
प्रकोष्ठे मुष्टौ च स्थगयति निगूढान्तरमुमे ॥

भ्रुवौ भ्रूवल्ली, भुग्ने अवाक्छृङ्गतया वलयिते, किंचित् नात्यन्तं भुवनभयभङ्गव्यसनिनि! भुवनानां जगतां भयस्य उपद्रवस्य भङ्गे नाशकरणे व्यसनं तदेकप्रवणता अस्या अस्तीति भुवनभयभङ्गव्यसनिनी तस्यास्सम्बुद्धिः। त्वदीये भवत्सम्बन्धिन्यौ, नेत्राभ्यां अक्षिभ्यां, मधुकररुचिभ्यां मधुकराणां भ्रमराणामिव रुचिः शोभा ययोस्ताभ्यां मधुकराकारकारिताभ्यामित्यर्थः। धृतगुणं धृतः सम्पादितः गुणः ज्यावल्ली यस्य तत्, धनुः, चापं मन्ये शङ्के। सव्येतरकरगृहीतं सव्यो दक्षिणः तदितरो वामः स चासौ करश्च तेन गृहीतम्। सव्येतरशब्देन एकेनैव हस्तेन सर्वदा धृतम्, न तु बाणप्रयोगार्थमिति सूच्यते। रतिपतेः मन्मथस्य, प्रकोष्ठे मणिबन्धे, मुष्टौ अङ्गुलीनां ग्रन्थौ, अयं मुष्टिशब्दः अनुशासनवशात् स्त्रीलिङ्गोऽपि प्रयोगबाहुल्यात् पुल्लिङ्गतामापन्नः, गण्डूषशब्दवत्। यथा 'उदरं परिमाति मुष्टिना' इति नैषधे प्रयोगः। स्थगयति स्थगनं छादनं कुर्वति सति, निगूढान्तरं निगूढे अन्तरे मौर्विदण्डयोर्यस्य तत्, उमे! हे पार्वति ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे उमे! भुवनभयभङ्गव्यसनिनि! त्वदीये किञ्चिद्भुग्ने भ्रुवौ मधुकररुचिभ्यां नेत्राभ्यां धृतगुणं रतिपतेः सव्येतरकरगृहीतं प्रकोष्ठे मुष्टौ च स्थगयति सति निगूढान्तरं धनुर्मन्ये ॥

अत्र भ्रुवौ धनुरिति रूपकम्, भ्रुवोः धनूरूपेण निरूपणात्। अत एव द्विवचनैकवचनयोः सामाधिकरण्यं भ्रुवौ धनुरिति ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अयं भावः—विशेषणं चतुर्विधम्, व्यावर्तकविशेषणं, उपरञ्जकविशेषणं, उपलक्षणविशेषणं, उपाधानविशेषणं चेति। तत्र व्यावर्तकविशेषणं नीलोत्पलमित्यादौ, तत्र नैल्यस्य श्वेतादिव्यावर्तकत्वात्। उपरञ्जकविशेषणं द्विविधम्—उपरञ्जनस्य आरोपविषयगोचरत्वेन, आरोप्यमाणगोचरत्वेन चेति। तत्र आरोपविषयगोचरत्वं 'मुखं चन्द्रः' इत्यादौ। तत्र चन्द्रत्वेन मुखस्य उपरञ्जनम्। अत एव लिङ्गभेदेऽपि विशेषणविशेष्यभावः सिद्धः। 'स तदुच्चकुचौ भवन्' इति नैषधे। तत्र सः इति कलश एकः, द्वौ कुचौ, उभयोर्विशेषणविशेष्यभावः। आरोप्यमाणविशेषणं तु—'तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति'। अत्र आरोप्यमाणतिरस्करिणीत्वं आरोपविषयात्मतया स्थितम्। एतच्च पूर्वमेव निरूपितम्। उपलक्षणविशेषणम्—काकवद्देवदत्तगृहम्। पृथक् स्थिते(तिः)हि धर्मिणि उपलक्षणमिति उपलक्षणविदः। काकत्वादिजात्याविष्टस्यैव उपलक्षणत्वात् विशेषणतो भेदः। उपाधानविशेषणम्—'रक्तं स्फटिकम्' इति। धर्मात्मना उपाधायकत्वात् उपलक्षणतो भेदः। व्यावर्तकत्वात् नीलोत्पलादेर्व्यावृत्तिः॥

अत्रेदं तत्त्वम्—उपरञ्जकविशेषणस्थले—'मुखं चन्द्रः' 'कलशः स्तनौ' 'भ्रुवौ धनुः' इत्यादिस्थले—चन्द्रकलशाद्युपरञ्जकविशेषणानि आश्रितलिङ्गसङ्ख्यान्येव मुखादिकं स्तनादिकं च विशिंषन्तीति, न स्तनादेः मुखादेर्वा लिङ्गं सङ्ख्यां वा भजन्ते। नियतलिङ्गतया विशेष्यनिघ्नत्वाभावात् इतरेभ्यो विशेषणेभ्यो व्यावृत्तिः। मन्येशब्दप्रयोगात् सम्भावनोत्थानात् उत्प्रेक्षालङ्कारोऽपि। अनयोः अनुसृष्टिः, अपृथक्स्थितयोः अलङ्कारयोः अङ्गाङ्गिभावात्। अपृथक्स्थितयोः अलङ्कारयोरङ्गाङ्गिभावोऽनुसर्जनम्, पृथक्स्थितयोस्तु सङ्करः इत्यालङ्कारिकरहस्यम्। अतिशयोक्तिरपि, भ्रूमध्यनासिकामध्ययोः मुष्टिप्रकोष्ठस्थगितत्वेनाध्यवसानात्। अत्र नासिकायाः सव्येतरकरत्वेनारोपणप्रतीतेः रूपकालङ्कारो ध्वन्यते। यद्वा—सव्येतरकरत्वेन नासिकायाः अध्यवसानप्रतीतेः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अतिशयोक्तिः। अनयोः सन्देहस्सङ्करः॥ ४७॥

अहस्सूते सव्यं तव नयनमर्कात्मकतया
त्रियामां वामं ते सृजति रजनीनायकतया।
तृतीया ते दृष्टिर्दरदलितहेमाम्बुजरुचिः
समाधत्ते सन्ध्यां दिवसनिशयोरन्तरचरीम्॥

अहः दिवसं सूते जनयति। सव्यं दक्षिणं, तव नयनं नेत्रं, अर्कात्मकतया[1] सूर्यात्मकतया, त्रियामां रात्रिं, वामं सव्येतरं, ते तव, सृजति सूते, [2]रजनीनायकतया चन्द्रात्मकतया। तृतीया निटिलस्थिता, ते तव, दृष्टिः दरदलितहेमाम्बुजरुचिः दरदलितमीषद्विकसितं हेमाम्बुजं [3]रक्ताम्बुजं तस्येव रुचिर्यस्यास्सा, समाधत्ते सम्यगाधत्ते करोति, दिवस-निशयोः अहोरात्रयोः, अन्तरचरीं मध्यवर्तिनीं, सन्ध्याम् सायंप्रातरा-त्मकसन्ध्याकालद्वितयस्य अग्निहोत्रसाध्यत्वादिति भावः॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! तव सव्यं नयनं अर्कात्मकतया अहस्सूते। ते वामं नयनं रजनीनायक[4]तया त्रियामां सृजति। ते तृतीया दृष्टिः दरदलितहेमाम्बुजरुचिः दिवसनिशयोः अन्तरचरीं सन्ध्यां समाधत्ते॥

अत्र सूर्यचन्द्राग्न्यात्मकनयनत्रयेण भगवत्याः [5]अवयवविशेषण दिवस-निशासन्ध्यात्मककालत्रयोपलक्षितपक्षमासर्तुयुगकल्पादिकालोत्पत्तिकथनात् भग-वत्याः कालावच्छेद्यत्वं दूरत एवापास्तमिति ध्वन्यते। इदमुत्तमं काव्यम्। मध्यमकाव्यताप्रतीतिरपि, 'अर्कात्मतया' 'रजनीनायकमयम्'

---

[1] मयम्. [2] रजनीनायकमयं चन्द्रात्मकम्. [3] सुवर्णकमलम्. [4] मयं सत् त्रियामां रात्रिम्. [5] अवयवरूपेण.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



इति वाच्यमानत्वात् । दरदलितहेमाम्बुजरुचिरित्यनेन अग्निनेत्रत्वं ध्वन्यते । अयमनुप्राणनात्मकः मध्यमोत्तमकाव्यप्रयोजकध्वन्योः संसृष्टिः । संसृज्यमानं व्यङ्ग्यद्वयं प्रधानध्वनिना अङ्गाङ्गिभावेन सङ्कीर्यत इति दिक् ॥४८॥

**विशाला कल्याणी स्फुटरुचिरयोध्या कुवलयैः**
**कृपाधाराऽऽधारा किमपि मधुराऽऽभोगवतिका।**
**अवन्ती दृष्टिस्ते बहुनगरविस्तारविजया**
**ध्रुवं तत्तन्नामव्यवहरणयोग्या विजयते ॥४९॥**

विशाला विपुला, कल्याणी मङ्गलात्मिका, स्फुटरुचिः प्रस्फुटकान्तिः, अयोध्या योद्धुमशक्या, कुवलयैः इन्दीवरैः, कृपाधाराऽऽधारा कृपाधाराणां करुणाप्रवाहाणां आधारभूता । आधारशब्दस्य कर्मणि घञन्तत्वात् विशेष्यनिघ्नत्वेन रूपकत्वम् । किमपि मधुरा अव्यक्तमधुरा, आभोगवतिका आभोगः अन्तःपरिणाहः दैर्घ्यमिति यावत् । अवन्ती रक्षका, दृष्टिः ते नयनं, बहुनगरविस्तारविजया बहूनां नगराणां बिस्तारेण सामस्त्येन विजया स्फुरन्ती, ध्रुवं निश्चयः । तत्तन्नामव्यहरणयोग्या तानि तानि च नामानि तत्तन्नामानि विशाला-कल्याणी-अयोध्या-धारा-मधुरा-भोगवती-अवन्ती-विजया-इत्यष्ट नगरनामानि, तैः यद्व्यवहरणं व्यवहारः तत्र योग्या, विजयते सर्वोत्कर्षेण वर्तते ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति ! ते दृष्टिः विशाला कल्याणी स्फुटरुचिः कुवलयैः अयोध्या कृपाधाराऽऽधारा किमपि मधुरा आभोगवतिका अवन्ती बहुनगरविस्तारविजया तत्तन्नामव्यवहरणयोग्या ध्रुवं विजयते ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्रेदमनुसन्धेयम्—विशालप्रभृतयो विजयान्ताः अष्ट नगर्यः अष्ट दृष्टयश्च; विशाला नाम दृष्टिः अन्तर्विकासरूपा। कल्याणीदृष्टिर्विस्मिता। अयोध्यादृष्टिः स्मेरकनीनिका। धारादृष्टिः अलसा। मधुरादृष्टिः [1]वलिता। भोगवतीदृष्टिः स्निग्धा। अवन्तीदृष्टिः मुग्धा। विजयादृष्टिः प्रान्तकनीनिका आकेकराख्या दृष्टिः। एता अष्ट दृष्टयः सर्वयोषित्समानाः। भगवत्यां तु विशेषः—एताः दृष्टयः यथाक्रमं संक्षोभाकर्षणद्रावणोन्मादवश्योच्चाटनविद्वेषण-मारणक्रियासु संभिन्नाः॥

एतदुक्तं भवति—भगवती यत्र प्रदेशे स्थित्वा अन्तर्विकासयुक्त-तया विशालाख्यया दृष्ट्या जनसंक्षोभमकरोत् स देशो विशालानगरी। यत्र प्रदेशे स्थित्वा सा आकेकरया दृष्ट्या विजयाख्यया शत्रुमारणमकरोत् स देशो विजयानगरी। एवं मध्यवर्तिनीनां षण्णां पुरां नामधेयान्यूह्यानि। यथोक्तं भगवत्पादैः—विशालाद्याः भगवत्याः दृष्टिविशेषा संक्षोभादि कर्म-साधनभूताः अन्तर्विकासादिरूपाश्चेति सर्वमनवद्यमिति। एतदेव स्पष्टीकृतं तद्व्याख्याकारैः तत् तत एव अवधार्यम्॥ ४९॥

**कवीनां सन्दर्भस्तबकमकरन्दैकरसिकं**
**कटाक्षव्याक्षेपभ्रमरकलभौ कर्णयुगलम्।**
**अमुञ्चन्तौ दृष्ट्वा तव नवरसास्वादतरलौ**
**असूयासंसर्गादलिकनयनं किञ्चिदरुणम्॥५०**

कवीनां कवीश्वराणां, सन्दर्भस्तबकमकरन्दैकरसिकं सन्दर्भः काव्य-सन्दर्भः स एव स्तबकः पुष्पगुच्छं तत्र मकरन्दे एकं मुख्यं रसिकं मुख्य-रसिकं काव्यामृतास्वादैकरसिकमित्यर्थः। कटाक्षव्याक्षेपभ्रमरकलभौ कटाक्षा-

[1] विलसिता.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



वेव व्याक्षेपौ व्याजौ ययोस्तौ, तौ च तौ भ्रमरकलभौ चेति समासः। भ्रमरकलभौ द्विरेफडिम्भौ। अत्र यद्यपि कलभशब्दः करिडिम्भवचनः, महाकविप्रयोगप्राचुर्यवशात् विशेषणसामान्यलक्षणा भ्रमरकलभाविति। कर्णयुगलं कर्णयोः श्रवणयोः युग्मं, अमुञ्चन्तौ रसास्वादलम्पटतया अत्यजन्तौ दृष्ट्वा, तृतीयस्य नयनस्य ऊर्ध्वस्थितत्वात्। तव नवरसास्वादतरलौ नवरसाः शृङ्गारादयः नवत्वसङ्ख्यायुक्ताः रसाः नवरसाः शाकपार्थिवादित्वादुत्तरपदलोपः; अन्यथा 'द्विगोः' इति ङीपि कृते नवरसी इति स्यात्। नवरसानामास्वादे भोगे तरलौ लम्पटौ, असूयासंसर्गात् असूया ईर्ष्या तस्याः संसर्गः सम्बन्धः तस्मात्, अळिकनयनं निटिलनेत्रं, किञ्चिदरुणं किञ्चित्कोपादिवारुणम् ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! कवीनां सन्दर्भस्तबकमकरन्दैकरसिकं तव कर्णयुगलं कटाक्षव्याक्षेपभ्रमरकलभौ नवरसास्वादतरलौ अमुञ्चन्तौ दृष्ट्वा असूयासंसर्गात् अलिकनयनं किञ्चिदरुणम् ॥

अयमर्थः—नयनत्रयमध्ये द्वयोरमृतपाने सिद्धे एकस्य नयनस्य असूया युज्यते। आकर्णान्तनेत्रा भगवती इति वस्तुध्वनिः ॥

अत्र अतिशयोक्तिरलङ्कारः; श्रवणयोः * काव्यामृतास्वादसंबन्धाभवेऽपि सम्बन्धकथनात्। भ्रमरकलभावित्यत्र अपह्नवालङ्कारः। यद्वा—रूपकं, कटाक्षव्याक्षेपः कटाक्षात्मतया अवस्थितिरिति व्याख्येयम्। अतिशयोक्त्यन्तरमपि, भ्रमरकलभयोः मकरन्दास्वादासम्बन्धेऽपि सम्बन्धकथनात्। कविकृतवस्तुकृतसौन्दर्ययोरभेदाध्यवसायात् अतिशयोक्त्योरनुप्राण्यानुप्राणकभावस्सम्बन्धः। अपह्नवस्तु अङ्गाङ्गिभावेन सङ्कीर्णः ॥ ५० ॥

---

* नेत्रयोः श्रवणगत इति कल्याणपुरमुद्रितकोशपाठः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**शिवे शृङ्गारार्द्रा तदितरजने कुत्सनपरा**
**सरोषा गङ्गायां गिरिश (नयने) चरिते विस्मय-**
**[वती ।**
**हराहिभ्यो भीता सरसिरुहसौभाग्यजननी**
**सखीषु स्मेरा ते मयि जननि दृष्टिस्सकरुणा ॥**

**शिवे** सदाशिवे, **शृङ्गारार्द्रा** शृङ्गारेण शृङ्गाररसेन आर्द्रा आप्लुता, **तदितरजने** तस्मात् सदाशिवात् इतरजने तद्विषये **कुत्सनपरा** बीभत्सरसाविष्टा । अत्र कुत्सनं बीभत्सरसास्वादनजन्यान्तःकरणमुकुलीभावः कार्यकारणयोरभेदेन रसत्वेनोपचरितः । **सरोषा** रौद्ररसाविष्टा, रोषस्य स्थायिभावस्य रसत्वोक्तिरुपचारात् । **गङ्गायां** सपत्न्यामिति शेषः । **गिरिशचरिते** त्रिपुरविजयादौ, **विस्मयवती** अद्भुतरसाविष्टा, 'गिरिशनयने' इति पाठे [1]तृतीयनयनेनैव मन्मथदहनम्, तादृशनयन एव इदानीं साकूतदर्शनमित्यद्भुतमिति ध्येयम् । **हराहिभ्यः** हरस्य परमेश्वरस्य अहिभ्यः सर्पेभ्यः, **भीता** भयरसाविष्टा, **सरसिरुहसौभाग्यजननी** सरसिरुहाणां सौभाग्यं रक्तिमा तस्य जननी उत्पादिका कोकनदकान्तिः, रक्तवर्णा वीररसाविष्टेत्यर्थः । अत्र अनुभावेन नयनरक्तिम्ना वीररसो ध्वनितः । **सखीषु** वयस्यासु **स्मेरा** स्तब्धकनीनिका, अत्राप्यनुभावेन हास्यरसो ध्वन्यते । **ते** तव, **मयि जननि** ! हे मातः ! **दृष्टिः सकरुणा** करुणरसाविष्टा ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे जननि ! ते दृष्टिः शिवे शृङ्गारार्द्रा, तदितरजने कुत्सनपरा, गङ्गायां सरोषा, गिरिशचरिते [2]विस्मयवती, हराहिभ्यो भीता, सरसिरुहसौभाग्यजननी, सखीषु स्मेरा, मयि सकरुणा ॥

[1] तृतीयनयनमेव मन्मथनयनम्. [2] नयनयोर्विस्मयवती.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्र परस्परविरुद्धानां रसनां एकत्र नयने समावेशकथनात् विरोधालङ्कारः; अवस्थाभेदेन परिहारात् तस्य विरोधस्य आभासत्वम्। तल्लक्षणं– 'विरोधाभासो विरोधः' इति। विक्रियाजनका एव रसा इति अष्टौ रसाः। भरतमते—

शान्तस्य निर्विकारत्वान्न शान्तं मेनिरे रसम्।

इति शान्तस्य रसत्वाभावात् अष्टावेव रसास्सङ्गृहीताः ॥ ५१ ॥

गते कर्णाभ्यर्णं गरुत इव पक्ष्माणि दधती
पुरां भेत्तुश्चित्तप्रशमरसविद्रावणफले।
इमे नेत्रे गोत्राधरपतिकुलोत्तंसकलिके
तवाकर्णाकृष्टस्मरशरविलासं कलयतः ॥५२॥

गते प्राप्ते, कर्णाभ्यर्णं कर्णयोस्समीपं, गरुत इव कङ्कपत्राणीव, पक्ष्माणि दधती। पुरां पुराणां भेत्तुः भेदकस्य, चित्तप्रशमरसविद्रावणफले चित्ते अन्तःकरणे प्रशमरसः[1] नैस्पृह्यमित्यर्थः, तस्य विद्रावणं विनाशनं शृङ्गाररसोत्पादनमिति यावत्, तदेव फलं प्रयोजनं ययोस्ते चित्तप्रशमरसविद्रावणफले। अत्र फलशब्देन अध्यवसितेन अयोमयी बाणाग्रसूची कथ्यते। इमे हृदयाम्बुजे परिदृश्यमाने, नेत्रे नयने, गोत्राधरपतिकुलोत्तंसकलिके! गोत्रा भूमिः, धरतीति धरः पचाद्यच्, गोत्रायाः धरो गोत्राधरः, अन्यथा गोत्रां धारयतीति विग्रहे कर्मण्यणि प्राप्तौ गोत्राधार इति स्यात्। अनेनैवाभिप्रायेण शक्तिधर इत्यत्र शक्तेः धरः शक्तिधरः इत्युक्तं क्षीरस्वामिना। गोत्राधरपतिः हिमवान् तस्य कुलोत्तंसकलिका कोरकः तस्यास्सम्बुद्धिः। तव भवत्याः,

[1] शन्तरस इत्यधिकः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**आकर्णाकृष्टस्मरशरविलासं** कर्णपर्यन्तमाकृष्टयोः स्मरशरयोः मन्मथबाणयोः विलासं सौभाग्यं **कलयतः** कुरुतः । लट्परस्मैपदद्विवचनान्तम् ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे गोत्राधरपतिकुलोत्तंसकलिके ! तव इमे नेत्रे कर्णाभ्यर्णं गते पक्ष्माणि गरुत इव दधती पुरां भेत्तुः चित्तप्रशमरसविद्रावणफले आकर्णाकृष्टस्मरशरविलासं कलयतः ॥

अयमर्थः—पञ्चबाणस्य स्त्रीणां कटाक्षष्षष्ठो बाणः । पञ्चबाण इति प्रसिद्धिः प्राचुर्याभिप्रायेण । कटाक्षात्मकबाणो बाणपञ्चकतुल्य इति न षट्बाण इति व्यवहारः ॥

अत्र निदर्शनालङ्कारः; स्मरशरविलाससदृशविलासकरणप्रतिभानात् प्रतिबिम्बाक्षेपात् ॥ ५२ ॥

**विभक्तत्रैवर्ण्यं व्यतिकरितलीलाञ्जनतया**
**विभाति त्वन्नेत्रत्रितयमिदमीशानदयिते ।**
**पुनस्स्रष्टुं देवान् द्रुहिणहरिरुद्रानुपरतान्**
**रजस्सत्त्वं बिभ्रत्तम इति गुणानां त्रयमिव ॥**

**विभक्तत्रैवर्ण्यं** विभक्तं परस्परासङ्कीर्णं त्रैवर्ण्यं त्रयो वर्णाः सितासितरक्ताः यस्येति बहुव्रीहिः, स्वार्थे ष्यञ् । महाभाग्यपुरुषाणां नयने रक्तरेखास्सन्ति, नयनगोलद्वयं श्वेतम् , यद्यपि कनीनिका नीला, तथापि तृतीयनयने कनीनिकायाः नैल्याभावात् इत्याह-**व्यतिकरितलीलाञ्जनतया** इति। व्यतिकरितं संवलितं लीलार्थं विलासार्थं धृतं अञ्जनं यस्य तत् तस्य भावस्तत्ता तया । तृतीयनयनगोलस्य श्वैत्यमङ्गीकृत्योक्तम् । **विभाति** विराजते । **त्वन्नेत्रत्रितयं**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



तव नेत्राणां त्रितयं, इदं परिदृश्यमानं, ईशानदयिते ईशानस्य महादेवस्य दयिता प्रेयसी तस्यास्सम्बुद्धिः, पुनः स्रष्टुं गतब्रह्माण्डानन्तरमस्मिन् ब्रह्माण्डे भूयो निर्मातुं, देवान् देवनधर्मयुक्तान्, [1]द्रुहिणहरिरुद्रानुपरतान् आत्मनि विलीनान्, रजः रजोगुणः, सत्त्वं सत्त्वगुणः, बिभ्रत् दधत्, तमः तमोगुणः, इति एवं गुणानां सत्त्वरजस्तमस्संज्ञिकानां, त्रयं त्रितयं, इव ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे ईशानदयिते! इदं त्वन्नेत्रत्रितयं व्यतिक्रितलीलाञ्जनतया विभक्तत्रैवर्ण्यं उपरतान् द्रुहिणहरिरुद्रान् देवान् पुनः स्रष्टुं रजस्सत्त्वं तम इति गुणानां त्रयमिव बिभ्रत् विभाति ॥

अत्र सत्त्वगुणः श्वेतवर्णः रजोगुणो रक्तवर्णः तमोगुणो नीलवर्णः इति कविप्रसिद्धिः। तम इति निपातेनाप्यभिहिते कर्मणि न कर्मविभक्तिः; परिगणनस्य प्रायिकत्वादिति निपातेतिशब्देनाभिधानात् रजस्सत्त्वतमश्शब्दाः प्रथमान्ताः। यद्वा—द्वितीयान्ताः; निपाताभिधानस्य प्रायिकत्वात्। यथोक्तं वाग्भटेन—

हिंसा स्तेयान्यथाकामं पैशुन्यं परुषानृते।
संभिन्नालापव्यापादमभिध्यांदृग्विपर्ययम् ॥
पापं कर्मेति दशधा कायवाङ्मनसैस्त्यजेत्। इति।

अत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः; नयनगतस्य श्वेतरक्तनीलरेखात्रितयस्य सत्त्वरजस्तमोगुणत्वेनोत्प्रेक्षणात्। अत्र भगवत्याः नयनाञ्जनदर्शनादेव सृष्टिस्थितिलया इति महानतिशयो ध्वन्यत इत्यलङ्कारेण वस्तुध्वनिः ॥ ५२ ॥

---

[1] द्रुहिणहरिरुद्रान् ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् उपरतान्.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**पवित्रीकर्तुं नः पशुपतिपराधीनहृदये**
**दयामित्रैर्नेत्रैररुणधवलश्यामरुचिभिः ।**
**नदश्शोणो गङ्गा तपनतनयेति ध्रुवममुं**
**त्रयाणां तीर्थानामुपनयसि सम्भेदमनघम् ॥**

एतदेव त्रैवर्ण्यं पुनरुत्प्रेक्ष्यते- **पवित्रीकर्तुं** अपवित्रान् पवित्रान् सम्पद्यमानान् कर्तुं 'अभूततद्भावे सम्पद्यकर्तरि च्विः'। **नः** अस्मान्, **पशुपतिपराधीनहृदये!** [1]हरायत्तचित्ते! **दयामित्रैः** दयार्द्रैः, **नेत्रैः अरुणधवलश्यामरुचिभिः** प्रत्येकमिति शेषः। **नदः** [2]पुंप्रवाहः **शोणः** हिरण्यवाहः, स तु रक्तवर्णः, **गङ्गा** भागीरथी श्वेतवर्णा, **तपनतनया** कालिन्दी नीलवर्णा इति कविप्रसिद्धिः। **इति** एवं, **ध्रुवं** सत्यं, **अमुं** परिदृश्यमानं, **त्रयाणां तीर्थानां** जलावताराणां, **सम्भेदं** नदीसङ्गमं, **उपनयसि** सम्पादयसि। **अनघं** अघापनोदकम् ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे पशुपतिपराधीनहृदये! दयामित्रैः अरुणधवलश्यामरुचिभिः नेत्रैः शोणो नदो गङ्गा तपनतनयेति त्रयाणां तीर्थानां अमुं अनघं सम्भेदं नः पवित्रीकर्तुं उपनयसि ध्रुवम्। भक्तवत्सलत्वाद्देव्या इति भावः ॥

अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः; स्वभावसिद्धस्य नयनगतरेखात्रितयस्य सितासितरक्तवर्णात्मकस्य गङ्गायमुनाशोणसङ्गमत्वेनोत्प्रेक्षणात् ॥ ५४ ॥

---

[1] परायत्तचित्ते. [2] पुण्यप्रवाहः'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



निमेषोन्मेषाभ्यां प्रलयमुदयं याति जगती
तवेत्याहुस्सन्तो धरणिधरराजन्यतनये ।
त्वदुन्मेषाज्जातं जगदिदमशेषं प्रलयतः
परित्रातुं शङ्के परिहृतनिमेषास्तव दृशः ॥

निमेषो नाम पक्ष्मणां मुकुलीभावः, अत्र उन्मेषो नाम नयने पक्ष्मविन्यासः, ताभ्यां यथाक्रमं, प्रलयं संहारं, उदयं उद्भवं, याति प्राप्नोति। जगती जगत् तत्र भवत्याः, इति एवं, आहुः ब्रुवते । 'ब्रूवः पञ्चानामादितः' इत्यादिना आहादेशः । सन्तः सत्पुरुषाः व्यासादयः । दृष्टिसृष्टिवादिमते ज्ञानव्यतिरेकेण ज्ञेयाभावात् निमेषोन्मेषाभ्यामित्युक्तिराञ्जस्यमिति ध्येयम् । धरणिधरराजन्यतनये! हिमाचलपुत्रिके! त्वदुन्मेषात् तव पक्ष्मस्पन्दात्, जातं जगत् भुवनं, इदं परिदृश्यमानं अशेषं कृत्स्नं, प्रलयतः महासंहारात्, परित्रातुं रक्षितुं, शङ्के[1] । परिहृतनिमेषाः तिरस्कृताक्षिस्पन्दाः, तव दृशः नयनानि ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—धरणिधरराजन्यतनये! तव निमेषोन्मेषाभ्यां जगती प्रलयमुदयं यातीति सन्तः आहुः । अतः त्वदुन्मेषात् जातं अशेषं इदं जगत् प्रलयतः परित्रातुं तव दृशः परिहृतनिमेषाः इति शङ्के ॥

अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः। देवतानामनिमेषत्वं स्वभावसिद्धम्; तच्च जगत्संरक्षणार्थमिति फलत्वेनोत्प्रेक्षणात् फलोत्प्रेक्षा । तत्र निमेषोन्मेषदशायां तौ जगदुत्पत्तिलयाविति देव्याः महिमा अवाङ्मनसगोचर इति वस्तु ध्वन्यते । अतः अलङ्कारेण वस्तुध्वनिः ॥ ५५ ॥

---

[1] शङ्के मन्ये.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



तवापर्णे कर्णेजपनयनपैशुन्यचकिताः
निलीयन्ते तोये नियतमनिमेषाश्शफरिकाः ।
इयं च श्रीर्बद्धच्छदपुटकवाटं कुवलयं
जहाति प्रत्यूषे निशि च विघटय्य प्रविशति ॥

तव भवत्याः, अपर्णे ! पार्वति ! कर्णेजपनयनपैशुन्यचकिताः कर्णेजपे कर्णसमीपं सदा गते नयने ताभ्यां यत्करिष्यमाणं पैशुन्यं पिशुनभावः, मर्मोद्घाटनं तस्माच्चकिताः, निलीयन्ते आकारगोपनेन स्थिताः इत्यर्थः । तोये उदके, नियतं निश्चयः, अनिमेषाः निमेषरहिताः शफरिकाः मीनयोषितः, इयं च परिदृश्यमाना नेत्रगता, श्रीः लक्ष्मीः, बद्धच्छदपुटकवाटं बद्धं संकलितं छदपुटा एव कवाटं यस्य तत् कवाटसङ्घटितगृहमिव वर्तत इत्यर्थः । कुवलयं इन्दीवरं, जहाति त्यजति । प्रत्यूषे उषःकाले, निशि च रात्रौ च, विघटय्य प्रविशति संविशति ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे अपर्णे ! तव कर्णेजपनयनपैशुन्यचकिताः शफरिकाः अनिमेषास्तोये निलीयन्ते नियतम् । किञ्च—इयं च श्रीः बद्धच्छदपुटकवाटं कुवलयं प्रत्यूषे जहाति निशि च तत् विघटय्य प्रविशति ॥

अयमर्थः—लोके नेत्रसमं वस्तु शफरिका इन्दीवराणीति, एतद्द्वितयसमं नेत्रमिति च सुप्रसिद्धं उभयोस्साम्यं, अत्र कविः नेत्रसौभाग्यं शफरिकासु इन्दीवरेषु च वर्तते । तत्सौभाग्यमाहर्तुकामं नेत्रद्वयं तत्र पैशुन्यं करोतीतीममर्थमवलम्ब्योत्प्रेक्षते ॥

अत्र पूर्वार्धे उत्प्रेक्षालङ्कारः, शफरिकाणां जलाधिवासः, अनिमेषत्वं च स्वभावसिद्धम्, तदन्यथात्वेनोत्प्रेक्षणात् । द्वितीयार्धे अतिशयोक्तिः; नेत्र-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



लक्ष्म्याः नेत्रं विहाय इन्दीवरेषु भक्त्यतिशयात् रात्रौ तद्रक्षणार्थं तद्गर्भान्तर्वर्तित्वं, दिवा तद्विहाय नेत्रवर्तित्वं असम्भवीति असम्बन्धे सम्बन्धनिबन्धनात्। इन्दीवरस्य रात्रौ विकासः स्वभावसिद्धः, दिवा मुकुलीभावश्च। एतद्द्वयस्य लक्ष्मीकृततत्वासम्बन्धेऽपि सम्बन्धकथनात् अतिशयोक्त्यन्तरम्। उभयोरनुसृष्टिः। अनुसृष्टिलक्षणं पूर्वमेवोक्तम् *। अत्र इन्दीवरस्य रात्रौ विकासः, नेत्रद्वयस्य दिवा विकासः। अतश्च दिवा लक्ष्मीः नेत्रे वसति, रात्रौ कुवलये। एवं लक्ष्मीः नक्तंदिवमुभयत्रैव चरति नान्यत्रेति। शफरीप्रभृतीनां लोके नेत्रोपमानवस्तूनां भगवतीनेत्रतुल्यता नास्तीति शफरिकाणामुदकमध्यविलीनत्वमेव युक्तमिति काव्यलिङ्गध्वनिरित्यलङ्कारध्वनिः ॥ ५६ ॥

## दृशा द्राघीयस्या दरदलितनीलोत्पलरुचा
## दवीयांसं दीनं स्नपय कृपया मामपि शिवे।
## अनेनायं धन्यो भवति न च ते हानिरियता
## वने वा हर्म्ये वा समकरनिपातो हिमकरः॥

दृशा कटाक्षदृष्ट्या, द्राघीयस्या दीर्घतरया, दरदलितनीलोत्पलरुचा दरदलितमीषद्विकसितं नीलोत्पलं इन्दीवरं तस्येव रुचिःकान्तिर्यस्याः तया, दवीयांसं दूरवर्तिनम्। दूरशब्दस्य 'स्थूलदूर' इत्यादिना सूत्रेण यणो लोपः, पूर्ववर्णस्य गुणे कृते अवादेशे कृते सिद्धं रूपं दवीयानिति ईयसुन्प्रत्ययान्तम्। दीनं दरिद्रं, स्नपय स्नपनं कुरु। कृपया दयया, मामपि इतरजनसाधारण्यमपिशब्दार्थः। शिवे! मङ्गलात्मिके! अनेन एतावन्मात्रेण स्नपनेनापि, अयं

* ४७ श्लोकव्याख्यायाम्.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



जनः अहमित्यर्थः। धन्यो भवति 'कृतार्थो भवति। न च ते तव, हानिः द्रव्यनाशः, इयता साधारणदर्शनमात्रेण, वने वा अरण्ये वा, हर्म्ये प्रासादे वा, समकरनिपातः समं तुल्यं यथा भवति तथा कराणां किरणानां निपातः व्यापनं यस्य स तथोक्तः। हिमकरः शीतरश्मिः॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे शिवे! द्राघीयस्या दरदलितनीलोत्पलरुचा दृशा दवीयांसं दीनं कृपया मामपि स्नपय अयं अनेन धन्यो भवति। इयता ते हानिर्न च! तथा हि—हिमकरः वने वा हर्म्ये वा समकरनिपातो हि। स्वच्छान्तःकरणानां सर्वसाधारण्यं स्वभावसिद्धमिति भावः॥

अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः; सामान्येन विशेषसमर्थनात्। सर्वसाधारण्य-दर्शनं सर्वोत्कृष्टत्वे हेतुरिति नात्मीयतादर्शनापेक्षा अस्तीति ध्वनिः॥ ५७॥

## अरालं ते पालीयुगलमगराजन्यतनये
## न केषामाधत्ते कुसुमशरकोदण्डकुतुकम्।
## तिरश्चीनो यत्र श्रवणपथमुल्लङ्घ्य विलसन्
## अपाङ्गव्यासङ्गो दिशति शरसन्धानधिषणाम्॥

अरालं कुटिलं, ते पालीयुगलं कर्णयुगलनयनयुगलयोर्मध्यं, अगराजन्यतनये! नगेन्द्रतनये! न केषामाधत्ते सर्वेषां करोत्येव। कुसुमशरकोदण्डकुतुकं मन्मथचापसौभाग्यं, तिरश्चीनः तिर्यक्प्रसारितः, यत्र पालीयुगले, श्रवणपथमुल्लङ्घ्य कर्णान्तिकं प्राप्य, विलसन् स्फुरन्, अपाङ्गव्यासङ्गः अपाङ्गस्य कटाक्षस्य व्यासङ्गः दैर्घ्यं, दिशति करोति। शरसन्धानधिषणां शरसन्धानस्य बाणसंयोजनस्य धिषणां बुद्धिं तद्भ्रान्ति संहितशरधिषणामिति यावत्॥



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्रेत्थं पदयोजना--हे अगराजन्यतनये ! ते पालीयुगलमरालं कुसुमशरकोदण्डकुतुकं केषां नाधत्ते । यद्यस्मात् यत्र तिरश्चीनः विलसन् अपाङ्गव्यासङ्गः श्रवणपथमुल्लङ्घ्य शरसन्धानधिषणां दिशति ॥

अत्र भ्रान्तिमदलङ्कारः; अपाङ्गे संहितशरभ्रान्तेरुत्थानात् । पालीयुगले कुसुमशरकोदण्डबुद्धिः निश्चयात्मिका संशयपूर्विकेति सन्देहालङ्कार एव । अनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ॥ ५८ ॥

स्फुरद्गण्डाभोगप्रतिफलितताटङ्कयुगलं
चतुश्चक्रं मन्ये तव मुखमिदं मन्मथरथम् ।
यमारुह्य द्रुह्यत्यवनिरथमर्केन्दुचरणं
महावीरो मारः प्रमथपतये सज्जितवते ॥५९॥

स्फुरद्गण्डाभोगप्रतिफलितताटङ्कयुगलं स्फुरन्तौ च तौ गण्डाभोगौ च गण्डस्थले दर्पणवन्निर्मलावित्यर्थः । तत्र प्रतिफलितं प्रतिबिम्बितं ताटङ्कयुगलं यस्य सः तं चतुश्चक्रं चत्वारि चक्राणि रथचरणानि यस्य तं चतुश्चक्रं, मन्ये शङ्के । तव भवत्याः, मुखं आस्यं, इदं हृदयकमले परिदृश्यमानं, मन्मथरथं मदनस्य स्यन्दनं, यं रथं, आरुह्य अधिष्ठाय, द्रुह्यति अपराध्यति विध्यतीति यावत् । अवनिरथं, भूमिरथं अर्केन्दुचरणं अर्केन्दू सूर्यचन्द्रौ तावेव चरणौ यस्य सः, महावीरः चतुश्चक्ररथारोहणमहिम्ना अप्रतिहतप्रतापः, मारः मन्मथः, प्रमथपतये त्रिपुरान्तकाय, सज्जितवते सज्जं कुर्वते सन्नद्धं कुर्वत इत्यर्थः ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति ! तव इदं मुखं स्फुरद्गण्डाभोगप्रतिफलितताटङ्कयुगलं चतुश्चक्रं मन्मथरथं मन्ये । यमारुह्य मारः महावीरस्सन्

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अवनिरथमर्केन्दुचरणं सज्जितवते प्रमथपतये द्रुह्यति । 'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः' इति चतुर्थी ॥

अत्र पूर्वार्धे उत्प्रेक्षालङ्कारः; भगवत्याः मुखस्य रथत्वेनोत्प्रेक्षणात् । द्वितीयार्धे आरोहणस्य महावीरत्वसम्पादकत्वकथनात् पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः । परमेश्वरस्य मन्मथेन सार्धं युद्धसन्नाहासम्बन्धेऽपि सम्बन्धकथनादतिशयोक्तिः । काव्यलिङ्गातिशयोक्त्योरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । उत्प्रेक्षायास्तु काव्यलिङ्गं प्रत्यनुप्राणकतैव, न संसृष्टिः, नापि सङ्करः इति ध्येयम् । पृथक्स्थित्या उपकारकमनुप्राणकम् । अपृथक्स्थित्या प्रयोजकं उपसर्जनम् । पृथक्स्थित्या प्रयोजकमङ्गम् । एतद्विलक्षणं संसृष्टिरित्यालङ्कारिकमतरहस्यम् । एतच्च पूर्वमुक्तमपि स्पष्टार्थं पुनः प्रतिपादितमिति ॥ ५९ ॥

**सरस्वत्यास्सूक्तीरमृतलहरीकौशलहरीः**
**पिबन्त्याश्शर्वाणि श्रवणचुलुकाभ्यामविरलम् ।**
**चमत्कारश्लाघाचलितशिरसः कुण्डलगणो**
**झणत्कारैस्तारैः प्रतिवचनमाचष्ट इव ते ॥ ६० ॥**

सरस्वत्याः भारत्याः, सूक्तीः मधुरवचांसि, अमृतलहरीकौशलहरीः अमृतलहर्याः सुधाप्रवाहोत्सेकस्य कौशलं सौभाग्यं हरन्तीति ताः । हरिशब्दः औणादिको निप्रत्ययान्तः, 'कृदिकारादक्तिनो वा ङीष् वक्तव्यः' इति ङीष् । पिबन्त्याः धयन्त्याः, शर्वाणि ! शर्वस्य परमेश्वरस्य पत्नि ! श्रवणचुलुकाभ्यां चुलुकं प्रसृत्यर्धं श्रवणे श्रोत्रे एव चुलुके ताभ्यां अविरलं यथा भवति तथा, सावधानेनेत्यर्थः । चमत्कारश्लाघाचलितशिरसः

---

[1] तावेव.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



चमदित्यव्ययमाश्चर्यानुकरणवाचि । कारशब्दः स्वरूपपरः । यद्वा—सुखदुःखो-द्भूतानन्दैः हठोत्थितचित्तविक्रिया चमत्कारः ससीत्कारशरीरोल्लासनादिकृत् । चमत्कारश्लाघासु आश्चर्यानुकरणसन्दोहेषु चलितं शिरो यस्यास्तस्याः, कुण्डलगणः कर्णाभरणसमूहः, झणत्कारैः झणदित्यव्ययं भूषणरवानुकरणे । कारशब्दः स्वरूपवाची । झणत्कारैः तारैः अतिबहुलैः उच्चतरैः, प्रतिवचनं प्रतिशब्दं अनुमोदवचनं, आचष्ट इव ते ॥

अत्रेत्थं पदयोजनां—हे शर्वाणि ! ते अमृतलहरीकौशलहरीः सूक्तीः श्रवणचुलुकाभ्यामविरलं पिबन्त्याः चमत्कारश्लाघाचलितशिरसः सरस्वत्याः कुण्डलगणः तारैः झणत्कारैः प्रतिवचनमाचष्ट इव ॥

अत्र उत्तरार्धे उत्प्रेक्षालङ्कारः; झणत्काराणां प्रतिवचनत्वेन सम्भावनात् । पूर्वार्धे अतिशयोक्तिरलङ्कारः; सरस्वत्याः शिरःकम्पनसम्बन्धाभावेऽपि सम्बन्धोक्तेरसम्बन्धे सम्बन्धनिबन्धनात् । उभयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ॥ ६० ॥

**असौ नासावंशस्तुहिनगिरिवंशध्वजपटि**
**त्वदीयो नेदीयः फलतु फलमस्माकमुचितम् ।**
**वहत्यन्तर्मुक्ताः शिशिरकरनिश्वासगलितं**
**समृद्ध्या यत्तासां बहिरपि च मुक्तामणिधरः ॥**

असौ परिदृश्यमानः, नासावंशः नासा नासिका वंशः वंशदण्डः रूपकमेतत् । तुहिनगिरिवंशध्वजपटि ! तुहिनगिरेः हिमाचलस्य वंशस्य अन्वयस्य ध्वजपटि पताके! त्वदीयः भवदीयः, नेदीयः सन्निकृष्टतरं, फलतु निष्पादयतु । फलं इष्टार्थं, अस्माकं मत्सम्बन्धिनां मम चेत्यर्थः । उचितं क्रियाविशेषणमेतत् यथेप्सितं, वहति धारयति । अन्तः अभ्यन्तरे,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



मुक्ताः मुक्तामणीन् शिशिरकरनिश्वासगलितं शिशिरकरः चन्द्रः तस्य निश्वासो वामनाडीमार्गवायुः तेन गलितं स्रुतं, समृद्धया आधिक्येन, यत् यस्मात्कारणात्, तासां मुक्तानां, बहिरपि च बाह्यप्रदेशेऽपि नासिकाग्र-वामभागेऽपीत्यर्थः। नासिकाकारितो वंशदण्डः मुक्तामणिधरः मुक्तामणिं धृतवान्। 'मुक्तामणिमधात्' इति सम्यक्पाठः॥

अत्रेत्थं पद्योजना—हे तुहिनगिरिवंशध्वजपटि! त्वदीयोऽसौ नासा-वंशः अस्माकं उचितं नेदीयः फलं फलतु। सः अन्तः मुक्ताः वहति। यद्यस्मात्कारणात् तासां समृद्धया शिशिरकरनिश्वासगलितं बहिरपि च मुक्तामणिधरः॥

अत्र नासिकायाः वंशत्वारोपणात् रूपकम्। वंशत्वसाधकप्रतिपादकं उत्तरार्धम्। वंशगर्भे मौक्तिकानि उद्भवन्तीति लोकशास्त्रमर्यादा। अतो नासावंशदण्डेऽपि अभ्यन्तरे मौक्तिकान्युद्भूतानि वर्तन्ते। नो चेन्नासा-दण्डस्य बहिः मुक्तामणिधरत्वं कथं सङ्घटेत इत्यर्थापत्त्या वंशदण्डाकारो नासिकायाः समर्थित इति रूपकमेव सम्यक्॥ ६१॥

प्रकृत्याऽऽरक्तायास्तव सुदति दन्तच्छदरुचेः
प्रवक्ष्ये सादृश्यं जनयतु फलं विद्रुमलता।
न बिम्बं तद्बिम्बप्रतिफलनरागादरुणितं
तुलामध्यारोढुं कथमिव विलज्जेत कलया॥

प्रकृत्या स्वभावेन, आरक्तायाः आताम्रायाः, तव सुदति शोभनाः दन्ताः यस्याः तस्याः सम्बुद्धिः। दन्तच्छदरुचेः दन्तच्छदयोरोष्ठयोः रुचेः सौभाग्यस्य, प्रवक्ष्ये प्रकर्षेण कथये। सादृश्यं सदृशस्य भावः सादृस्यं,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



जनयतु उत्पादयतु। आशंसायां लोट्। विद्रुमस्य फलं यदि स्यात् तदा सदृशवस्तुसद्भावः न तु विद्रुममात्रं सदृशमिति। फलं पक्वफलं, पीतवर्णाभ्यो लताभ्यः उत्पन्नं फलं अतिरिक्तं, रक्तलतोत्पन्नस्य रक्तिमा किमु वक्तव्य इति तदेव सदृशमिति तात्पर्यम्। विद्रुमलता प्रवाललतिका। न बिम्बं बिम्बफलं तद्बिम्बप्रतिफलनरागात् तयोः दन्तच्छदयोः बिम्बस्य प्रतिफलनं प्रतिबिम्बनं तेन रागः रक्तिमा तस्मात्। बिम्बफलमिति व्यवहारः अधरबिम्बप्रतिबिम्बप्रसादासादितः, अन्यथा तस्य बिम्बव्यवहारो न स्यात्, यथा स्फटिकादौ जपाकुसुमादेः प्रतिबिम्बवशादेव स्फटिकादीनां रक्तता एवं बिम्बफलस्यापीति। तद्बिम्बप्रतिफलनरागात्, अरुणितं तुलामध्यारोढुं तुलायां साम्यकथायां स्थातुं कथमिव। इवेति वाक्यालङ्कारे। विलज्जेत व्रीडेत, कलया लेशेन॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे सुदति! तव प्रकृत्या आरक्तायाः दन्तच्छदरुचेः सादृश्यं प्रवक्ष्ये। विद्रुमलता फलं जनयतु। बिम्बं पुनः तद्बिम्बप्रतिफलनरागादरुणितं कलयापि तुलामध्यारोढुं कथमिव न विलज्जेत। लज्जधातुरात्मनेपदी॥

अत्रातिशयोक्तिरलङ्कारः, यद्यर्थोक्तौ कल्पनात्। द्वितीयार्धे असम्बन्धे सम्बन्धनिबन्धनातिशयोक्तिः, बिम्बप्रतिफलनासम्बन्धेऽपि सम्बन्धकथनेनाभेदकथनात्। उभयोस्संसृष्टिः॥ ६२॥

स्मितज्योत्स्नाजालं तव वदनचन्द्रस्य पिबतां
चकोराणामासीदतिरसतया चञ्चुजडिमा।
अतस्ते शीतांशोरमृतलहरीमाम्लरुचयः
पिबन्ति स्वच्छन्दं निशिनिशि भृशं काञ्जिकधिया॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



स्मितज्योत्स्नाजालं स्मितमीषद्धसितमेव ज्योत्स्ना तस्याः जालं वितानं, तव वदनचन्द्रस्य वदनमेव चन्द्रः तस्य, पिबतां आस्वादयतां, चकोराणां पक्षिविशेषाणां आसीत् अतिरसतया अतिमाधुर्यात्, चञ्चुजडिमा जिह्वाजाड्यम्। अतः कारणात्, ते चकोराः, शीतांशोः चन्द्रस्य, अमृतलहरीं अमृतस्य सुधायाः उत्सेकं ज्योत्स्नामृतमित्यर्थः। आम्लरुचयः आम्ले अम्लरसे रुचिर्वाञ्छा येषां ते आम्लरुचयः, पिबन्ति भक्षयन्ति। स्वच्छन्दं यथेच्छं, निशिनिशि प्रतिनिशं ज्योत्स्नास्विति शेषः। भृशं अत्यर्थं, काञ्जिकधिया आरनालभ्रान्त्या॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! तव वदनचन्द्रस्य स्मितज्योत्स्नाजालं पिबतां चकोराणां अतिरसतया चञ्चुजडिमा आसीत्, अतस्ते आम्लरुचयः शीतांशोरमृतलहरीं काञ्जिकधिया स्वच्छन्दं निशिनिशि भृशं पिबन्ति॥

अत्र अतिशयोक्तिरलङ्कारः, चञ्चुजडिमनिबन्धनज्योत्स्नापानासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धकथनात्, अतिमधुरस्तन्यपानप्रसक्तजिह्वाजाड्यनिबन्धनाम्लपिपासुभिः बालकैरभेदाध्यवसानस्य प्रतीतेः॥ ६३॥

**अविश्रान्तं पत्युर्गुणगणकथाम्रेडनजपा**
**जपापुष्पच्छाया तव जननि जिह्वा जयति सा।**
**यदग्रासीनायाः स्फटिकदृषदच्छच्छविमयी**
**सरस्वत्या मूर्तिः परिणमति माणिक्यवपुषा॥**

अविश्रान्तं अनारतं, पत्युः सदाशिवस्य, गुणगणकथाम्रेडनजपा गुणानां त्रिपुरविजयादीनां गणः समूहः तस्य कथा वृत्तान्तः तस्या आम्रेडनं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**त्रिविलक्ति:** तदेव जपो यस्यास्सा अनन्यमनस्केत्यर्थः । **जपापुष्पच्छाया** जपा पुष्पं रक्तपुष्पीपुष्पं तस्य छायेव छाया कान्तिः यस्यास्सा । **तव जननि!** हे मातः! **जिह्वा** रसना, **जयति** स्फुरति । **सा** तच्छब्दो वर्तिष्यमाणां प्रसिद्धि परामृशति । **यदग्रासीनायाः** यस्या जिह्वायाः अग्रे आसीनायाः निषण्णायाः **स्फटिकदृषदच्छच्छविमयी** स्फटिकदृषदः स्फटिकोपलस्येव अच्छा छविः कान्तिः तया प्रचुरा । प्राचुर्यार्थे मयट् । स्फटिकधवलेत्यर्थः । **सरस्वत्याः** भारत्याः **मूर्तिः** स्वरूपं, **परिणमति** विकारमापद्यते, रूपान्तरं प्राप्नोतीति यावत् । **माणिक्यवपुषा** पद्मरागवपुषा ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे जननि! तव सा जिह्वा अविश्रान्तं पत्युः गुणगणकथाम्रेडनजपा जपापुष्पच्छाया जयति, यदग्रासीनायाः सरस्वत्याः स्फटिकदृषदच्छच्छविमयी मूर्तिः माणिक्यवपुषा परिणमति । जिह्वायां रक्तत्वमात्रं न भवति । तटस्थानां रक्तीकरणे रक्तिम्नः शक्तिरपि । अत एव जयतीति प्रयुक्तम् ॥

तद्गुणालङ्कारः, 'तद्गुणस्स्वगुणत्यागादन्योत्कृष्टगुणाहृतिः' इति लक्षणात् । देव्याः वदनाम्बुजे सर्वदा सरस्वती स्वमूर्त्या वसतीत्यागमरहस्यम् ॥६४॥

रणे जित्वा दैत्यानपहृतशिरस्त्रैः कवचिभिः
निवृत्तैश्चण्डांशत्रिपुरहरनिर्माल्यविमुखैः ।
विशाखेन्द्रोपेन्द्रैश्शशिविशदकर्पूरशकलाः
विलीयन्ते मातस्तव वदनताम्बूलकबलाः ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**रणे** युद्धे, **जित्वा** पराजितान् कृत्वा, **दैत्यान् अपहृतशिरस्त्रैः*** **कवचिभिः** वर्मयुक्तैः, **निवृत्तैः** युद्धान्निवृत्तैः, **चण्डांशत्रिपुरहरनिर्माल्यविमुखैः** चण्डांशः चण्डभागः चण्डो नाम प्रमथः तस्य भागः स एव त्रिपुरहरस्य निर्माल्यं स्वीकृतावशिष्टं गन्धताम्बूलादि तत्र विमुखैः। 'हरनिर्माल्यं परित्याज्यम्' इत्यादिस्मृतयः चण्डांशरूपहरनिर्माल्य[1]निषेधपरा इत्यवगन्तव्यमिति बोधयन्ति। **विशाखेन्द्रोपेन्द्रैः** विशाखः सेनानीः, युद्धेषु तस्यैव प्रामुख्यमित्यग्रे गणना, इन्द्रो महेन्द्रः उपेन्द्रः विष्णुः तैः **शशिविशदकर्पूरशकलाः** चन्द्रवद्विशदाः कर्पूरशकलाः घनसारखण्डाः येषां ते। **विलीयन्ते** विलयनं क्रियन्ते। **मातः**! हे जननि! **तव वदनताम्बूलकबलाः** वदननिर्गतास्ताम्बूलकबलाः॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे मातः! रणे दैत्यान् जित्वा अपहृतशिरस्त्रैः कवचिभिः निवृत्तैः चण्डांशत्रिपुरहरनिर्माल्यविमुखैः विशाखेन्द्रोपेन्द्रैः शशिविशदकर्पूरशकलाः तव वदनताम्बूलकबलाः विलीयन्ते॥

अयमर्थः—विशाखेन्द्रोपेन्द्राः दैत्यान् संहृत्य भगवत्याः कुमारं पुरस्कृत्य पादवन्दनार्थमागत्य शिरस्त्राण्यपहाय पादोपसङ्ग्रहणमकुर्वन्। तदनन्तरं प्रसन्ना भगवती ईषत्खादितान् ताम्बूलकबलान् वितताार। तद्गतकर्पूरशकलविलयनपर्यन्तं खादितवन्तः इत्युक्त्या एतादृशोऽनुग्रहः भगवत्याः कुमारस्वामिन्येव। इन्द्रादिष्वपि क्वाचित्क इत्यभिप्रायः॥ ६५॥

---

*अपहृतानि शिरोवेष्टनानि यैस्तैः स्वामिकार्यनिर्वर्तनानन्तरं सेवकानां राजसंमुखे प्रणामवेलायां उष्णीषशिरस्त्रादिकं निर्मुच्य प्रणामः कर्तव्य इति परिपाटी; तां परिपाटीमाश्रित्याह—अपहृतशिरस्त्रैरिति॥

[1] विशेषपरा.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**विपञ्च्या गायन्ती विविधमपदानं पशुपतेः**
**त्वयाऽऽरब्धे वक्तुं चलितशिरसा साधुवचने।**
**तदीयैर्माधुर्यैरपलपिततन्त्रीकलरवां**
**निजां वीणां वाणी निचुलयति चोलेन नि-**
**[भृतम् ॥ ६६ ॥**

**विपञ्च्या** वीणया, **गायन्ती** गानं कुर्वन्ती, **विविधं** अनेकप्रकारं त्रिपुरविजयदक्षयागध्वंसहालाहलधारणजलन्धरवधगजासुरवधादिकं, **अपदानं** वृत्तं कर्म, **पशुपतेः** ईश्वरस्य, **त्वया** भवत्या, **आरब्धे** उपक्रान्ते सति, **वक्तुं** निगदितुं, **चलितशिरसा** अन्तस्सन्तोषवशात् स्वयं शिरःकम्पवत्या, **साधुवचने** मधुरवचने, **तदीयैः** तस्य वचनस्य सम्बन्धिभिः, **माधुर्यैः** माधुर्यगुणैः **अपलपिततन्त्रीकलरवां** अपलपिता अपहसिताः स्वकीयतन्त्रीकलरवाः यस्याः सा तां **निजां** स्वकीयां, **वीणां** विपञ्चीं, **वाणी** भारती, **निचुलयति** निचुलवतीं करोति। निचुलः कूर्पासः। **चोलेन** चोलः कूर्पासविशेषः वीणाकूर्पासः। चोलेन निचुलवतीं करोतीति सामान्यविशेषभावे, न पौनरुक्त्यम्। केचित्तु भोजमतावलम्बिन आहुः—चुलिधातुः तिरोधानवाचक इति। नितरां चुलयति आच्छादयतीत्यर्थः। **निभृतं** गूढं यथा भवति तथा ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! पशुपतेः विविधं अपदानं विपञ्च्या गायन्ती त्वया वक्तुं चलितशिरसा साधुवचने आरब्धे सति तदीयैः माधुर्यैः अपलपिततन्त्रीकलरवां निजां वीणां वाणी चोलेन निभृतं निचुलयति ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्रातिशयोक्तिरलङ्कारः, वीणायाः निचोलनासम्बन्धेऽपि सम्बन्धकथनात्, यः पराजितो वैणिकः स्ववीणां चोलेन निचुलयति तेन सहाभेदाध्यवसायप्रतीतेः ॥ ६६ ॥

करग्रेण स्पृष्टं तुहिनगिरिणा वत्सलतया
गिरीशेनोदस्तं मुहुरधरपानाकुलतया ।
करग्राह्यं शम्भोर्मुखमुकुरवृन्तं गिरिसुते
कथंकारं ब्रूमस्तव चुबुकमौपम्यरहितम् ॥६७

करग्रेण अग्रकरेण, स्पृष्टं संमृष्टं, तुहिनगिरिणा हिमाद्रिणा जनकेन, वत्सलतया वात्सल्येन पित्रादीनां पुत्रादिषु प्रीतिः वात्सल्यशब्देनोच्यते। यथोक्तं सर्वज्ञसोमेश्वरेण—"पुत्रादौ वात्सल्यं, पत्न्यादौ प्रेम, शिष्यादावनुग्रहः, अग्रजादौ भक्तिः । अत्र आदिशब्देन गौणपुत्रगौणपत्नीगौणशिष्यगौणाग्रजाः गृह्यन्ते" इति। गौणपुत्रः पुत्रत्वेन कल्पितसम्बन्धः न तु क्रीतादिः, तस्य पुत्रत्वात्। गौणपत्नी भुजिष्या। गौणशिष्यःशिष्यत्वेन कल्पितसम्बन्ध एव न तु स्वीकृतमन्त्रग्रहणमात्रः। गौणाग्रजः कल्पितसम्बन्धः न तु क्षेत्रजादिः । गिरीशेन शम्भुना, उदस्तं उन्नमितं, मुहुः अत्यर्थं, अधरपानाकुलतया अधरपानव्यग्रतया अतिप्रेम्णेत्यर्थः। करग्राह्यं करेण गृहीतुं योग्यं मुखावलोकनचुम्बनव्यग्रतया, शम्भोः मुखमुकुरवृन्तं मुखमेव मुकुरो दर्पणः तस्य वृन्तं तदाधारदण्डः तं गिरिसुते! हिमाद्रितनये! कथंकारं कथंकृत्वा ब्रूमः वर्णयामः। 'विभाषा कथमि लिङ्च इति लिङर्थे संप्रधारणायां लट्। तव भवत्याः, चुबुकं अधराधःकर्णिकां, औपम्यरहितं उपमारहितम्। उपमाराहित्यं तु कमलकर्णिकादर्पणवृन्तोदया-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



द्रिशिखरशिलादीनां, शम्भुहिमगिरिकरोपलालनाजनितसौभाग्यातिशयाभावेन भगवतीचुबुकस्य तुलना नास्तीति ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे हिमगिरिसुते । तुहिनगिरिणा वत्सलतया कराग्रेण स्पृष्टं गिरीशेन अधरपानाकुलतया मुहुरुदस्तं शम्भोः करग्राह्यं औपम्यरहित तव मुखमुकुरवृन्तं चुबुकं कथंकारं ब्रूम इति ॥

अत्रानन्वयालङ्कारो ध्वन्यते, सर्वोपमानिषेधेन स्वस्य स्वयमेव सदृशभत्यनन्वयालङ्कारप्रतीतेः ॥ ६७ ॥

भुजाश्लेषान्नित्यं पुरदमयितुः कण्टकवती
तव ग्रीवा धत्ते मुखकमलनालश्रियमियम् ।
स्वतश्श्वेता कालागुरुबहुलजम्बालमलिना
मृणालीलालित्यं वहति यदधो हारलतिका ॥

भुजाश्लेषात् भुजाभ्यामालिङ्गनात्, नित्यं सततं, पुरदमयितुः पुरान्तकस्य, कण्टकवती सरोमाञ्चा, तव ग्रीवा कण्ठनालः, धत्ते दधति, मुखकमलनालश्रियं मुखमेव कमलं तस्य नालश्रियं दण्डसौभाग्यं, इयं ग्रीवा, स्वतः श्वेता स्वभावतः स्वच्छा, कालागुरुबहुलजम्बालमलिना कालो नीलवर्णः अगुरुः लघुकाष्ठं कृष्णागुरुरित्यर्थः तस्य बहुलः समृद्धः जम्बालः पङ्कः तेन मलिना मलीमसा, मृणालीलालित्यं बिसलतासौभाग्यं, वहति प्राप्नोति । यत् यस्मात्कारणात्, अधः अधःप्रदेशे, हारलतिका मुक्तावलिः ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति ! तवेयं ग्रीवा पुरदमयितुः भुजाश्लेषात् नित्यं कण्टकवती मुखकमलनालश्रियं धत्ते, यत् अधः स्वतः श्वेता कालागुरुबहुलजम्बालमलिना हारलतिका मृणालीलालित्यं वहति ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



पूर्वार्धे निदर्शनालङ्कारः, मुखकमलनालश्रियमित्यत्र श्रीसदृशी श्रीरिति प्रतिबिम्बाक्षेपात् । रूपकमप्यलङ्कारः, मुखकमलमित्यत्र मुखे कमलत्वरूपणात् । अनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । उत्तरार्धेऽपि निदर्शनालङ्कारः, मृणालीलालित्यमित्यत्र लालित्यंसदृशलालित्यमिति प्रतिबिम्बाक्षेपात् । उभयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ॥ ६८ ॥

**गले रेखास्तिस्रो गतिगमकगीतैकनिपुणे**
**विवाहव्यानद्धप्रगुणगुणसंख्याप्रतिभुवः ।**
**विराजन्ते नानाविधमधुररागाकरभुवां**
**त्रयाणां ग्रामाणां स्थितिनियमसीमान इव ते ॥**

गले कण्ठप्रदेशे, रेखाः भाग्यरेखाः, वलीरूपाः तिस्रः—

ललाटे च गले चैव मध्ये चापि वलित्रयम् ।
स्त्रीपुंसयोरिदं ज्ञेयं महासौभाग्यसूचकम् ॥

इति सामुद्रिकम् । गतिगमकगीतैकनिपुणे ! गतिः सङ्गीतगतिः सङ्गीतस्य द्वे गती मार्गो देशी चेति । गमकः स्वरस्य कम्पः—

स्वरस्य गमकः कम्पस्स च पञ्चविधस्स्मृतः ।

इति भरते । ते च पञ्चप्रकारास्तत्रैव ज्ञातव्याः । गीतं धातुमात्वात्मकं द्विविधम् ।

वाङ्मातुरुच्यते गेयं धातुरित्यभिधीयते । इति ॥

तत्र एका मुख्या चासौ निपुणा च तस्यास्सम्बुद्धिः । विवाहव्यानद्धप्रगुणगुणसङ्ख्याप्रतिभुवः विवाहे उद्वाहसमये व्यानद्धाः विशेषेण मङ्गलसूत्रबन्धनानन्तरं तत्समीपे आ समन्तात् कण्ठं कृत्स्नमावृत्य नद्धाः बद्धाः प्रगुणगुणाः बहुतन्तुनिर्मितसूत्राणि । तानि त्रीण्येव, यथोक्तं गृह्यकारैः—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



माङ्गल्यतन्तुनानेन बध्वा मङ्गलसूत्रकम् ।
वामहस्ते सरं बध्वा कण्ठे च त्रिसरं तथा ॥ इति ।

इदं चानुष्ठानं देशतो व्यवस्थापितम् । अत एव कचिद्देशे मङ्गलसूत्रबन्धनं कचिद्देशे सरत्रयबन्धनं च कचिदुभयमपि नास्तीति । अस्य मतं सर्वत्रास्तीति । यद्वा—ग्रन्थकृतो देशे एतदुभयानुष्ठानं विद्यत एवेति ज्ञेयम् । प्रगुणगुणानां सङ्ख्या त्रित्वं तस्याः प्रतिभुवः । यथा प्रतिभूः उत्तमर्णस्य अधमर्णं ज्ञापयति एवं सङ्ख्यां ज्ञापयतीति प्रतिभुव इत्युक्तम् । सङ्ख्याज्ञापकाः अस्मदाश्रयकण्ठे शम्भुना पूर्वं भगवत्याः विवाहसमये सरत्रयमस्मिन् स्थले बद्धमिति द्रष्टॄणां ज्ञापयति वलित्रयमिति भावः । विराजन्ते अतितरां प्रकाशन्ते । नानाविधमधुररागाकरभुवां नानाविधाः अनेकप्रकाराः मधुराः मनोरमाः रागाः तेषामाकरभुवः [1]खनिस्थानानि आश्रयभूताः तेषाम् ॥

अयमर्थः—[2]गीतयः पञ्च, तदुत्थाः ग्रामरागाः त्रिंशत्, उपरागाः अष्टौ, रागास्तु विंशतिः, जनकरागाः पञ्चदश, भाषारागाः षण्णवतिः, विभाषारागाः विंशतिः, आन्तरा भाषाश्च त्रयः इत्यादिकं रागाध्यायप्रतिपाद्यमत्रावगन्तव्यम् । ते च रागाः प्रसिद्धाः, मध्यमावतीमाळवीश्रीभैरविवङ्गाळीवसन्ताधन्यासीदेश्यादिकं रागाङ्गम् । वेळावतीशुद्धवराळीपुन्नागवराळीनाट्यादिकं भाषाङ्गम् । रामक्रियादिकं क्रियाङ्गम् । प्रवीश्री*घूर्जरीवराळीमलहरीप्रमुखं उपाङ्गं[3] च रागशब्देन सङ्गृहीतं इत्युक्तं नानाविधमधुररागाकरभुवां इति । त्रयाणां ग्रामाणां ग्रामशब्दः समूहवाचकः सर्वे स्वराः त्रेधा संहताः षड्जग्रामो मध्यमग्रामो गान्धारग्राम इति त्रेधा स्वरसंहतिः । तत्र भूलोके ग्रामद्वयस्यैव प्रसरः । सप्तस्वराणामारोहावरोहक्रमेण मूर्छनाश्रयत्वम् । तच्च मन्द्रमध्यतारात्मना त्रेधा भवति । गान्धारग्रामस्य शिरस्थानत्वान्मन्द्रादिक्रमेणोपक्रमासम्भवात् गान्धारग्रामो देवलोके प्रसृतः । यथोक्तं शार्ङ्गदेवेन—

---

*द्रविडी. [1] स्वरस्थानानि. [2] गतयः [3] उपरागम्.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



ग्रामस्स्वरसमूहस्स्यान्मूर्छनादेस्समाश्रयः ।
तौ द्वौ धरातले स्यातां षड्जग्रामस्त[1]थादिमः ॥
द्वितीयो मध्यमग्रामः तयोर्लक्षणमुच्यते ।
क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम् ॥
मूर्छनेत्युच्यते ग्रामद्वये तास्सप्त सप्त च ॥ इति ॥

एताः मूर्छनाः शुद्धतानाः इत्युच्यन्ते । अतश्च भगवत्याः कण्ठवलित्रयवर्णनायां ग्रामत्रयकथनं देवलोकव्यवहाराद्युज्यत इत्यनुसन्धेयम् । तेषां ग्रामाणां **स्थितिनियमसीमानः** स्थितेः अवस्थानस्य नियमार्थं परस्परं ग्रामाणां सङ्करो मा भूदिति तेषामन्ते रचिताः सीमानः सेतव इव ते तव ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! गतिगमकगीतैकनिपुणे! ते गले तिस्रो रेखाः विवाहव्यानद्धप्रगुणगुणसङ्ख्याप्रतिभुवः नानाविधमधुररागाकरभुवां त्रयाणां ग्रामाणां स्थितिनियमसीमान इव विराजन्ते ॥

पूर्वार्धे अनुमानालङ्कारः, रेखागतत्रित्वस्य मङ्गलसरत्रित्वानुमापकत्वात् । अनुमानस्य विच्छित्त्यात्मकत्वं लौकिकालङ्कारवैलक्षण्यादेव । तद्वैलक्षण्यं च पक्षधर्मतामात्रात् व्याप्त्यभाव एव, उभयसद्भावे लौकिकमेव स्यादिति रहस्यम् । विच्छित्तिरलौकिकी शोभा । उत्तरार्धे उत्प्रेक्षालङ्कारः, भगवत्याः कण्ठमध्यवर्तिस्वरग्रामत्रितयहेतुचिह्नतयां वलित्रयस्य सम्भावनात् ॥ ६९ ॥

**मृणालीमृद्वीनां तव भुजलतानां चतसृणां**
**चतुर्भिस्सौन्दर्यं सरसिजभवस्स्तौति वदनैः ।**
**नखेभ्यस्संत्रस्यन् प्रथममथनादन्धकरिपोः**
**चतुर्णां शीर्षाणां सममभयहस्तार्पणधिया ॥**

---

[1] तदादिमः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



मृणाली बिसलता तद्वत् मृद्वीनां मृदूनां, 'वोतो गुणवचनात्' इति ङीप्। तव भवत्याः, भुजलतानां बाहुलतानां चतसृणां चतुर्भिः सौन्दर्यं सौभाग्यं, सरसिजभवो ब्रह्मा, स्तौति प्रस्तौति। वदनैः वक्त्रैः, नखेभ्यः करजेभ्यः सकाशात्, संत्रस्यन् बिभ्यत् 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' इत्यपादाने पञ्चमी। प्रथममथनात् पूर्वं मर्दितवतः। कर्तरि ल्युट्। यदाह वृत्तिकारः- 'वोतो गुणवचनात्' इत्यत्र 'गुणमुक्तवान् गुणवचनः' इति।

ब्रह्मणः पञ्चमशिरः नखाग्रेणाच्छिनद्धरः।

इति पुराणम्। तस्मात् प्रथममथनात्, अन्धकरिपोः सदाशिवस्य, चतुर्णां शीर्षाणां शिरसां, समं सकृदेव, अभयहस्तार्पणधिया अभयहस्तान्ग्रहीतुकाम इत्यर्थः॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! तव मृणालीमृद्वीनां चतसृणां भुजलतानां सौन्दर्यं सरसिजभवः चतुर्भिर्वदनैः प्रथममथनात् अन्धकरिपोः नखेभ्यः संत्रस्यन् समं चतुर्णां शीर्षाणां अभयहस्तार्पणधिया स्तौति॥

काव्यलिङ्गमलङ्कारः, ब्रह्मैकनियतस्तोत्रस्य नखेभ्यस्संत्रस्यन् इत्यादिना समर्थनात्। वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमिति ध्येयम्। भुजलतावर्णने ब्रह्मण एवाधिकारो नान्येषामिति काव्यलिङ्गेन ध्वन्यते वस्त्विति अलङ्कारेण वस्तुध्वनिः॥ ७०॥

नखानामुद्योतैर्नवनलिनरागं विहसता
करणां ते कान्तिं कथय कथयामः कथमुमे।
कयाचिद्वा साम्यं भजतु कलया हन्त कमलं
यदि क्रीडल्लक्ष्मीचरणतललाक्षारसचणम्॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



नखानां नखराणां, उद्योतैः प्रभापटलैः, नवनलिनरागं प्रातर्विकसिताम्बुजकान्तिं, विहसतां अपलपतां, कराणां हस्तानां, ते तव, कान्तिं शोभां, कथय वद, कथयामः काव्यप्रबन्धं रचयामः, कथं केन प्रकारेण, उमे ! पार्वति ! कयाचिद्वा विधया । वेत्यसंशये संशयोक्तिः । केनापि प्रकारेण नास्तीत्यर्थः । साम्यं सादृश्यं, भजतु स्वीकरोतु कलया लेशेनापि, हन्त ! वाक्यारम्भे—

हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः ।

इत्यमरः । कमलं पद्मम्, यदि संशये, तथापि सन्देह इत्यर्थः । क्रीडल्लक्ष्मीचरणतललाक्षारसचणं क्रीडन्त्याः लक्ष्म्याः पद्मालयायाः चरणतलयोः लाक्षारसेन चणं वित्तं युक्तम् । 'तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ' इति चणप् ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे उमे ! नखानामुद्योतैः नवनलिनरागं विहसतां ते कराणां कान्तिं कथं कथयामः कथय, कमलं कलयापि साम्यं कयाचिद्वा भजतु । हन्त कमलं क्रीडल्लक्ष्मीचरणतललाक्षारसचणं यदि तदा हि साम्यं भजत्विति । यद्वा कयाचिद्वा साम्यं भजतु विधयेति पाठः । तदा हन्त ! कमलं कयाचिद्वा विधया साम्यं भजतु प्राप्नोतु इत्यन्वयः । तामेव विधामाह—यदि क्रीडल्लक्ष्मीचरणतललाक्षारसचणं तदा नान्यथेत्येकवाक्यतया अन्वयः ॥

अत्रातिशयोक्तिरलङ्कारः, यद्यर्थोक्त्याऽतिशयकल्पनात् । पूर्वार्धे तद्गुणालङ्कारः, नखकान्तिभिरतिरक्तत्वात् कराणाम् । नवनलिनरागं विहसतामित्यत्र उपमालङ्कारः । उभयोस्संसृष्टिः, अपृथक्स्थित्या प्रयोजकत्वात् उभयोस्संसृष्टिः ॥ ७१ ॥

**समं देवि स्कन्दद्विपवदनपीतं स्तनयुगं**
**तवेदं नः खेदं हरतु सततं प्रस्नुतमुखम् ।**



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



यदालोक्याशङ्काकुलितहृदयो हासजनकः
स्वकुम्भौ हेरम्बः परिमृशति हस्तेन झडिति ॥

समं तुल्यकालं देवि! भगवति! स्कन्दद्विपवदनपीतं स्कन्दः कुमारः द्विपवदनो विनायकः ताभ्यां पीतं, स्तनयुगं कुचद्वन्द्वं, तव भवत्याः, इदं नः अस्माकं, खेदं क्लेशं, हरतु अपनुदतु। सततं सर्वदा प्रस्नुतमुखं क्षीरस्रावियुखम्, यत् कुचद्वन्द्वं, आलोक्य विलोक्य, आशङ्काकुलितहृदयः आशङ्कायाः मदीयौ कुम्भौ अपहृतवतीत्याशङ्कायाः आकुलितं अवस्कन्दितं व्यग्रतरमित्यर्थः, तादृशं हृदयं मनो यस्य, हासजनकः मातापित्रोः (कुमारस्य च)। असौ बालिश इति प्रेम्णा हसितवन्तावित्यर्थः। स्वस्य कुम्भौ कुम्भस्थले, हेरम्बः विनायकः, परिमृशति परामृशति। विद्यते न वेति हस्तेन निमार्ष्टीत्यर्थः। झडिति शीघ्रम् ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे देवि! तव समं स्कन्दद्विपवदनपीतं इदं स्तनयुगं प्रस्नुतमुखं नः खेदं सततं हरतु, यत् आलोक्य आशङ्काकुलितहृदयः हेरम्बः हासजनकः हस्तेन झडिति स्वकुम्भौ परिमृशति ॥

यस्याः पुत्रौ जगत्पूज्यपादौ विनायककुमारस्वामिनाविति देव्यास्सर्वातिशायि माहात्म्यं इति प्रतीयते। देव्याः कुचकुम्भसाम्यं यदि स्यात्तदा विनायककुम्भयोरेव तौल्यमित्यतिशयोक्तिरपि प्रतीयते। विनायकः हस्तेन परिमृशतीत्यनेन विनायककुम्भयोस्तुल्यौ देवीकुचावेवेति उपमेयोपमापि ध्वन्यते। वस्त्वलङ्कारध्वनीनां एकव्यञ्जकानुप्रवेशेन सङ्करः ॥ ७२ ॥

अमू ते वक्षोजावमृतरसमाणिक्यकुतुपौ
न संदेहस्पन्दो नगपतिपताके मनसि नः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**पिबन्तौ तौ यस्मादविदितवधूसङ्गरसिकौ**
**कुमारावद्यापि द्विरदवदनक्रौञ्चदलनौ ॥७३॥**

अमू परिदृश्यमानौ, ते तव, वक्षोजौ कुचौ, **अमृतरसमाणिक्यकुतुपौ** अमृतरसस्य माणिक्यकुतुपौ अमृतरसपूरितमाणिक्यकुतुपावित्यर्थः । कुतुपशब्दो यद्यपि चर्मनिर्मितघृततैलाद्याधारभूतघटसन्निभपात्रीवाचकः तथापि तस्याः भगवतीस्तनसादृश्यावगाहने अनधिकारात् तदर्थं माणिक्यरचितत्वमङ्गीकृतं कुतुपयोः । **न सन्देहस्पन्दः** सन्देहस्य स्पन्दनं लेशमात्रमिति यावत् । **नगपतिपताके! मनसि नः** अस्माकं, **पिबन्तौ तौ** माणिक्यकुतुपौ, **यस्मात्** कारणात्, **अविदितवधूसङ्गरसिकौ कुमारौ** शिशू भूत्वा, **अद्यापि** इदानीमपि श्लोकरचनाकालेऽपि, **द्विरदवदनक्रौञ्चदलनौ** द्विरदवदनो विनायकः क्रौञ्चदलनः क्रौञ्चाद्रिभेदनः कुमारस्वामी तौ ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे नगपतिपताके! अमू ते वक्षोजौ अमृतरसमाणिक्यकुतुपौ । अस्मिन्नर्थे नः मनसि सन्देहस्पन्दो नास्ति । यस्मात्तौ पिबन्तौ अविदितवधूसङ्गरसिकौ द्विरदवदनक्रौञ्चदलनौ अद्यापि कुमारौ भवतः ॥

अत्र वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः स्पष्ट एव । पूर्वपादे रूपकं, वक्षोजयोः कुतुपत्वेनारोपणात् । यद्वा—निश्चयान्तस्सन्देहः इमौ वक्षोजौ उत कुतुपाविति सन्देहे कुतुपावेवेति निश्चयः, यतोऽमृतपानात् कुमारयोश्शिशुत्वम् । स्तन्यपानमात्रात् शिशुत्वावस्थैवेति नियमो नास्ति, शैशवानन्तरं यौवनादेर[1]नुभूतत्वादिति । विनायककुमारयोस्तु सर्वदा शिशुत्वं अमृतपानवशादेवेति अमृतरसकुतुपसन्देहापनयने साधकं प्रमाणं द्वितीयार्धप्रमेयमिति

---

[1] अनुभाव्यत्वादिति.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



सूक्तं निश्चयान्तस्सन्देह इति । 'कविकल्पितकोटिद्वयस्यावाच्यत्वं नास्ति' इति मधुकः ॥ ७३ ॥

वहत्यम्ब स्तम्बेरमदनुजकुम्भप्रकृतिभिः
समारब्धां मुक्तामणिभिरमलां हारलतिकाम् ।
कुचाभोगो बिम्बाधररुचिभिरन्तश्शबलितां
प्रतापव्यामिश्रां पुरदमयितुः कीर्तिमिव ते ॥ ७४

वहति दधति । अम्ब! मातः! स्तम्बेरमदनुजकुम्भप्रकृतिभिः स्तम्बेरमदनुजः गजासुरः तस्य कुम्भस्थलमेव प्रकृतिः जन्मभूमिः येषां तैः । गजकुम्भेषु मुक्तामणय उद्भवन्ति । यथोक्तं सर्वज्ञसोमेश्वरेण—

गजकुम्भेषु वंशेषु फणासु जलदेषु च ।
शुक्तिकायामिक्षुदण्डे षोढा मौक्तिकसम्भवः ॥
गजकुम्भे कर्बुराभाः वंशे रक्तसितास्स्मृताः ।
फणासु वासुकेरेव नीलवर्णाः प्रकीर्तिताः ॥
ज्योतिर्वर्णास्तु जलदे शुक्तिकायां सितास्स्मृताः ।
इक्षुदण्डे पीतवर्णाः मणयो मौक्तिकास्स्मृताः ॥ इति ।

गजकुम्भप्रकृतयो मौक्तिकमणयः कर्बुरवर्णाः, गजासुरकुम्भप्रकृतयस्तु विशेषत एवेति भावः । समारब्धां रचितां, मुक्तामणिभिः मौक्तिकैः, अमलां त्रासादिदोषरहितां न तु श्वेतां, गजकुम्भोद्भवानां कर्बुरत्वात् । हारलतिकां मुक्तावलिं, कुचाभोगः कुचमध्यप्रदेशः, बिम्बाधररुचिभिः बिम्बाकारोऽधरो बिम्बाधरः । शाकपार्थिवादित्वात्साधुः । बिम्बाधरस्य अधरबिम्बस्येव रुचिभिः, अन्तश्शबलितां सञ्जातचित्रवर्णाम्—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



चित्रकिर्मीरकल्माषशबलैताश्च कर्बुरे ।

इत्यमरः । अधरकान्तिसंवलिता शुक्तिमुक्तामणिमालिकेव भातीति भावः । प्रतापव्यामिश्रां पुरदमयितुः त्रिपुरान्तकस्य, कीर्तिमिव ते तव । प्रतापस्तु रक्तवर्णः कीर्तिस्तु श्वेतवर्णेति महाकविप्रसिद्धिः । अत एवास्य कवेः गजकुम्भोद्भवाः मणयः पाटलवर्णाः न शबलवर्णाः, अन्तरशबलितमित्युक्तिरपि पाटलवर्णपरेत्यभिप्राय इत्यनुसन्धेयम् ॥

अत्रेत्थं पद्योजना—हे अम्ब ! ते कुचाभोगः स्तम्बेरमदनुजकुम्भप्रकृतिभिः मुक्तामणिभिः समारब्धां अमलां हारलतिकां बिम्बाधररुचिभिः अन्तरशबलितां प्रतापव्यामिश्रां पुरदमयितुः कीर्तिमिव वहति ॥

अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः, हारलतिकायाः प्रतापसंवलितकीर्तित्वेन संभावनात् । बिम्बाधररुचिभिरित्यत्र उत्प्रेक्षा, स्वभावतो रक्तवर्णेषु बिम्बाधररुचिभिः संवलनादिवेति हेतोरुत्प्रेक्षणात् । उभयोरनुप्राण्यानुप्राणकभावेन सम्बन्धः, अपृथक्स्थित्या उपकारकत्वात् ॥ ७४ ॥

**तव स्तन्यं मन्ये धरणिधरकन्ये हृदयतः**
**पयःपारावारः परिवहति सारस्वतमिव ।**
**दयावत्या दत्तं द्रविडशिशुरास्वाद्य तव यत्**
**कवीनां प्रौढानामजनि कमनीयः कवयिता ॥**

तव स्तन्यं स्तनोद्भवं क्षीरं, मन्ये जानामि । [1]धरणिधरकन्ये ! हृदयतः हृदयात्, पयःपारावारः क्षीरसमुद्रः । सुधाधारासारः इति वा पाठः । सुधायाः धाराणामासारः, सुधाप्रवाहः परिवहति सारस्वतं सरस्वती-

[1] तुहिनगिरिकन्ये.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



मयमिव, स्तन्यस्य श्वेतवर्णत्वात् सरस्वतीमयत्वेनोत्प्रेक्षणम्, माधुर्यात्सुधारूपत्वेन च। दयावत्या प्रशस्तकृपायुक्तया, दत्तं स्तन्यं, द्रविलशिशुः द्रविलजातिसमुद्भवः बालः एतत्स्तोत्रकर्ता, आस्वाद्य पीत्वा, तव यत् कारणात्, कवीनां कवीश्वराणां, प्रौढानां प्रगल्भानां मध्ये इति निर्धारणे षष्ठी। अजनि जातः। कमनीयः अतिरमणीयः, कवयिता कविः॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे धरणिधरकन्ये! तव स्तन्यं हृदयतः उत्थितः सुधाधारासारः पयःपारावारः सारस्वतमिव परिवहतीति मन्ये। यद्यस्मात् दयावत्या त्वया दत्तं तव स्तन्यं द्रविलशिशुरास्वाद्य प्रौढानां कवीनां मध्ये कमनीयः कवयिता अजनि॥

अत्रोत्प्रेक्षाद्वयं पदव्याख्यानावसरे कथितम्। उभयोस्संसृष्टिः॥ ७५॥

हरक्रोधज्वालावलिभिरवलीढेन वपुषा
गभीरे ते नाभीसरसि कृतसङ्गो मनसिजः।
समुत्तस्थौ तस्मादचलतनये धूमलतिका
जनस्तां जानीते तव जननि रोमावलिरिति॥

हरस्य [1]क्रोधज्वालावलिभिः अवलीढेन आविष्टेन, वपुषा गभीरे निम्ने, अत एव ते तव, नाभीसरसि नाभ्येव सरः तस्मिन्, कृतसङ्गो मनसिजः मन्मथः, तत्र निमग्न इत्यर्थः। समुत्तस्थौ उदभूत्। तस्मात् नाभीसरसः, अचलतनये! पार्वति! धूमलतिका धूमावलिः, अङ्गारप्रशमसमयोद्भवा। जनः लोकः, तां धूमलतिकां जानीते वर्णयति। जननि! मातः! तव रोमावलिरिति रोमराजिरिति॥

---

[1]क्रोधाग्नेः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्रेत्थं पदयोजना—हे अचलतनये ! मनसिजः हरक्रोधज्वालावलिभिः अवलीढेन वपुषा गभीरे ते नाभीसरसि कृतसङ्गः । तस्माद्धूमलतिका समुत्तस्थौ । हे जननि ! तां जनः तव रोमावलिरिति जानीते ॥

अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः, रोमराजेः धूमलतिकात्वेनोत्प्रेक्षणात् । यद्वा जनस्तां जानीते इत्यनेन भ्रान्तिमान् प्रतीयते, रोमरेखादर्शनस्य धूमरेखाभ्रान्तिजनकत्वात् । यद्वा—अतिशयोक्तिः जनस्तां रोमावल्मिध्यवस्यतीति प्रतीतेः । यद्वा—निश्चयान्तसन्देहः, तां रोमावलिरिति निश्चिनोतीति । एवं चतुर्णामलङ्काराणां जानीते इति पदादुत्थानात् एकवाचकानुप्रवेशेन सङ्करः ॥ ७६ ॥

**यदेतत्कालिन्दीतनुतरतरङ्गाकृति शिवे**
**कृशे मध्ये किञ्चिज्जननि तव यद्भाति सुधियाम् ।**
**विमर्दादन्योन्यं कुचकलशयोरन्तरगतं**
**तनूभूतं व्योम प्रविशदिव नाभिं कुहरिणीम् ॥**

यदेतत् पुरः स्फुरत् । यच्छब्दस्य एतच्छब्दसहचरितस्य प्रसिद्धिवाचकत्वं नास्ति । अत एव पुनर्यच्छब्दोपादानम् । कालिन्दीतनुतरतरङ्गाकृति. कालिन्द्याः यमुनायाः तनुतरतरङ्गः अतिसूक्ष्मतरङ्गः तस्याकृतिरिव आकृतिर्यस्य तत् । शिवे ! भगवति ! कृशे तनुनि, मध्ये अवलग्ने, किञ्चित् जननि ! तव यत् भाति स्फुरति, सुधियां विदुषां, विमर्दात् सङ्घर्षात्, अन्योन्यं परस्परं, कुचकलशयोः, अन्तरगतं मध्यवर्ति, तनूभूतं सूक्ष्मभूतं, व्योम गगनं, प्रविशदिव प्रवेशं कुर्वदिव । नीलं नभः इत्याबालगोपालप्रसिद्धम् । गगनस्य नीलिमा च मूर्तत्वं च कविप्रसिद्धम् । नाभिं कुहरिणीं कुहरवतीम् ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्रेत्थं पदयोजना—हे शिवे! जननि! तव कृशे मध्ये यदेतत्कालिन्दीतनुतरतरङ्गाकृति किञ्चित् रोमावलिरूपं वस्तु सुधियां यद्भाति कुचकलशयोरन्तरगतं तनूभूतं व्योम अन्योन्यं विमर्दादिव कुहरिणीं नाभिं प्रविशदिव भाति। नीलं मूर्तं नभः कुचकलशविमर्दवशात् अधोभागे स्रस्तं नाभिपर्यन्तं जतुलताऩ्यायेनावतिष्ठते तद्रोमावलिं वदन्तीति भावः॥

अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः, रोमलतायाः गगनलतिकात्वेन सम्भावनात्। प्रथमपादे निदर्शनालङ्कारः। तरङ्गाकृतीति बिम्बप्रतिबिम्बभावाक्षेपात्। अनयोस्संसृष्टिः॥ ७७॥

**स्थिरो गङ्गावर्तः स्तनमुकुलरोमावलिलता-**
**[1]कलावालं कुण्डं कुसुमशरतेजोहुतभुजः।**
**रतेर्लीलागारं किमपि तव नाभिर्गिरिसुते**
**बिलद्वारं सिद्धेर्गिरिशनयनानां विजयते॥७८॥**

**स्थिरः** विनाशरहितः, **गङ्गावर्तः** गङ्गायाः अम्भसां भ्रमः, आवर्तस्य क्षणिकत्वात् तद्व्यतिरेकः स्थिर इति। **स्तनमुकुलरोमावलिलता कलावालं** स्तनावेव मुकुलौ पुष्पकोरकौ तयोः रोमावलिरेव लता आधारभूता, [2]जनयित्री तस्याः कला रेखा तस्याः आवालं आलवालम्। **कुण्डं** होमार्थं संपादितं वृत्तं अग्निस्थानं, **कुसुमशरतेजोहुतभुजः** कुसुमशरस्य मन्मथस्य तेजः दीप्तिरेव हुतभुक् वह्निः तस्य। **रतेः** मदनपत्न्याः, **लीलागारं** विलासगृहं, तत्रैव सर्वदा मन्मथसद्भावात् तत्प्रेयसी तत्रैव वर्तत इति। **किमपि** अनिर्वाच्यं अतिसुन्दरमित्यर्थः। **तव नाभिः गिरिसुते!** पार्वति! **बिलद्वारं** गुहाद्वारं, **सिद्धेः** तपस्सिद्धेः, **गिरिशनयनानां** सदाशिवचक्षुषां **विजयते** सर्वोत्कर्षेण स्फुरति॥

[1] कुलवालम्. [2] जगज्जननी तस्याः कुला किशोरः,

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्रेत्थं पदयोजना—हे गिरिसुते ! तव नाभिः स्थिरो गङ्गावर्तः स्तनमुकुल-रोमावलिलताकलावालं कुसुमशरतेजोहुतभुजः कुण्डं रतेर्लीलागारं गिरिशनयनानां सिद्धेर्बिलद्वारं किमपि विजयते ॥

अत्रोल्लेखालङ्कारः, एकस्या नाभेरनेकरीत्या उल्लेखात् । नायमतिशयोक्तिः, एकस्यानेकत्वोल्लेखनादेव । नाप्यतिशयोक्तिमाला, किमपीत्यध्यवसितुमशक्य-त्वात् किमपीत्यनेन सार्धं मालात्वस्यानुचितत्वादिति रहस्यम् ॥ ७८ ॥

**निसर्गक्षीणस्य स्तनतटभरेण क्लमजुषो**
**नमन्मूर्तेर्नारीतिलक शनकैस्त्रुट्यत इव ।**
**चिरं ते मध्यस्य त्रुटिततटिनीतीरतरुणा**
**समावस्थास्थेम्नो भवतु कुशलं शैलतनये ॥७९**

**निसर्गक्षीणस्य** स्वभावेन क्षीणस्यातिकृशस्य, **स्तनतटभरेण** स्तनतटयोः कुचतटयोः भरेण. **क्लमजुषः** क्लान्तिमतः **नमन्मूर्तेः नारीतिलक !** स्त्रीरत्न-भूते ! **शनकैः** स्तोकं, **त्रुट्यत इव** भिद्यमानस्येव, **चिरं** बहुकालं, **ते** तव, **मध्यस्य** अवलग्नस्य, **त्रुटिततटिनीतीरतरुणा** त्रुटिते भग्ने तटिन्याः वाहिन्याः तीरे तरुः वृक्षः तेन, **समावस्थास्थेम्नः** समायां तुल्यायां अवस्थायां स्थेमा स्थैर्यं यस्य तस्य; **भवतु** भूयात् । **कुशलं** क्षेमं त्रुटनाभावः, **शैलतनये** पार्वति !

अत्रेत्थं पदयोजना—हे शैलतनये ! नारीतिलक ! निसर्गक्षीणस्य स्तनतटभरेण क्लमजुषः नमन्मूर्तेः शनकैः त्रुट्यत इव त्रुटिततटिनीतीरतरुणा समावस्थास्थेम्नः ते मध्यस्य चिरं कुशलं भवतु ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



मध्यस्येत्येवमादिप्रयोगाः सहृदयहृदयाह्लादकारिणो महाकविशिक्षाभ्याससमासादिताः । एतादृशप्रयोगनिपुणः महाकविरित्युच्यते ॥

अत्रोपमालङ्कारः, भग्ननदीकूलवर्तिभूरुहशिखामूलिकासाम्यं मध्यस्येति ॥ ७९ ॥

कुचौ सद्यःस्विद्यत्तटघटितकूर्पासभिदुरौ
कषन्तौ दोर्मूले कनककलशाभौ कलयता ।
तव त्रातुं भङ्गादलमिति वलग्नं तनुभुवा
त्रिधा नद्धं देवि त्रिवलि लवलीवल्लिभिरिव ॥

कुचौ स्तनौ, सद्यः तदानीमेव, स्विद्यत्तटघटितकूर्पासभिदुरौ स्विद्यन्तौ स्वेदवन्तौ तटौ पार्श्वौ तयोर्घटितस्य कूर्पासस्य [1]भिदुरौ । 'कर्मकर्तरि कुरच्' इत्यत्र कर्तर्यपि कुरच् । रक्षितस्तु—'कर्मणि कर्तरि च कुरच्' इति व्याचष्टे । 'सद्यस्तनघटितकूर्पासभिदुरौ' इति पाठे सद्यस्तनं तदानीन्तनं नूतनत्वेन घटितं कूर्पासकं तस्य भिदुरौ । प्रतिक्षणं प्राणेश्वरस्य सदाशिवस्य रूपानुसन्धानेन उत्सिक्तावयवैर्भिद्यते सन्धिबन्धेषु कञ्चुलिकेति भावः । कषन्तौ निकषन्तौ दोर्मूले कक्षप्रान्तदेशे, कनककलशाभौ कनककलशयोर्हेमकुम्भयोरिव आभा सौभाग्यं ययोस्तौ, कलयता रचयता निर्मिमाणेन, तव भवत्याः, त्रातुं रक्षितुं, वलग्नमिति शेषः । यद्वा—प्रथमान्तस्य वलग्नशब्दस्य अत्र कर्मत्वेनान्वयः । भङ्गात् स्तनभरजनितात् अलमिति अलंशब्दोऽत्र वारणार्थः । भङ्गो मा भूदित्यर्थः । वलग्नं मध्यप्रदेशं, तनुभुवा

[1] भिदुरौ भेदकरौ.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



मन्मथेन, त्रिधा त्रिप्रकारेण, नद्धं बद्धं, देवि ! दीव्यन्ति ! भगवति ! त्रिवलि तिस्रो वलयो विभङ्गाः यस्य तत् । लवलीवल्लिभिरिव लवलीनां वल्लयः ताभिः । पीतवल्ली लवली, तत्पुष्पाणि श्वेतानि । अकारादिनिघण्टौ तु— लवलीत्युक्त्वा तल्लता वनकुळत्थलतेत्युक्तम् । यथारुचि स्वीकार्यम् । इवशब्द-स्सम्भावनायां, ध्रुवमित्यर्थः । इवशब्दस्य सम्भावनाद्योतकत्वमप्यस्तीति पूर्वमेवोक्तम् ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे देवि ! सद्यः स्निग्धत्तटघटितकूर्पासभिदुरौ दोर्मूले कषन्तौ कनककलशाभौ कुचौ कलयता तनुभुवा भङ्गादलमिति वलग्नं त्रातुं त्रिवलि तव वलग्नं लवलीवल्लिभिः त्रिधा नद्धमिव ॥

अत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः, त्रिवलीनां लवलीवल्लीत्वेन सम्भावनात् । पूर्वार्धे अतिशयोक्तिरलङ्कारः, भगवत्याः कुचनिर्माणे मन्मथस्यैवाधिकारो न जरद्-ब्रह्मण इति जरद्ब्रह्मनिर्माणसम्बन्धेऽप्यसम्बन्धोक्त्या अभेदाध्यवसायः कवि-कृतवस्तुकृतयोः सौन्दर्ययोरेवेति । उभयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । नन्वेवं कुचौ रचयता मन्मथेनेत्यनुवाद्यविशेषणमहिम्ना मन्मथकर्तृत्वस्य सिद्धवदनुवादात् कुचनिर्माणे वर्तमानसम्बन्धाभावात् असम्बन्धे सम्बन्धोक्तेरप्याञ्जस्यमेवेति चेत् —मैवम् ; कुचौ कनककलशाभौ कलयतेति शतृप्रत्ययेन वर्तमानार्थेन कुचकरणस्य वर्तमानकालसम्बन्धप्रतीतेरसम्बन्धे सम्बन्धोक्तिराञ्जसीति न वाच्यम् । भूतकालसम्बन्धेऽपि भूतकालक्रियावाचकाख्यातान्तधातुप्रयोगे युज्यते सम्बन्धेऽप्यसबन्धकथनं न त्वनुवाद्यगतत्वेन सिद्धवदनुवादे ॥ ८० ॥

**गुरुत्वं विस्तारं क्षितिधरपतिः पार्वति निजात्**
**नितम्बादाच्छिद्य त्वयि हरणरूपेण निदधे ।**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**अतस्ते विस्तीर्णो गुरुरयमशेषां वसुमतीं**
**नितम्बप्राग्भारस्स्थगयति लघुत्वं नयति च ॥**

**गुरुत्वं** गौरवं, **विस्तारं** आयामपरिणाहं, **क्षितिधरपतिः** हिमवान्, **पार्वति!** शैलतनये! **निजात्** स्वकीयात्, **नितम्बात्** नितम्बप्रदेशात्, **आच्छिद्य** अवयुत्य, **त्वयि** भवत्यां, **हरणरूपेण** हरणात्मना, **निदधे** समर्पितवान्। हरणं नाम स्त्रीधनं—अध्यग्न्यध्यावाहनिकम्। यथोक्तं हारीतेन—

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं हरणं स्त्रीधनं स्मृतम्। इति

अस्यार्थः—अग्निमधिकृत्य दत्तमध्यग्नि विवाहसमये अग्निसमीपे पित्रादिभिर्यद्दत्तं तदध्यग्नि, विवाहानन्तरं वधूं गृहीत्वा स्वगृहं प्रतिजिगमिषावसरे पित्रादिभिर्यद्दत्तं तदध्यावाहनिकमिति*। एतदुभयं हरणशब्दवाच्यमिति मन्वादिभिस्स्मृतमिति। **अतः** तस्मात्कारणात्, **ते** तव, **विस्तीर्णः** आयामतः, **गुरुः** पृथुः, **अयं** परिदृश्यमानः, **अशेषां** कृत्स्नां, **वसुमतीं** पृथ्वीं **नितम्बप्राग्भारः** नितम्बस्य प्राग्भारः अतिशयः, **स्थगयति** छादयति। **लघुत्वं** लाघवं **नयति** प्रापयति **च**। चकारः शङ्काच्छेदे अस्मिन्नर्थे न शङ्कितव्यमित्यर्थः ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे पार्वति! क्षितिधरपतिः गुरुत्वं विस्तारं निजात् नितम्बादाच्छिद्य त्वयि हरणरूपेण निदधे। अतः ते अयं नितम्बप्राग्भारः गुरुः विस्तीर्णस्सन् अशेषां वसुमतीं स्थगयति लघुत्वं नयति च ॥

विस्तारेण स्थगनं गुरुत्वेन लाघवापादनमित्यर्थः। प्रपञ्चे वसुमत्यामेव गुरुत्वविस्तारौ एकत्र स्थितौ। तयोस्तिरस्करणमेकत्रस्थिताभ्यां गुरुत्वविस्तारा-

---

* केचित्। अपरे—आहवनीयसमीपे यज्ञादौ पित्रादिभिर्यद्दत्तं तदध्याहवनीयकमिति, इत्यधिकः पाठः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



भ्यामेव विधेयमिति हिमाद्रिगतगुरुत्वविस्तारौ हिमाद्रेः भूधरत्वात् भूमिगत-गुरुत्वविस्ताराभ्यामधिकाविति भावेन गृहीत्वा तत्तिरस्करणमिति क्षितिधरपतिः अशेषां वसुमतीमिति च पदं प्रयुञ्जानस्य भावः ॥

अत्रातिशयोक्तिरलङ्कारः, हिमाद्रिगतगुरुत्वविस्तारयोः पार्वतीनितम्ब-गतगुरुत्वविस्तारयोर्भेदेऽप्यभेदेनाध्यवसानात् । सेयं भेदे अभेदनिबन्धनाद-तिशयोक्तिरलङ्कारः ॥ ८१ ॥

ऊरू जानुनी च सकृदेव वर्णयति—

**करीन्द्राणां शुण्डान् कनककदलीकाण्डपटलीं**
**उभाभ्यामूरुभ्यामुभयमपि निर्जित्य भवति ।**
**सुवृत्ताभ्यां पत्युः प्रणतिकठिनाभ्यां गिरिसुते**
**विधिज्ञे जानुभ्यां विबुधकरिकुम्भद्वयमसि ॥ ८२**

**करीन्द्राणां** गजेन्द्राणां, **शुण्डान्** करदण्डान्, शुण्डाशब्दस्य पुलिङ्ग-ताप्यस्ति इति रक्षितमतम् । **कनककदलीकाण्डपटलीं** सुवर्णरम्भास्तम्भ-संहतिं, **उभाभ्यामूरुभ्यां उभयं** करिकररम्भास्तम्भात्मकं, **अपि निर्जित्य** विजित्य, **भवति !** त्वं, **सुवृत्ताभ्यां** शोभनाभ्यां वर्तुलाभ्यां, **पत्युः** परमेश्वरस्य, **प्रणतिकठिनाभ्यां** प्रणतिभिः कठिनाभ्यां प्रणतिदशायां जान्वोः भूमि-स्पर्शादित्यर्थः । **गिरिसुते !** हिमाद्रितनये, **विधिज्ञे !** विधिं वेदार्थं जानातीति विधिज्ञा सर्वज्ञेत्यर्थः । यद्वा—वेदार्थानुष्ठात्री । अत एव पत्युर्नमस्कारः प्रति-दिनं वैध इति कृतः न तु तस्याधिक्यानुरोधादिति नर्मवचनम् । तस्यास्सम्बुद्धिः । **जानुभ्यां विबुधकरिकुम्भद्वयं** दिग्दन्तिकुम्भस्थलद्वितयं, **असि** भवसि ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्रेत्थं पदयोजना—हे विधिज्ञे! गिरिसुते! भवति! करीन्द्राणां शुण्डान् कनककदलीकाण्डपटलीं उभाभ्यामूरुभ्यां उभयमपि निर्जित्य सुवृत्ताभ्यां पत्युः प्रणतिकठिनाभ्यां जानुभ्यां विबुधकरिकुम्भद्वयमपि निर्जित्य असि वर्तसे स्फुरसीति यावत् ॥

अत्र भवच्छब्दयोगेऽपि असीति मध्यमपुरुष एव भवति, तस्य सम्बोधनमात्रपरत्वात्। अत्रेदं तत्त्वम्—भवच्छब्दो द्विविधः संबोध्यपरः संबोधनमात्रपरश्चेति। सम्बोध्यपरत्वे भवच्छब्दस्य युष्मदर्थत्वाभावात् 'युष्मद्युपपदे' इत्यादिना प्राप्त्यभावात् शेषे प्रथम एव तद्योगे। यथा—"[1]सूते जगन्ति भवती भवती बिभर्ति जागर्ति तत्क्षयकृते भवती भवानि' इत्यादि। यदा—संबोधनमात्रपरत्वं भवच्छब्दस्य तदा युष्मदर्थत्वात् मध्यमपुरुषः स्यादेव। यथा 'भवति भिक्षां देहि' इति। तत्र संबोधनमात्रपरत्वेऽपि ङीष्प्रत्ययः गौरादौ भवतेः प्रातिपदिकस्य पाठात् सिद्धः। अत एव रक्षित आह—'भवतु प्रातिपदिकसामर्थ्यात् स्त्रीलिङ्ग एव भवच्छब्दस्य संबोधनमात्रपरत्वम्' इति। अयमाशयः—भवच्छब्दस्य सर्वनामसु 'भवतु' इति प्रातिपदिकग्रहणात् 'उगितश्च' इति ङीप् सिद्ध एवेति अत्र गौरादौ पठितस्य भवच्छब्दस्य वैयर्थ्यात् स्त्रीत्व एव संबोधनमात्रपरत्वमिति ज्ञापयतीति ॥

नन्वेवं रक्षितेनैव "युष्मदस्मदोः स्त्रीपुन्नपुंसकेषु तुल्यलिङ्गत्वं, संबोधनमात्रपरत्वात् युष्मदस्मदोः, एकद्विबहुत्वपरत्वं तु संबोध्यलक्षणया। न च लिङ्गलक्षणा, आकांक्षाभावात्" इत्युक्तम्। तद्वद्भवच्छब्दस्याप्यलिङ्गत्वं प्राप्नोतीति। मैवं, दत्तोत्तरत्वादित्यलमतिविस्तरेण। यत्तु 'त्वामस्मि वच्मि विदुषां' इति श्लोकव्याख्यानावसरे काव्यप्रकाशिकाटीकाकारेण भास्करेणोक्तं तदमूलमिति नोपन्यस्य दूषितम् ॥

अत्रोपमालङ्कारस्स्पष्ट एव ॥ ८२ ॥

[1] चर्चास्तवः श्लो. ४.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**पराजेतुं रुद्रं द्विगुणशरगर्भौ गिरिसुते**
**निषङ्गौ जङ्घे ते विषमविशिखो बाढमकृत ।**
**यदग्रे दृश्यन्ते दशशरफलाः पादयुगली-**
**नखाग्रच्छद्मानस्सुरमकुटशाणैकनिशिताः ॥**

**पराजेतुं** तिरस्कर्तुं, **रुद्रं** हरं, **द्विगुणशरगर्भौ** द्विगुणीकृताः शराः पञ्चबाणाः गर्भे ययोस्तौ । **गिरिसुते!** पार्वति! **निषङ्गौ** तूणीरौ, **जङ्घे** जङ्घाकाण्डौ, **ते** तव, **विषमविशिखः** पञ्चबाणः, **बाढं** ध्रुवं, **अकृत** कृतवान् । **यदग्रे** ययोः निषङ्गयोरग्रे, **दृश्यन्ते** । **दशशरफलाः** दशानां शराणां द्विगुणितानां पञ्चानामित्यर्थः तेषां फलाः अयोमुखानि, **पादयुगलीनखाग्रच्छद्मानः** पादयोः प्रपदयोः युगली द्वितयं तस्या नखाग्राणां दशानां छद्म व्याजो येषां ते, **सुरमकुटशाणैकनिशिताः** सुराणां इन्द्रादीनां मकुटेष्वेव शाणेषु एकनिशिताः मुख्यतया उत्तेजिताः ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे गिरिसुते! विषमविशिखः रुद्रं पराजेतुं द्विगुणशरगर्भौ निषङ्गौ ते जङ्घे अकृत बाढम् । यदग्रे पादयुगलीनखाग्रच्छद्मानः सुरमकुटशाणैकनिशिताः दशशरफला दृश्यन्ते ॥

अत्र उत्प्रेक्षालङ्कारः, जङ्घयोः तूणीरतया सम्भावनात् । अपह्नवालङ्कारश्च, नखाग्राणां फलत्वेनापह्नवात् । अनयोस्संसृष्टिः, अपृथक्स्थितया प्रयोज्यप्रयोजकभावावगतेः । विषमविशिखो बाढमकृतेत्यत्र अतिशयोक्तिरलङ्कारः, साधारणब्रह्मसृष्टिव्यतिरिक्तत्वेन प्रतीतेः । एतच्च पूर्वमेव स्पष्टीकृतं 'कुचौ सद्यस्स्विद्यत्'* [1] इति श्लोकव्याख्यानावसरे । अलङ्कारेण अलङ्कारध्वनिरपि, द्विगुण-

* ८०. श्लो. [1] इत्यादिश्लोकद्वय.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



शरगर्भौ दशशरफला इति पदद्वयेन पादाङ्गुलीनां शराणां च अभेदाध्यवसाय-प्रतीतेरित्यलम् ॥ ८३ ॥

**श्रुतीनां मूर्धानो दधति तव यौ शेखरतया**
**ममाप्येतौ मातश्शिरसि दयया धेहि चरणौ।**
**ययोः पाद्यं पाथः पशुपतिजटाजूटतटिनी**
**ययोर्लाक्षालक्ष्मीररुणहरिचूडामणिरुचिः॥८४**

**श्रुतीनां** निगमानां, **मूर्धानः** शिरांसि वेदान्ता इत्यर्थः। **दधति** धारयन्ति प्रतिपादयन्तीत्यर्थः। **तव** भवत्याः, **यौ** चरणौ पादौ, **शेखरतया** उत्तंसतया। यद्वा—श्रुतीनां श्रुतिवधूनां मूर्धानः श्रुतयः भगवतीपादाब्जं उत्तंसयन्ति। यथोक्तम्—श्रुतिवाक्यं शक्तिं प्रति वसिष्ठेन—

नमो देव्यै महालक्ष्म्यै श्रियै सिद्ध्यै नमो नमः।
ब्रह्मविष्णुमहेशानवेदकैः पूजिताङ्घ्रये॥

वेदकैरित्यत्र वेदानां कैश्शिरोभिरिति।

नमस्त्रिपुरसुन्दर्यै शिवायै विश्वमूर्तये।

इत्यादि॥

एवं स्तुता महादेवी श्रुतिभिः प्रीतमानसा।
प्राह ताः प्रति तादृग्भिः वचोभिरमरेश्वरी॥

इत्यादि वसिष्ठसंहितायाम्। **ममापि एतौ चरणौ, मातः!** जननि! **शिरसि** मूर्धनि, **दयया** कृपया कृपाविष्टचित्तेनेत्यर्थः। **धेहि** निधेहि। **चरणौ** पादौ, **ययोः** चरणयोः सम्बन्धि, **पाद्यं पाथः** पादनिर्णेजनजलम्। यद्यपि पाद्यमित्युक्ते पादसम्बन्धः प्रतीयते तथापि पाद्यमित्युक्ते पादप्रक्षालनार्हं पाद्यमित्यर्हतामात्र-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



प्रतीतौ विशेषाकारेण ययोरित्यस्यान्वय इति न पौनरुक्त्यम् । पशुपति-जटाजूटतटिनी पशुपतेः शिवस्य जटाजूटे कपर्दे तटिनी गङ्गा, ययोः चरणयोः, लाक्षालक्ष्मीः लाक्षारसकान्तिः, अरुणहरिचूडामणिरुचिः अरुणश्चासौ हरिचूडामणिश्च कौस्तुभः तस्य रुचिः रक्तिमा ॥

अयमर्थः—प्रणयकोपशान्तये प्रणतस्य पशुपतेः जटाजूटवर्तिनी गङ्गा पादाग्रवर्तिनी आसीदिति गङ्गायाः पाद्यजलत्वं कथितम् । प्रतिदिनं सायंप्रातः सेवार्थं नमस्कुर्वाणस्य विष्णोः मकुटघटितकौस्तुभमणेः श्वेतवर्णस्य लाक्षारसप्रसादजन्योऽरुणिमेति ध्येयम् ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे जननि! तव यौ चरणौ श्रुतीनां मूर्धनिः शेखरतया दधति । हे मातः! एतौ चरणौ ममापि शिरसि दयया धेहि । ययोः पाद्यं पाथः पशुपतिजटाजूटतटिनी ययोः लाक्षालक्ष्मीः अरुणहरिचूडा-मणिरुचिः ॥

एतदुक्तं भवति—भगवत्याः पादाम्बुजद्वितयस्य वेदमूर्धनि सदाशिव-मूर्धनि विष्णुमूर्धन्येव सञ्चार इति मूर्धसञ्चारस्वाभाव्यमस्ति । अतो मम मूर्धन्यपि सञ्चरतु पादाम्बुजमिति प्रार्थनासामञ्जस्यमिति कवेरभिप्रायः । यद्वा—प्रपञ्चजनयित्र्याः सादाख्यायाः प्रपञ्चान्तःपातिनः हरिविरिञ्चिपशुपति-वेदान्ताः पादाम्बुजं शिरसि धारयन्ति तन्निर्णेजनजलेन पवित्रितगात्राः तन्महिम्ना तत्तदधिकारान् भजन्त इति युज्यत एवेति ॥

अत्र रूपकालङ्कारः स्पष्टः ॥ ८४ ॥

**नमोवाकं ब्रूमो नयनरमणीयाय पदयोः**
**तवास्मै द्वन्द्वाय स्फुटरुचिरसालक्तकवते ।**



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



असूयत्यत्यन्तं यदभिहननाय स्पृहयते
पशूनामीशानः प्रमदवनकङ्केळितरवे ॥ ८५ ॥

नमोवाकं नम इति वाक्यम् । नमोवाकशब्दो निपातनात्साधुः । ब्रूमः वदामः नमस्कुर्म इत्यर्थः । नयनरमणीयाय नेत्रयोः प्रियकराय, पदयोः चरणयोः, तव अस्मै परिदृश्यमानाय, द्वन्द्वाय युग्माय, स्फुटरुचिरसालक्तकवते स्फुटरुचये स्फुरत्प्रभाय रसालक्तकवते सार्द्रालक्तकाय, विशेषणसमासः। असूयति ईर्ष्यति । अत्यन्तं नितरां, यदभिहननाय येन पदयुगेन अभिहननं ताडनं तस्मै, अभिहननं न सहत इत्यर्थः । अशोकश्चरणाहतिव्यक्तपुष्प इति दोहलकौतुके । स्पृहयते स्पृहां कुर्वते, पशूनामीशानः पशुपतिः, प्रमदवनकङ्केळितरवे प्रमदवनं उद्यानवनं तत्र कङ्केळितरुरशोकः तस्मै असूयति ईर्ष्यति । उभयत्र 'क्रुधद्रुह' इत्यादिना 'स्पृहेरीप्सितः' इत्यनेन च संप्रदाने चतुर्थी ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति ! तव नयनरमणीयाय स्फुटरुचिरसालक्तकवते पदयोरस्मै द्वन्द्वाय नमोवाकं ब्रूमः पशूनामीशानः यदभिहननाय स्पृहयते प्रमदवनकङ्केळितरवे अत्यन्तं असूयति ॥

प्रणयकलहसमये अनुग्रहात्मा पादाघातो न कस्यापि संभाव्यत [1]इति अचेतनवस्तुनोऽपि कङ्केळितरोः कथं स्यादिति तत्रैवासूया नान्यत्रेति भावः । अनेनात्यन्तं पातिव्रत्यं पार्वत्याः प्रतिपादितम् । एतादृशं पातिव्रत्यं लक्ष्मीसरस्वत्योर्नास्तीति ध्वन्यते ॥

अत्रातिशयोक्तिरलङ्कारः, पशुपतेरीर्ष्ययाऽसंबन्धेऽपि संबन्धकथनादभेदाध्यवसायप्रतीतेः ॥ ८५ ॥

---

[1] इत्युच्यते । तेन तस्यापि कङ्केल्लितरोः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



मृषा कृत्वा गोत्रस्खलनमथ वैलक्ष्यनमितं
ललाटे भर्तारं चरणकमले ताडयति ते।
चिरादन्तश्शल्यं दहनकृतमुन्मूलितवता
तुलाकोटिक्वाणैः किलिकिलितमीशानरिपुणा॥

मृषा अकस्मादेव, कृत्वा गोत्रस्खलनं गोत्रस्य स्खलनं नाम नायिकायामनुरागं प्रकटयतस्तत्समीप एव प्रमादात् नायिकान्तराविष्टचित्तस्य तन्नामोच्चारणम्। अथ गोत्रस्खलनानन्तरं, वैलक्ष्यनमितं वैलक्ष्येण इति-कर्तव्यतामौढ्येन नमितम्। अत्र नमितमिति वैलक्ष्यप्राधान्यात् वैलक्ष्येणैव नमितः न तु स्वयं वैलक्ष्यान्नमितः। अत्युत्कृष्टं वैलक्ष्यमासीदिति नमितशब्दं प्रयुञ्जानस्य भावः। ललाटे निटिलप्रदेशे, भर्तारं पशुपतिं, चरणकमले पादाम्बुजे, ताडयति घ्नति सति चरणकमलेन भर्तुर्ललाटं ताडितवत्यां भवत्यामित्यर्थः। ललाटताडनं भर्तृपर्यन्तं गच्छतीति भर्तारं ताडयतीत्युक्ति-राञ्जसीति एतादृशप्रयोगाः महाकविशिक्षावशादायाताः सहृदयहृदयाह्लादकाः। ते तव, चिरात् चिरकालमनुस्यूतं, अन्तश्शल्यं हृदयशल्यं, वैरमित्यर्थः। दहनकृतं नयनाग्निना प्लोषणकृतं, उन्मूलितवता तुलाकोटिक्वाणैः तुला नूपुरं तस्य कोटयः अग्राणि, तैरन्तर्गता मणयः क्षुद्रघण्टादयः लक्ष्यन्ते, तेषां क्वाणैः शिञ्जितैः, किलिकिलितम्। किलिकिलेत्यनुकरणं विजयिनः सुप्रसिद्धम्। किलिकिलिरवः कृत इत्यर्थः। ईशानरिपुणा मन्मथेन। मन्मथस्य ईशानं प्रति रिपुत्वं तदा सिद्धमिति भावः॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! मृषा गोत्रस्खलनं कृत्वा अथ वैलक्ष्यनमितं भर्तारं ते चरणकमले ललाटे ताडयति सति ईशानरिपुणा चिरात् दहनकृतं अन्तश्शल्यं उन्मूलितवता तुलाकोटिक्वाणैः किलिकिलितम्॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्रातिशयोक्तिरलङ्कारः, तुलाकोटिक्वाणानां किलिकिलितध्वनित्वेनाध्यवसानात् भेदे अभेदनिबन्धनातिशयोक्तिः ॥ ८६ ॥

**हिमानीहन्तव्यं हिमगिरिनिवासैकचतुरौ**
**निशायां निद्राणं निशि चरमभागे च विशदौ।**
**वरं लक्ष्मीपात्रं श्रियमतिसृजन्तौ समयिनां**
**सरोजं त्वत्पादौ जननि जयतश्चित्रमिह किम्॥**

हिमानीहन्तव्यं हिमान्या हिमसंहत्या हन्तव्यं नाशितव्यं, हिमगिरिनिवासैकचतुरौ सर्वदा हिमगिरावेव वसन्तावित्यर्थः। निशायां शर्वर्यां, निद्राणं मुकुलितं, निशि चरमभागे च विशदौ प्रसन्नौ, चेतनाशक्तेः तत्रैवोत्पत्तेरिति भावः। चकारात् दिवापि प्रसन्नावित्यर्थः। वरं ईप्सितं, लक्ष्मीपात्रं लक्ष्म्या अधिष्ठितमित्यर्थः। श्रियं लक्ष्मीं, अतिसृजन्तौ उत्पादयन्तौ, समयिनां स्वभक्तानाम्, समयस्वरूपं 'तवाधारे मूले'* इति श्लोके निरूपितम्। सरोजं कमलं कर्मभूतं, त्वत्पादौ जननि! हे मातः! जयतः विजयेते। चित्रं आश्चर्यं, इह अस्मिन्नर्थे, किं न किमपीत्यर्थः॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे जननि! हिमगिरिनिवासैकचतुरौ निशि चरमभागे च विशदौ समयिनां श्रियमतिसृजन्तौ त्वत्पादौ हिमानीहन्तव्यं निशायां निद्राणं वरं लक्ष्मीपात्रं सरोजं जयतः; इह किं चित्रं, आधिक्यस्य स्फुटत्वादित्यर्थः॥

अत्र व्यतिरेकालङ्कारः स्फुटः॥ ८७॥

---

* ४७ श्लो.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



पदं ते कीर्तीनां प्रपदमपदं देवि विपदां
कथं नीतं सद्भिः कठिनकमठीकर्परतुलाम् ।
कथं वा बाहुभ्यामुपयमनकाले पुरभिदा
यदादाय न्यस्तं दृषदि दयमानेन मनसा ॥

**पदं** स्थानं, **ते** तव, **कीर्तीनां** यशसां, **प्रपदं** पादाग्रं, **अपदं** अस्थानं, **देवि**! द्योतनशीले! भगवति! **विपदां** आपदां, **कथं** कथङ्कारं, **नीतं** प्रापितं, **सद्भिः** कवीन्द्रैः, **कठिनकमठीकर्परतुलां** कठिनस्य कमठीकर्परस्य कूर्मपृष्ठकपालस्य तुलां, **कथं वा** कथंकृत्वा, **बाहुभ्यां** हस्ताभ्यां, **उपयमनकाले** विवाहसमये, **पुरभिदा** सदाशिवेन, **यत् पदं आदाय** गृहीत्वा, **न्यस्तं** क्षिप्तं, **दृषदि** उपलाधारभूता शिला दृषत्, उपलं हरिद्रादिद्रव्यस्य पेषणिका शिला। तदाधारभूता शिला दृषत्। सा विवाहसमये अश्मस्थापनानुष्ठानार्थं पात्रत्वेन प्रयुक्ता। तस्यां दृषदि **दयमानेन** दयावता, **मनसा**। दयां विहायातिमृदुलं पादाम्बुजं दृषदि कथं स्थापितं शम्भुना। अमृतस्यन्दिनीभिः वाग्विलासैः कवीश्वराः कमठपृष्ठेन तुल्यतया कथं? एतदुभयमयुक्तमित्यर्थः ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे देवि! कीर्तीनां पदं विपदामपदं ते प्रपदं सद्भिः कठिनकमठीकर्परतुलां कथं नीतम्? दयमानेन मनसा पुरभिदा उपयमनकाले बाहुभ्यां यदादाय कथं वा दृषदि न्यस्तम्?

अत्रानन्वयालङ्कारो ध्वन्यते, सदृशान्तरनिषेधात् असदृशस्य पादाम्बुजवस्तुनः स्वयमेव स्वस्य तुल्यमिति प्रतीतेः ॥ ८८ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



नखैर्नाकस्त्रीणां करकमलसङ्कोचशशिभिः
तरूणां दिव्यानां हसत इव ते चण्डि चरणौ।
फलानि स्वःस्थेभ्यः किसलयकराग्रेण ददतां
दरिद्रेभ्यो भद्रां श्रियमनिशमह्नाय ददतौ ॥

**नखैः** नखरैः, **नाकस्त्रीणां** सुराङ्गनानां शच्यादीनां, **करकमलसङ्कोचशशिभिः** करा एव कमलानि तेषां सङ्कोचे मुकुलीभावे शशिनः चन्द्रात्मकाः पाददर्शनवेलायां नखकान्तयः चन्द्रकिरणा इव तत्करान् मुकुलयन्ति अञ्जलिसान्धानं कारयन्ति। **तरूणां** वृक्षाणां, **दिव्यानां** दिवि भवानां, **हसतः**। तरूणां हसत इति कर्मणि षष्ठी। हसन्तौ **इव ते** तव, **चण्डि**! भगवति! **चरणौ फलानि स्वःस्थेभ्यः** स्वर्गस्थेभ्य एव न तु दरिद्रेभ्य इति विशेषणवशात्प्रतीयते। **किसलयकराग्रेण** किसलया एव कराः तेषामग्रं तेन, **ददतां** दिशतां, **दरिद्रेभ्यो** दीनेभ्यश्च, **भद्रां** अमन्दां, **श्रियं** लक्ष्मीं, **अनिशं** सर्वदा, **अह्नाय** शीघ्रं, **ददतौ**॥

अयमर्थः—कल्पवृक्षाः किसलयकरैः स्वःस्थेभ्य एव आशानुसारेण शनैश्शनैः फलं ददति। ते पादाम्बुजं तु स्वःस्थेभ्यो दरिद्रेभ्यश्च शीघ्रं भद्रां श्रियं ददातीति व्यतिरेकः॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे चण्डि! किसलयकराग्रेण स्वःस्थेभ्यः एव फलानि ददतां दिव्यानां तरूणां दरिद्रेभ्यो भद्रां श्रियं अनिशमह्नाय ददतौ ते चरणौ नाकस्त्रीणां करकमलसङ्कोचशशिभिः नखैः हसत इव॥

अत्र व्यतिरेकालङ्कारः स्फुट एव। स च स्वःस्थेभ्य इत्यत्र श्लेषानुप्राणित इत्यनुसन्धेयम्॥ ८९॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



दुदाने दीनेभ्यश्श्रियमनिशमाशानुसदृशीं
अमन्दं सौन्दर्यप्रकरमकरन्दं विकिरति ।
तवास्मिन् मन्दारस्तबकसुभगे यातु चरणे
निमज्जन्मज्जीवः करणचरणष्षट्चरणताम् ॥

ददाने ददति, दीनेभ्यो दरिद्रेभ्यः, श्रियं लक्ष्मीं, अनिशं आशानुसदृशीं वाञ्छानुरूपां, अमन्दं अधिकं, सौन्दर्यप्रकरमकरन्दं सौन्दर्यस्य लावण्यस्य प्रकरः समूह एव मकरन्दः पुष्परसः तं, विकिरति क्षिपति, तव भवत्याः, अस्मिन् दृश्यमाने, मन्दारस्तबकसुभगे कल्पवृक्षगुच्छसौभाग्यवति, यातु प्राप्नुयात् । चरणे पादाब्जे, निमज्जन् नितरां मज्जनं कुर्वन्, मज्जीवः अहं चासौ जीवश्च मज्जीवः, करणचरणः करणानि पञ्चेन्द्रियाणि मनष्षष्ठानि तान्येव चरणा यस्य सः षट्चरणतां भ्रमरत्वम् ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति ! दीनेभ्यः आशानुसदृशीं श्रियं अनिशं ददाने अमन्दं सौन्दर्यप्रकरमकरन्दं विकिरति मन्दारस्तबकसुभगे अस्मिन् तव चरणे करणचरणः मज्जीवः निमज्जन् षट्चरणतां यातु ॥

अत्रातिशयोक्तिरलङ्कारः, चरणस्य कमलत्वेन निगीर्याध्यवसानात् । मन्दारस्तबकसुभग इत्यत्र उपमालङ्कारः । अनयोस्संसृष्टिः । करणचरण इत्यत्र रूपकं, करणानां चरणत्वेन[1] रूपणात् । मज्जीवष्षट्चरणतां यात्वित्यत्र परिणामालङ्कारः स्पष्टः । अनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । सौन्दर्यप्रकरमकरन्दं विकिरतीत्यत्र रूपकं निगीर्याध्यवसाने निमित्तम् । अत एव नैकदेशरूपकम्, अवयवानां प्रतिपादनात् । करणचरणष्षट्चरणतां यात्विति फलत्वेनोद्देशात् अवयवत्वं तस्य । अतोऽस्मिन् चरण इति आरोपविषयतया चरणमुपादाय

[1] आरोपणात्.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



कमलमारोप्यमाणबुद्ध्या निगीर्णमिति सम्यक् । एवं परिणामातिशययोः सङ्कर एव न तु संसृष्टिरिति ध्येयम् ॥ ९० ॥

पदन्यासक्रीडापरिचयमिवारब्धुमनसः
स्खलन्तस्ते खेलं भवनकलहंसा न जहति ।
अतस्तेषां शिक्षां सुभगमणिमञ्जीररणित-
च्छलादाचक्षाणं चरणकमलं चारुचरिते ॥

पदन्यासक्रीडापरिचयं पदयोर्न्यासः तस्मिन् क्रीडा विनोदः तस्य परिचयमिव अभ्यासमिव । इवशब्दस्संभावनावचनः नूनमित्यर्थः । आरब्धुमनसः संपादयितुकामाः, स्खलन्तः स्खलद्गतयः, ते तव, खेलं खेलनं विलासं सञ्चारं, भवनकलहंसाः भवने परिपोषिताः कलहंसाः हंसविशेषाः, न जहति न परित्यजन्ति त्वदनुसरणं न कदाचिदपि त्यजन्तीत्यर्थः । अतः कारणात्, तेषां कलहंसानां, शिक्षां खेलनशिक्षां, सुभगमणिमञ्जीररणितच्छलात् मणिमञ्जीरो मणिप्रधाननूपुरः स चासौ सुभगः रम्यतरः, यद्वा– सुभगैः मणिभिः पद्मरागादिभिः युक्तः, तस्य मञ्जीरस्य रणितानां शिञ्जितानां छलात् व्याजात् । आचक्षाणं उपदिशत्, चरणकमलं पादाम्बुजं, चारुचरिते! शोभनगमने !

अत्रेत्थं पदयोजना—हे चारुचरिते ! पदन्यासक्रीडापरिचयं आरब्धुमनसः भवनकलहंसाः स्खलन्तः ते खेलं न जहति; अतः चरणकमलं सुभगमणिमञ्जीररणितच्छलात् तेषां शिक्षां आचक्षाणमिव ॥

अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः—मञ्जीररणितानां शिक्षावचनात्मतया सम्भावनात् । पूर्वार्धे अतिशयोक्तिः, भवनकलहंसानां स्वाभाविके पोषकजनानुसरणे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



पदन्यासक्रीडापरिचयार्थत्वेन - अध्यवसानात् असम्बन्धे संबन्धनिबन्धनातिशयोक्तिः । उभयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ॥ ९१ ॥

एवं मकुटादिपादान्तं वर्णयित्वा पुनः स्वरूपं प्रस्तौति—

**गतास्ते मञ्चत्वं द्रुहिणहरिरुद्रेश्वरभृतः**
**शिवस्स्वच्छच्छायाघटितकपटप्रच्छदपटः ।**
**त्वदीयानां भासां प्रतिफलनरागारुणतया**
**शरीरी शृङ्गारो रस इव दृशां दोग्धि कुतुकम् ॥**

**गताः** प्राप्ताः, **ते** तव, **मञ्चत्वं** खट्वारूपत्वं, **द्रुहिणहरिरुद्रेश्वरभृतः** द्रुहिणो ब्रह्मा हरिर्विष्णुः रुद्रः ईश्वरः एते अधिकारिपुरुषाः महेश्वरतत्त्वान्तर्गताः ते च ते भृतश्च । क्विबन्तोऽयं शब्दः बहुवचनान्तः। भृतो भृतकाः विशेषणसमासः । तेषां कामरूपाणां अत्यन्तसन्निकृष्टसेवार्थं मञ्चस्य पादचतुष्टयरूपता युज्यत एव। **शिवः** शिवशब्दो व्याख्यातः शिवतत्त्वात्मक एवाधिकारिपुरुषः । यद्वा—सदाशिवतत्त्वम् । **स्वच्छच्छायाघटितकपटप्रच्छदपटः** स्वच्छा चासौ छाया च स्वच्छच्छाया, कान्तिः सैव घटितः कपटप्रच्छदपटः शुभ्रकान्तिरेव वस्त्रात्मनावस्थित इत्यर्थः । **त्वदीयानां** भवत्सम्बन्धिनीनां, **भासां** कान्तीनां, **प्रतिफलनरागारुणतया** प्रतिफलनेन यो रागः रक्तिमा सङ्क्रान्तः तेनारुणो रक्तवर्णः तस्य भावस्तत्ता तया। **शरीरी** मूर्तः, **शृङ्गारः** शृङ्गाराख्यो, **रस इव**। शृङ्गाररसः रक्तवर्ण इति महाकविप्रसिद्धिः। इवशब्दस्सम्भावनायाम्। **दृशां** भवद्वीक्षणानां, **दोग्धि** दुग्धे प्रसूते करोतीति यावत्, **कुतुकं** आनन्दम् ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति ! ते मञ्चत्वं द्रुहिणहरिरुद्रेश्वरभृतः गताः; शिवः स्वच्छच्छायाघटितकपटप्रच्छदपटस्सन् त्वदीयानां भासां प्रतिफलनरागारुणतया शरीरी शृङ्गारो रस इव दृशां कुतुकं दोग्धि ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्रेदमनुसन्धेयम्—आधारस्वाधिष्ठानमणिपूरानाहतविशुद्ध्याज्ञाचक्रात्मकं षट्चक्रसदनं पृथिव्यग्निजलवायुगगनमनस्तत्त्वाधिष्ठानं एकादशेन्द्रियाधिष्ठानं च। एवं आज्ञाचक्रान्ते एकविंशतितत्त्वान्यधिष्ठितानि तदात्मनावस्थितानि। तत उपरि मायाशुद्धविद्यामहेश्वरसदाशिवात्मकतत्त्वचतुष्टयं ब्रह्मग्रन्थ्यनन्तरभाविचतुर्द्वारात्मकभूपुरत्रितयात्मकश्रीचक्रद्वारचतुष्टये स्थितम्। प्रागादिद्वारदेशेषु मायादीनि चत्वारि तत्त्वानि। तान्येव मञ्चस्य चतुष्पदानि। शुद्धविद्यायास्सदाशिवतत्त्वाभिनिवेशात् तच्छायापत्त्या सहस्रकमलान्तर्गतशिवस्सदाशिवात्मा अनुरागवशात् शुद्धविद्यायास्संवलनात् तादात्म्यं प्रतीयते। सहस्रकमलान्तस्स्थितस्य चतुर्द्वारात्मकस्य कर्णिकारूपस्य श्रीचक्रस्य मध्यवर्तिचतुरश्रात्मकबैन्दवापरपर्यायसरघाशब्दवाच्यसुधासिन्धौ शिवशक्त्योर्मेलनमिति। अवशिष्टं सर्वं 'सुधासिन्धोर्मध्ये' * इति श्लोकव्याख्यानावसरे कथितम्॥

अत्र तद्गुणालङ्कारानुप्राणित उत्प्रेक्षालङ्कारः, शिवस्यातिधवलस्य कामेश्वरीतनुकान्त्या ताद्गुण्यात् शरीरी श‍ृङ्गारो रस इवेत्युत्प्रेक्षणादिति॥९२॥

**अराळा केशेषु प्रकृतिसरळा मन्दहसिते**
**शिरीषाभा चित्ते[1] दृषदुपलशोभा कुचतटे।**
**भृशं तन्वी मध्ये पृथुरुरसिजारोहविषये**
**जगत्त्रातुं शम्भोर्जयति करुणा काचिदरुणा॥**

अराळा वक्रा, केशेषु नान्यत्रेत्यर्थः। प्रकृतिसरळा प्रकृत्या स्वभावेन सरळा ऋज्वी, मन्दहसिते मन्दस्मिते, शिरीषाभा शिरीषकुसुमाभा अतिमृद्वीत्यर्थः। चित्ते अन्तःकरणे, दृषदुपलशोभा [2]दृषदि य उपलः पेषणिका

---

* ८ मः श्लोकः. [1] दृषदिव कठोरा. [2] दृषदिवोपल इव कुचतटे स्तनप्रदेशे कठोरा.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



दृषदुपल इति पूर्वमेवोक्तं तस्येव शोभा यस्यास्सा। **कुचतटे** स्तनतटे, **भृशं** अत्यर्थं, **तन्वी** कृशा, **मध्ये** वलग्ने, **पृथुः** स्थूला, **उरसिजारोहविषये** स्तनविषये नितम्बविषये च। विषयशब्दः स्थलवाची। **जगत्** प्रपञ्चं, **त्रातुं** रक्षितुं, **शम्भोः** सदाशिवस्य, **जयति** अहमेवेति स्फुरतीत्यर्थः। **करुणा** कृपात्मिका, **काचित्** अनिर्वाच्या, **अरुणा** अरुणाख्या शक्तिः। यद्वा—अरुणवर्णा काचित् करुणा कृपा करुणाया आरुण्यारोपात् मूर्ता करुणेव भातीति वाक्यार्थः। अरुणाख्या शक्तिरर्थादवगता॥

अत्रेत्थं पदयोजना—शम्भोः काचित् केशेषु अराळा मन्दहसिते प्रकृतिसरळा चित्ते शिरीषाभा कुचतटे दृषदुपलशोभा मध्ये भृशं तन्वी उरसिजारोहविषये पृथुः अरुणा करुणा जगत् त्रातुं जयति॥

अत्र कामेश्वर्याः अरुणाकरुणाशब्दाभ्यां निगीर्याध्यवसानात् अतिशयोक्तिः॥ ९३॥

**कलङ्कः कस्तूरी रजनिकरबिम्बं जलमयं**
**कलाभिः कर्पूरैर्मरकतकरण्डं निबिडितम्।**
**अतस्त्वद्भोगेन प्रतिदिनमिदं रिक्तकुहरं**
**विधिर्भूयोभूयो निबिडयति नूनं तव कृते॥**

**कलङ्कः** लाञ्छनं, **कस्तूरी** मृगनाभिः, **रजनिकरबिम्बं** चन्द्रबिम्बं, **जलमयम्**। स्वार्थे मयट्। पन्नीरमित्यर्थः। **कलाभिः** कलात्मकैः, **कर्पूरैः** सह **मरकतकरण्डं** मरकतमणिना रचितम्। मरकतशब्दो वर्णव्यत्ययेन मकरशब्दादुत्पन्नः मकरात् मकरतः। मकरवक्त्राज्जातं मरकतमिति भोजराजः। करण्डं **निबिडितं** अन्तःपूरितम्। **अतः** **त्वद्भोगेन** तव देव्याः उप-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



भोगेनानुभवेन कस्तूरीपन्नीरकर्पूराणां अनुभवेन, प्रतिदिनं दिनेदिने इदं परिदृश्यमानमिन्दुमण्डलं, रिक्तकुहरं शून्यान्तरं, विधिः ब्रह्मा, भूयोभूयः प्रतिदिनं, निबिडयति पूरयति। नूनं तव कृते तुभ्यमित्यर्थः।

अर्थे कृते च तादर्थ्ये निपातद्वयमीरितम्।

इति कृतेशब्दस्तादर्थ्ये निपातितः तद्योगे षष्ठ्येव॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! कलङ्कः कस्तूरी रजनिकरबिम्बं जलमयं कलाभिः कर्पूरैः निबिडितं मरकतकरण्डम्। अतः इदं प्रतिदिनं त्वद्भोगेन रिक्तकुहरं विधिः भूयोभूयः तव कृते निबिडयति नूनम्॥

अत्रातिशयोक्तिरलङ्कारः, मरकतकरण्डत्वेन चन्द्रमण्डलस्याध्यवसानात्। यद्वा—अपह्नवालङ्कारः, अयं कलङ्को न भवति अपि तु कस्तूरी; इदं रजनिकरबिम्बं न भवति किन्तु बहिःप्रतिफलितमन्तर्गतं पन्नीरं; इमाः कला न भवन्ति, अपि तु कर्पूररजः; इदमिन्दुमण्डलं अन्तस्स्थितद्रव्यप्रतिफन-वशात् पीतवर्णं प्रतीयते, वस्तुतस्तु श्वेतवर्णमेवेत्याद्यवस्थापह्नवमालायाः प्रतीतेः। उत्प्रेक्षालङ्कारश्च; प्रतिपदादिदिनेषु वृद्धिक्षयवतः चन्द्रमसः कस्तूर्यादिद्रव्यव्ययप्रवेशाभ्यां ईषद्रिक्तत्वसंपूर्णत्वयोस्सम्भावनात्। अतः अनयोरनुसृष्टिः अङ्गाङ्गिभावेन पृथक्स्थित्या अवस्थानात्॥ ९४॥

**पुरारातेरन्तःपुरमसि ततस्त्वच्चरणयोः**
**सपर्यामर्यादा तरलकरणानामसुलभा।**
**तथा ह्येते नीताश्शतमखमुखास्सिद्धिमतुलां**
**तव द्वारोपान्तस्थितिभिरणिमाद्याभिरमराः॥**

पुरारातेः पुरान्तकस्य, अन्तःपुरं अवरोधः पट्टमहिषीति यावत्। असि भवसि। ततः तस्मात्कारणात्, त्वच्चरणयोः तव पादयोः, सपर्या-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



मर्यादा पूजाप्रकारः, **तरलकरणानां** चञ्चलचित्तानां, **असुलभा** दुर्लभा। अन्तःपुरप्रवेशः चञ्चलचित्तानां नास्तीति प्रसिद्धम्। अतो निश्चलचित्तैस्तु सौविदल्लैः प्रवेष्टव्यमिति नीतिवाक्यामृते। निर्मलचित्तैरेव सुधाम्भोधिमध्यस्थितायाः पादाम्बुजसेवा ज्ञायते नान्यैरित्यर्थः। **तथा, हिः** प्रसिद्धौ। **एते नीताः शतमखमुखाः** इन्द्रमुख्याः सुरगणाः, **सिद्धिं** संसिद्धिं, **अतुलां** असदृशीं, **तव** भवत्याः **द्वारोपान्तस्थितिभिः** द्वारसमीपे स्थितयो यासां ताभिः। **अणिमाद्याभिः** अणिमाप्रमुखाभिः सिद्धिभिस्सह **अमराः** निर्जराः॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! पुरारातेरन्तःपुरमसि। तत-स्त्वच्चरणयोस्सपर्यामर्यादा तरलकरणानामसुलभा। तथा हि—एते शत-मखमुखाः अमराः तव द्वारोपान्तस्थितिभिः अणिमाद्याभिस्सह अतुलां सिद्धिं नीताः। यथा तत्र द्वारोपान्तमेव अणिमादिसिद्धयस्सेवन्ते एवमिन्द्रा-दयोऽपि। इयांस्तु विशेषः—अणिमाद्यष्टसिद्धीनां द्वारपालकत्वेन सर्वदा तत्र वासः स्वभावसिद्धः। इन्द्रादीनां तु तरलकरणत्वात् अन्तःपुरप्रवेशानर्हत्वात् दौवारिकानुमत्या द्वारदेशेऽवस्थानं सिद्धिशब्दार्थ इति तात्पर्यम् ॥ ९५ ॥

**कळत्रं वैधात्रं कतिकति भजन्ते न कवयः**
**श्रियो देव्याः को वा न भवति पतिः कैरपि धनैः।**
**महादेवं हित्वा तव सति सतीनामचरमे**
**कुचाभ्यामासङ्गः कुरवकतरोरप्यसुलभः ॥ ९६ ॥**

कस्मलात्त्रायत इति **कलत्रं** पत्नी। कस्मलं नरकं मध्यवर्णलोपः पृषो-दरादित्वात्साधुः। कलत्रं कस्मलात्त्रायत इति रक्षितः। **वैधात्रं** विधातृ-सम्बन्धि। विधातृशब्दस्य 'तस्येदम्' इत्यणि कृते संबन्धमात्रपरत्वे तद्विशेष-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



जिज्ञासायां कलत्रशब्दस्यान्वय इति। धातुः कलत्रमित्युक्ते तु सम्बन्धमात्रे विहिता षष्ठी सबन्धिन्येव पर्यवस्यतीति साक्षादन्वय इति भावः। अतो नायं प्रयोगो दोषावहः। वैधात्रं कलत्रं सरस्वतीं **कतिकति भजन्ते** सेवन्ते। **न कवयः** के वा कवयो न भजन्ते सर्वेऽपि भजन्त इत्यर्थः। **श्रियो देव्याः** लक्ष्म्याः, **को वा न भवति पतिः** [1]**कैरपि धनैः**। **महादेवं** सदाशिवं, **हित्वा तव** भवत्याः, **सति!** पतिव्रते! **सतीनां** पतिव्रतानां, **अचरमे!** अग्रगण्ये! **कुचाभ्यां आसङ्गः** आलिङ्गः, **कुरवकतरोरपि असुलभः** सुलभो न भवति। कुचालिङ्गनं दोहदत्वेनापि कुरवकतरोरचेतनस्यापि न सम्भवति, किमु वक्तव्यं पुरुषान्तर इति पातिव्रत्यं वाचामगोचरमिति भावः॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे सति! वैधात्रं कलत्रं कतिकति कवयः न भजन्ते। श्रियो देव्याः कैरपि धनैः को वा पतिः न भवति। हे सतीनामचरमे! महादेवं हित्वा तव कुचाभ्यामासङ्गः कुरवकतरोरप्यसुलभः॥

अयमर्थः—ये मन्त्रजपाद्यासादितसारस्वताः ते सरस्वतीवल्लभा इति गीयन्ते। ये धनधान्याश्वगजादिसमृद्धिमन्तः ते लक्ष्मीपतयः इति गीयन्ते। पार्वतीपतिस्तु महादेव एवेति पातिव्रत्यमहिमा अवाङ्मनसगोचर इति॥९६॥

**गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो**
**हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमाद्रितनयाम्।**
**तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिस्सीममहिमा**
**महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषि॥९७॥**

---

[1] अधिपतिरित्यधिकः.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**गिरां** वाचां, **आहुः** कथयन्ति। **देवीं** अधिदेवतां, **द्रुहिणगृहिणीं** ब्रह्मणः पत्नीं, **आगमविदः** आगमरहस्यवेदिनः, **हरेः** विष्णोः, **पत्नीं** जायां, **पद्मां** पद्मालयां, **हरसहचरीं** शम्भुपत्नीं **अद्रितनयां** पार्वतीम्। **तुरीया** चतुर्थी, **कापि** अनिर्वाच्या, **त्वं** **दुरधिगमनिस्सीममहिमा** दुःखेन अधिगन्तुं शक्यः स चासौ निस्सीमो महिमा यस्यास्सा, देशतः कालतो वस्तुतश्चापरिच्छेद्येत्यर्थः। **महामाया** शुद्धविद्यान्तर्गतं मायातत्त्वं, **विश्वं** प्रपञ्चं, **भ्रमयसि** विवर्तयसीति विवर्तं ब्रह्मधर्मं मायायामतिदिशति। **परब्रह्ममहिषि** परब्रह्मणः सदाशिवस्य महिषि! तथा च श्रूयते–'ह्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ'* इति पुरुषसूक्ते। ह्रीः भुवनेश्वरी लक्ष्मीः श्रीविद्या उभे ब्रह्मणस्ते पत्न्यौ। अत्र तयोर्मध्ये श्रीविद्यायाः प्राधान्यं, श्रीविद्यायां भुवनेश्वर्या अन्तर्भावात्। भुवनेश्वर्यां न श्रीविद्याया अन्तर्भाव इति चन्द्रकलाप्राधान्येन सैव महिषीति ध्येयम्॥

अत्रेत्थं पदयोजना–हे परब्रह्ममहिषि! आगमविदः त्वामेव द्रुहिणगृहिणीं गिरां देवीमाहुः; त्वामेव हरेः पत्नीं पद्मामाहुः, त्वामेव हरसहचरीं अद्रितनयामाहुः, त्वं तुरीया कापि दुरधिगमनिस्सीममहिमा महामाया सती विश्वं भ्रमयसि॥

अयमर्थः—एकामेव भगवतीं नानानामभिः गृणन्त्यागमविदः परब्रह्ममहिषी श्रीविद्यापरनामधेया चन्द्रकला एकैवेति॥ ९७॥

**कदा काले मातः कथय कलितालक्तकरसं**
**पिबेयं विद्यार्थी तव चरणनिर्णेजनजलम्।**

---

*तै. आ. ३-१३.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



प्रकृत्या मूकानामपि च कविताकारणतया
कदा धत्ते वाणीमुखकमलताम्बूलरसताम् ॥

**कदा** काले जन्मप्रभृत्यवसानपर्यन्त इति शेषः। **मातः!** जननि! **कथय** सम्यगुपदिश। **कलितालक्तकरसं** कलितं उपदिग्धं अलक्तकरसं लाक्षारसं यावकं वा। स्त्रीणां पादाङ्गुष्ठरञ्जनार्थं अलक्तकद्रवं उपदिहन्ति सैरन्ध्र्यः। **पिबेयं** प्रार्थनायां लङ्। **विद्यार्थी** विद्याः अर्थयत इति विद्यार्थी। यद्वा—अर्थः प्रयोजनमस्य अर्थी विद्याभिः अर्थीति। अत्र रक्षित आह—अर्थशब्दान्मत्वर्थे* इनिप्रत्यय इति। अत एव 'तेनार्थवान् लोभपराङ्मुखेन' इति कालिदासेन मतुबेव प्रयुक्तः। माघे—'नितान्तमर्थिनः' इति णिनिरेव। 'अर्थी समर्थो विद्वान्' इत्यादावपि णिनिरेव। अत एव पूर्वव्याख्यैव समीचीना। तव भवत्याः, **चरणनिर्णेजनजलं** चरणयोः पादयोः निर्णेजनजलं पाद्योदकं, **प्रकृत्या** स्वभावेन **मूकानां, अपिः** विरोधे, चकारश्शङ्काच्छेदे, **कविताकारणतया** कवितायाः हेतुतया, **कदा धत्ते वाणीमुखकमलताम्बूलरसतां** वाण्याः सरस्वत्याः मुखकमले यस्ताम्बूलरसः तस्य, भावस्तत्ता ताम् ॥

अयं भावः—भगवतीपादारविन्दनिर्णेजनजलं सालक्तकं कविताहेतुः कवीश्वरस्य वदने स्थितं सरस्वतीताम्बूलरस इव प्रत्यक्षं भाति। स तु कवीश्वरः पुम्भावमापन्ना सरस्वतीवाभातीति ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे मातः! तव कलितालक्तकरसं चरणनिर्णेजनजलं विद्यार्थी अहं कदा काले पिबेयं कथय। तच्च प्रकृत्या मूकानां अनेडमूकानां वक्तुं श्रोतुं अशिक्षितानामपि च कविताकारणतया वाणीमुखकमलताम्बूलरसतां कदा धत्ते ॥

---

* का—. .शब्दभावार्थे.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अत्रेदमनुसन्धेयम्—भगवत्पादैः अनेडमूकेभ्यः लघुचर्चास्तोत्रद्वयं हस्तमस्तकसंयोगमहिम्ना अवाचि। तन्महिम्ना भगवती पादारविन्दनिर्णेजनजलं तन्मुखे दत्तवती। तन्निर्णेजनजलं पुनः प्रार्थयत्याचार्यः। अनेन सामीप्यमुक्तिरुदिता। तद्विशेषानुत्तरश्लोके विवरिष्यामः। चरणनिर्णेजनजलमिति वदता समयिमतमेवोक्तं, कौलमते भुजगाकारेणैव देव्या अवस्थानात् चरणनिर्णेजनजलस्याभावात्। सहस्रकमल एव चरणनिर्णेजनजलमिति पूर्वमेव बहुधा प्रपञ्चितम्। अत एव—

सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसः ॥*

इतीदमर्धं समयमतप्रतिपादकम्।

अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं
स्वमात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणि ॥*

इतीदमर्धं कौलमतप्रतिपादकमिति विवेकः॥

अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः, चरणनिर्णेजनालक्तकरसस्य सरस्वतीताम्बूलरसत्वेनाध्यवसानात्। समयिनः साक्षात्सरस्वतीस्वरूपत्वेनाध्यवसानाच्च उत्प्रेक्षातिशयोक्त्योस्सङ्करः॥ ९८॥

प्रक्रान्तां स्तुतिं उपसंहरन् षट्कमलभेद[1]सिद्धान्तं निर्दिशति—

**सरस्वत्या लक्ष्म्या विधिहरिसपत्नो विहरते**
**रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा।**
**चिरंजीवन्नेव क्षपितपशुपाशव्यतिकरः**
**परानन्दाभिख्यं रसयति रसं त्वद्भजनवान्॥**

* दशमः श्लोकः, [1] शास्त्रभेद.



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



सरस्वत्या भारत्या, लक्ष्म्या पद्मालयया, विधिहरिसपत्नः—यथाक्रममिति शेषः। सरस्वतीपतित्वेन विधेः ब्रह्मणः सपत्नः असूयास्पदम्, लक्ष्मीपतित्वेन हरेः असूयास्पदमित्यर्थः। विहरते विहरमाणः, रतेः काममहिष्याः, पातिव्रत्यं पतिव्रताधर्मं पुरुषान्तरासंपर्करूपं, शिथिलयति, मन्मथाकारतया रतेः मन्मथभ्रान्तिं जनयन् सम्भोगेच्छां जनयतीति भावः। रम्येण अतिसुन्दरेण, वपुषा शरीरेण, तादात्म्यबुध्येति यावत्। एवं सादाख्यायाः कलायाः उपासकस्य ऐहिकफलमुक्त्वा आमुष्मिकमप्याह—चिरंजीवन्नेव नित्यजीवनस्सन्। सावयवद्रव्यस्य नित्यत्वं पशुपाशव्यतिकरक्षपणहेतुकम्। अत्र केवलव्यतिरेकि अनुमानं साधनत्वेन प्रयोज्यम्—सावयवं यत् क्षपितपशुपाशव्यतिकरं न भवति, तन्नित्यं न भवति, यथा पश्वादि, इति जीवन्मुक्तिसिद्धिः। सावयवाः कपिलादयः, मार्कण्डेयादयो नित्यसिद्धाः, अतः अन्वयव्यतिरेकि वा भवतु सावयवस्य नित्यतायां साधनम्। एवं नित्यजीवनस्सन् क्षपितपशुपाशव्यतिकरः क्षपितः विनष्टः पशुपाशयोः व्यतिकरः। पशुः जीवः, इन्द्रियैः प्रपञ्चं पश्यतीति। यद्वा—पश बन्धने इत्यस्माद्धातोः पशुः अविद्याबद्धो जीवः, पाशः अविद्या। एतच्च श्रूयते—

अदि॑तिः पाशं॒ प्र मु॑मोक्त्वे॒तन्नमः॑
प॒शुभ्यः॑ पशु॒पत॑ये करोमि ॥*

अस्यार्थः—अदितिः आदित्यमण्डलान्तर्गता बैन्दवी शक्तिः। पाशं अविद्याकृतं बन्धं प्रमुमोक्तु प्रकर्षेण अत्यन्तं मोचयतु। एतत् नमः नमस्कारं पशुपतये करोमि। पशुभ्य इति तादर्थ्ये चतुर्थी। तदर्थत्वं निवृत्तिः। पशुत्वनिवृत्त्यर्थम्। अयमर्थः—अदितिः पशुपतिना सदाशिवेन युक्ता पाशविमोचनं करोत्विति। पशुशब्दस्य जीववाचित्वं

* तै. सं. ३ १-४.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



तैत्तिरीयके सौम्यकाण्डे 'तेषामसुराणाम्'* इत्यनुनाके तेषामसुराणामित्यारभ्य 'तस्माद्रुद्रः पशूनामधिपतिः' *इत्यन्तेन प्रतिपादितम्। अतः पशुपाशौ जीवाविद्ये, तयोर्व्यतिकरः सम्बन्धः, स च क्षपितः विदलितपशुपाशसम्बन्धः सदाशिवतत्त्वात्मनाऽवस्थितः, परानन्दाभिख्यं परानन्दात्मिका अभिख्या ज्योतिर्यस्य सः तं परानन्दाभिख्यं ज्योतीरूपं, रसयति आह्लादयति रसं, सुखं, त्वद्भजनवान् त्वद्भक्तः—तव भजनं सेवा॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे भगवति! त्वद्भजनवान् सरस्वत्या लक्ष्म्या विधिहरिसपत्नस्सन् विहरते। रम्येण वपुषा रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति। क्षपितपशुपाशव्यतिकरः चिरंजीवन्नेव परानन्दाभिख्यं रसं रसयति॥

अत्रेदमनुसन्धेयम्—जीवन्मुक्तानां अविद्यानिवृत्तावपि कुलालचक्रभ्रमणन्यायेन देहसम्बन्धः। यथोक्तं षष्टितन्त्रे सप्तत्याम्—

सम्यग्ज्ञानाधिगमाद्धर्मादीनामकारणप्राप्तौ।
तिष्ठति संस्कारवशाच्चक्रभ्रमवद्धृतशरीरः॥ इति॥

अत्र त्वद्भजनवानित्यत्र द्विविधं भजनं—षट्चक्रसेवात्मकं धारणात्मकं च। आद्यं निरूप्यते—आधारस्वाधिष्ठाने तामिस्रलोकत्वात् नोपास्ये। मणिपूरप्रभृतिसहस्रकमलपर्यन्तं पञ्च चक्राणि पूज्यानीति। तत्र मणिपूरकपूजापराणां सार्ष्टिरूपा मुक्तिः। सार्ष्टिर्नाम देव्याः पुरसमीपे पुरान्तरं निर्माय सेवां कुर्वाणस्य अवस्थितिः। संवित्कमलपूजारतानां सालोक्यमुक्तिः। सालोक्यं नाम—देव्याः पट्टणे निवासः। विशुद्धिचक्रोपासकानां सामीप्यमुक्तिः। समीप्यं नाम अङ्गसेवकत्वम्। आज्ञाचक्रोपासकनां सारूप्यमुक्तिः।

---

* तै. सं. ६-१-३.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



सारूप्यं नाम समानरूपत्वम्। पृथग्देहधारित्वेनेति सायुज्याद्भेदः। एतत् चतुर्विधं गौणं बाह्यदुःखातिवर्तित्वमात्रात् मुक्तिरिति व्यपदिश्यते। परं तु सायुज्यात्मिकैव शाश्वती मुक्तिः सहस्रकमलोपासकानामेवेति। अत एव परानन्दाभिख्यं रसं यथायोग्यं त्वद्भजनवान् रसयति इति॥

अत्रेदं मततत्त्वत्—षट्कमलभेदमते सुखस्वरूपैव मुक्तिः। सुखं तु लौकिकदृष्टान्तेन स्त्रीसंभोगात्मिकै(त्मकमे)व। लोकेऽपि स्त्रीसम्मेलनात् परं सुखं नास्ति। एवमत्यन्तदुःखोच्छेदानन्तरं सायुज्यसंसिद्धौ शिवशक्तिसम्पुटान्तर्भावात् तदात्मिकैव मुक्तिरिति॥

तदयमत्र निष्कर्षः—पूर्वं मूलाधारादिषट्चक्राणां त्रिकोणाष्टकोणदशारद्वितयमन्वश्रशिवचक्रात्मना तादात्म्यं प्रतिपादितम्। एतदेव नादबिन्द्वोरैक्यम्। तथा हि—नादो नाम श्रीचक्रम्। बिन्दुर्नाम षट्कमलगहनं वक्ष्यते। तयोरैक्यं नाम—आधारचक्रं चतुर्दलं, तत्कर्णिका त्रिकोणात्मिका; स्वाधिष्ठानं षड्दलं, तत्कर्णिका अष्टकोणात्मिका; मणिपूरं दशदलं पद्मं, तत्कर्णिका दशकोणात्मिका; अनाहतं द्वादशदलं, तत्कर्णिका द्वितीयदशकोणात्मिकैव; विशुद्धिचक्रं षोडशदलं, तत्कर्णिका चतुर्दशकोणात्मिका; एतावत्पर्यन्तं शक्तिचक्रैक्यम्। आज्ञाचक्रं द्विदलं, अष्टकोणमेकत्र षोडशकोणमपरत्रेति द्विधा भिन्ना कर्णिका। अयं भावः—[1]द्विधा भिन्नं चतुरश्रप्रकृतिकं शिवचक्रचतुष्टयात्मकं आधारस्वाधिष्ठानात्मकं चेति प्रपञ्चितम्। वृत्तत्रयं स्वाधिष्ठानान्ते एकं वृत्तं रुद्रग्रन्थ्यात्मकं; अनाहतान्ते एकं विष्णुग्रन्थ्यात्मकं, आज्ञाचक्रान्ते एकं ब्रह्मग्रन्थ्यात्मकम्। तत उपरि चतुर्द्वारोपेतं भूपुरं[2]त्रितयं द्वारेषु चतुर्षु सोपानयुक्तम्। तच्च सहस्रदलकर्णिका। तस्य कमलस्य दलानि सहस्रम्। बैन्दवस्थानं चतुर्द्वारोपेतं कर्णिकामध्ये।

[1] द्विदलाद्भिन्नम्. [2] त्रितयोपेतं पुरत्रयम्.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



एवं प्रासादन्यायेन श्रीचक्रस्य कमलानां चैक्यमनुसन्धेयम्। एतच्च नाद-बिन्द्वैक्यं गुह्यात् गुह्यतमं शिष्यानुग्रहात् उपदिष्टम् ॥

अस्मिन् षट्चक्रे पञ्चाशत्कलानामन्तर्भावः कथितः। चन्द्रखण्डे स्वराः, सूर्यखण्डे स्पर्शाः, अग्निखण्डे अन्तस्थाः ऊष्माणश्च हकारवर्जिताः, हकारळकारौ बैन्दवे, क्षकारस्सर्वत्रेति *'सवित्रीभिः' इति श्लोकेन प्रागेव प्रतिपादितम्। मूलाधारादिदलेषु कलानां अन्तर्भावः प्रागेव प्रतिपादितः। कलानां तिथ्यात्मकत्वं, नित्यानां कलात्मकत्वं, कलानां मूलमन्त्रगतपञ्चदशाक्षरात्मकत्वं, पञ्चदशाक्षराणां त्रिखण्डत्वं, त्रिखण्डस्य सोमसूर्यानलात्मकत्वं, सोमसूर्यानलानां ग्रन्थित्रयात्मकत्वं, ग्रन्थित्रयस्य मन्त्रगतह्रीङ्कारत्रयात्मकत्वं, ह्रीङ्कारस्य भुवनेश्वरीमन्त्रत्वं, भुवनेश्वरीमन्त्रस्य मूलमन्त्रान्तर्गतत्वं मूलमन्त्रस्य चक्रेणैक्यं, तच्चक्रनवकस्य मूलाधारादिषट्चक्रेषु ब्रह्मग्रन्थ्यादित्रिकेऽपि सहस्रकमलकर्णिकादौ तादात्म्यम्। एतदेव कलानादयोरैक्यं नाम ॥

अयमत्र निष्कर्षः—नादेन बिन्दोरैक्यं, बिन्दुना कलायाः ऐक्यं, कलायाश्च नादेनैक्यं, एवं त्रितयं; कलया बिन्दोरैक्यं, कलया नादस्यैक्यं, श्रीविद्यया पञ्चकस्यैक्यमिति षड्विधत्वमैक्यस्येति परमरहस्यं गुरूपदेशवशात् ज्ञेयम्। एवं षोढैक्यं भगवत्यास्सपर्येति सम्यगुपवर्णितम्। षोढैक्यानुसन्धानानन्तरं दशभुजा भगवती श्रीविद्या मणिपूरे प्रत्यक्षं परिदृश्यमाना सपर्यया सन्निधेयेति ऐक्यानुसन्धानमेव सपर्येति वदतो ममाशय इति विज्ञेयम्।

अधुना बिन्दुस्वरूपं प्रपञ्च्यते–बिन्दुरिति मूलाधारादिचक्रषट्कम्। बिन्दुः जगदुत्पत्तिलयहेतुः शिवस्य शक्तिविशेषः। स च एक एव सहस्रकमलान्तर्गतचतुर्द्वारात्मककर्णिकामध्यगतचतुष्कोणात्मकं शक्तितत्त्वम्। तन्म-

* १७ श्लो.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



ध्यगतशिवतत्त्वं नाद इत्युच्यते। स चतुर्विध इति प्रागेवोक्तम्। उभयोस्शक्तिशिवयोः शब्दार्थरूपत्वात् कलात्मकत्वं उभयसाधारणम्। अतश्च मेलनं नादबिन्दुकलातीतमिति समयमतरहस्यम्। स च बिन्दुः दशधा भिद्यते। यथोक्तम्—

दशधा भिद्यते बिन्दुः एक एव परात्मकः।
चतुर्धाऽऽधारकमले षोढाऽधिष्ठानपङ्कजे॥
उभयाकाररूपत्वात् इतरेषां तदात्मता। इति।

अस्यार्थः—एक एव बिन्दुः मूलाधारकमलगतचतुर्दलेषु चतुर्धा, स्वाधिष्ठानपद्मगतषट्दलेषु षोढा, एवं दशधा भिद्यते। अयं भावः—मूलाधारं चतुष्पत्रं सरसिजं, स्वाधिष्ठानं षड्दलं, मणिपूरं दशदलं, अनाहतं पद्मं द्वादशदलं, विशुद्धिपद्मं षोडशदलं, आज्ञाचक्रं द्विदलमिति सर्वयोगशास्त्रसिद्धम्। अत्र आधारपद्मस्य दलचतुष्टयं बिन्दुचतुष्टयात्मकम्। ते च बिन्दवो मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्ताख्याः प्रकृत्यात्मकाः जगन्निर्माणहेतव इति सर्वयोगशास्त्रसिद्धम्। स्वाधिष्ठानपद्मगतषड्दलानां कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यात्मकाः षड्बिन्दवः। अत एव ते संहृतिबिन्दव इत्याहुः। तदुक्तं भगवता पतञ्जलिना—'स्वाधिष्ठाने संहारः षड्बिन्दुकृतः' इति। एवं दश बिन्दवः कमलद्वयदलात्मकाः। मणिपूरं मूलाधारस्वाधिष्ठानात्मकमिति कृत्वा दशदलम्। अनाहतचक्रे मणिपूरप्रकृतिकं दशदलं, पूर्वकमलद्वयप्रकृतिकं दलद्वयं द्वादशदलं अनाहतपद्मम्। विशुद्धिपद्मं तु अनाहतचक्रप्रकृतिकं द्वादशदलम्, आधारप्रकृतिकं चतुर्दलं, एवं षोडशदलम्। तथा मणिपूरप्रकृतिकं दशदलं स्वाधिष्ठानप्रकृतिकं षड्दलमिति षोडशदलम्। आज्ञाचक्रं तु आधारस्वाधिष्ठानात्मकमिति द्विदलम्। एवं मणिपूरप्रभृति आज्ञान्तानि चत्वारि कमलानि मूलाधारस्वाधिष्ठानप्रकृतिकानि। अत एव मूलाधारद्विके उत्तरकमलचतुष्कमन्तर्भूतमिति एकस्यैव बिन्दोः दशधात्वं नान्यथेति सिद्धम्॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



यद्यपि कौलानां द्विकानुसन्धानात् षट्कमलानुसन्धानफलं सेत्स्यति, तथापि षड्विधैक्यानुसन्धानाभावात् कुलमार्ग एवेति न देव्या मणिपूरे सान्निध्यं, पञ्चविधमुक्तियुक्त्यभावश्च, नादबिन्दुकलातीतत्वमप्यसंभाव्यमेव कौलमते इति । समयिनां तु कार्यभूतचतुष्कानुसन्धानादेव कारणभूतकमलद्वयानुसन्धानफलं सेत्स्यतीति । अत एव पञ्चविधसाम्यसिद्धौ समयसमयिभावः प्रत्यक्षं परिदृश्यते समयसमयिनोः समयिनां सेवकानामिति भगवत्पादमततत्त्वम् ॥

एवं भजनशब्दार्थं प्रतिपाद्य प्रकारान्तरेण भजनशब्दार्थो निरूप्यते—यदाहुः भगवत्पादाः 'धारणापरिज्ञानान्मुक्तिः' इति । अस्यार्थः—धारणाः षष्ट्युत्तरत्रिशतसङ्ख्याकाः । धारणा नाम वायोः कमलेषु नादकलाभ्यां निरोधः । स च षट्कमलेषु षोढा सप्तमे कमले समयशब्दाभिलप्येन सार्धं सप्तविधः । एकैकस्मिन् कमले पञ्चाशदिति षष्ट्युत्तरत्रिशतं धारणाः (?)। ताश्च पृथक् नादबिन्दुकलाभिस्सार्धं मेलनप्रकारैरनन्ता धारणा गुरूपदेशवशादगन्तव्याः । धारणानां फलं आधारादिचक्रषट्के यथाक्रमं मतिस्मृतिबुद्धिप्रज्ञामेधाप्रतिभासंविद्रूपं दिङ्मात्रं दर्शितम् । अधिकं तु सुभगोदये चरणागमे च सप्रपञ्चं बहुधा प्रतिपादितं तत एवावधार्यं ग्रन्थविस्तरभयान्नोपवर्णितमिहेति । अत एव काळिदासभगवत्पादैः कुलसमयमतभेदप्रतिपादकश्लोकेन सकलजननीस्तोत्रे कथितम् । यथा—

चतुष्पत्रान्तष्षड्दलपुटभगान्तस्त्रिवलय-
स्फुरद्विद्युद्वह्निद्युमणिनियुताभद्युतिलते ॥
षडश्रं भित्वाऽऽदौ दशदलमथ द्वादशदलं
कलाश्रं च द्व्यश्रं गतवति नमस्ते गिरिसुते ॥

अस्यार्थः—चतुष्पत्रं आधारकमलं अन्तः अन्तस्स्थितं अन्तर्भूतमित्यर्थः, यस्मिन् तत् स्वाधिष्ठानमिति बहुव्रीहिः, न तु तत्पुरुषः, उत्तरस्य पूर्वस्मिन्नन्त-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



र्भावायोगात्। 'षडश्रं भित्त्वाऽऽदौ' इत्युत्तरवाक्यानन्वयाच्च बहुव्रीहिरेव। चतुष्पत्रान्तश्च तत् षड्दलं स्वाधिष्ठानं च चतुष्पत्रान्तष्षड्दलम्। तस्य पुटभगाः पुटात्मकाः सम्पुटात्मकाः तत्प्रकृतिका इति यावत्, ते च ते भगाः त्रिकोणानि। मणिपूरप्रभृति चतुश्चक्रस्य मूलाधारप्रकृतिकत्वस्योक्तत्वात् तेषां त्रिकोणात्मकत्वम्। 'त्रिकोणे बैन्दवं श्लिष्टं अष्टारेऽष्टदलाम्बुजम्' इत्यत्र सम्यङ्निर्णीतम्। पुटभगानां अन्तः मध्ये। त्रिवलयं ग्रन्थित्रयं स्वाधिष्ठानानाहताज्ञान्तेषु अग्निसूर्यचन्द्रात्मकरुद्रग्रन्थिविष्णुग्रन्थिब्रह्मग्रन्थिपर्यायत्वेन स्थितमित्यर्थः। तत्र स्फुरत् स्फुरन्ती। 'स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे' इत्यादिना पुंवद्भावः। विद्युतः सौदामिन्याः वह्नेः अग्नेः द्युमणेस्सूर्यस्य। नियुतशब्दः अगाणेयां सङ्ख्यां लक्षयति। तस्येवाभा यस्यास्सा, सा च सा द्युतिलता, नित्या तटिद्वल्ली स्थिरसौदामिनीति यावत्। तस्याः सम्बुद्धिः। आज्ञाचक्रान्ते ब्रह्मग्रन्थिभेदनसमये विद्युन्नियुताभा, स्वाधिष्ठानान्ते रुद्रग्रन्थिभेदनसमये वह्निनियुताभा, अनाहतचक्रान्ते विष्णुग्रन्थिभेदनसमये द्युमणिनियुताभा इति विवेकः। षडश्रं मूलाधारगर्भितं स्वाधिष्ठानं आदौ भित्त्वा अथ तदनन्तरं दशदलं मणिपूरं भित्त्वा द्वादशदलं अनाहतचक्रं भित्त्वा कलाश्रं विशुद्धिचक्रं भित्त्वा द्व्यश्रं आज्ञाचक्रं भित्त्वा गतवति सहस्रकमलमिति शेषः। हे गिरिसुते! हिमाचलतनये! ते नमः॥

अत्र चतुष्पत्रं मूलाधारं स्वाधिष्ठाने अन्तर्भूतं कौलाः उपासत इति प्रागेव प्रतिपादितम्। समयिनस्तु स्वाधिष्ठानं भित्त्वा मणिपूरं प्रविष्टायाः देव्याः उपासनं कुर्वन्तीति समयमततत्त्वं च प्रतिपादितम्। अत्रेदमुपह्वरं— षट्कमलेषु मनष्षष्ठं भूतपञ्चकं तादात्म्येनावतिष्ठते। तच्च पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यानुसन्धानमहिम्ना षट्कमलानुसन्धानमहिम्ना पञ्चविधसाम्यानुसन्धानमहिम्ना षड्विधैक्यानुसन्धानमहिम्ना पिण्डाण्डं ब्रह्माण्डवदवभासत इति सर्वयोगशास्त्र-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



रहस्यम् । अत एव योगिना चतुर्विधैक्यानुसन्धानं. कर्तव्यमेव । तथा च श्रूयते—

**पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं लिङ्गसूत्रात्मनोरपि ।**
**स्वापाव्याकृतयोरैक्यं क्षेत्रज्ञपरमात्मनोः ॥**

अयमर्थः—पिण्डाण्डब्रह्माण्डयोरैक्यं ज्ञातव्यम् । तदनन्तरं लिङ्गात्मसूत्रात्मनोरैक्यं अवगन्तव्यम् । लिङ्गात्मा लिङ्गशरीरं एकादशेन्द्रियगणः तन्मात्रापञ्चकं षोडशकं लिङ्गशरीरम् । सूत्रात्मा ब्रह्माण्डावच्छिन्नो वायुः लिङ्गशरीरस्य अर्चिरादिमार्गप्रापकः । तयोरैक्यमवगन्तव्यम् । स्वापाव्याकृतयोः—स्वापः सुषुप्त्यवस्थापन्नः साक्षी प्राज्ञः अव्याकृतः अविद्याशबलितं ब्रह्म तयोरैक्यम् । क्षेत्रज्ञः जीवः, परमात्मा ब्रह्मस्वरूपं, तयोरैक्यं ज्ञातव्यम् । एवं संप्रदायरहस्यसंक्षेपः । विस्तरस्तु सुभगोदये शारीरके ज्ञातव्यः । अस्मिन् श्लोके सौन्दर्यलहर्या यावत्प्रमेयजातं समयसिद्धान्तरहस्यत्वेन कौलसिद्धान्तरहस्यत्वेन च प्रतिपादितमस्माभिः संक्षेपतः तत्सर्वं सूक्ष्मदृशा महात्मभिरनुसन्धेयमिति सर्वमनवद्यम् ॥ ९९ ॥

## प्रदीपज्वालाभिर्दिवसकरनीराजनविधिः
## सुधासूतेश्चन्द्रोपलजललवैरर्घ्यरचना ।
## स्वकीयैरम्भोभिस्सलिलनिधिसौहित्यकरणं
## त्वदीयाभिर्वाग्भिस्तव जननि वाचां स्तुतिरियम् ॥

प्रदीपस्य करदीपिकायाः, ज्वालाभिः कीलाभिः, दिवसकरस्य सूर्यस्य, नीराजनविधिः नीराजनकृत्यम्, सुधासूतेः चन्द्रस्य, चन्द्रोपलजललवैः चन्द्रोपलानां चन्द्रकान्तानां जललवैः निष्यन्दैः, अर्घ्यरचना । स्वकीयैः आत्मसम्बन्धिभिः, एतत्स्वकीयपदं प्रदीपज्वालाभिरित्यादौ व्यत्यये-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



नान्वेति स्वकीयाभिरिति । अम्भोभिः जलैः, सलिलनिधिसौहित्यकरणं समुद्रस्य तृप्तिहेतुः तर्पणविशेषः । त्वदीयाभिः त्वदुत्पन्नैः, त्वत्स्वरूपैः वाग्भिः वाक्यसंदर्भैः तव भवत्याः, जननि ! मातः ! सवित्रीत्यर्थः । वाचां वाक्प्रपञ्चस्य स्तुतिरियम् ॥

अत्रेत्थं पदयोजना—हे वाचां जननि ! यथा स्वकीयाभिः प्रदीपज्वालाभिः दिवसकरनीराजनविधिः, यथा स्वकीयैश्चन्द्रोपलजललवैः सुधासूतेरर्घ्यरचना भवति, यथा स्वकीयैरम्भोभिस्सलिलनिधिसौहित्यकरणं भवति, तथा त्वदीयाभिः वाग्भिरेव तवेयं स्तुतिः ॥

अत्र इयं स्तुतिरिति यदा पूर्वोक्तप्रदीपज्वालादिवाक्यप्रतिपादितार्थसाम्यपरामर्शः तदा प्रतिवस्तूपमालङ्कारः, उपमानोपमेययोर्वस्तुप्रतिवस्तुभावेनान्वयात् । यदा इयं स्तुतिरिति स्वरूपमात्रं परामृश्यते तदा भिन्नवाक्यत्वेन बिम्बप्रतिबिम्बाक्षेपात् दृष्टान्तालङ्कारः । एवं प्रतिवस्तूपमादृष्टान्तालङ्कारयोः अन्वयभेदेन प्रतीयमानत्वात् वाक्यद्वयाश्रयणात् संसृष्टिरेवेति ध्येयम् ॥

अस्मिन् सौन्दर्यलहरीश्लोकशतके 'समानीतः पद्भ्यां'* इति 'समुद्भूतस्थूलस्तनभरम्'† इति 'निधे नित्यस्मेरे'‡ इति श्लोकत्रयं वर्तते । तत्तु भगवत्पादरचितं न भवति केनचित्प्रक्षिप्तमिति न व्याख्यातम् । श्लोकशतकमेव व्याख्यातम् ॥ १०० ॥

इति श्रीलोल्लकुलसंप्रदायप्रवर्तकभ्रमराम्बिकावरप्रसादसमुल्लसितमहासारस्वतभट्टलोल्लपतिग्रन्थविवरणकर्तृ श्रीमहोपाध्यायमहादेवाचार्यसप्तमेन साहित्यपारिजातस्मृतिकल्पतरुप्रबन्धप्रबन्धृलक्ष्मीधरार्यषष्ठेन भरतार्णवपोताख्यसाहित्यमीमांसाग्रन्थद्वयप्रणेतृविरिञ्चिमिश्रपञ्चमेन मीमांसाद्वयजीवातुनिर्मातृपुरुषो-

* अयं 'अराळा केशेषु' इत्यनन्तरं पठ्यते. † अयं 'गिरामाहुः' इत्यनन्तरं पठ्यते. ‡ अयं 'सरस्वत्या' इत्यनन्तरं पठ्यते.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



त्तममहोपाध्यायनप्त्रा प्राभाकरामृतवाहिनीप्रभावलीखण्डनाद्यनेकप्रबन्धसन्दर्भ-प्रवर्तकनिरुदपदमहोपाध्यायलक्ष्मणार्यपौत्रेण नयविवेकदीपिकाप्रबन्धसंविधा--तृमहोपाध्यायविद्वत्सार्वभौमनूतनव्यासाद्यनेकबिरुदाङ्कितश्रीविश्वनाथभट्टारकतन-येन अधीतदशशतनयेन पार्वतीगर्भशुक्तिमुक्तारत्नेन बहूकृतक्रतधीचिरत्नेन लोल्लकुलकलशाम्बुधिसुधांशुना यशःप्रांशुना हरितगोत्रकल्पशाखिना आपस्तम्ब-शाखिना षड्दर्शनीपारदृश्वना प्रतिपक्षवृक्षजञ्झामातरिश्वना अमराम्बिकाप्रसाद-समासादितप्रतिभाविशेषेण भुवि शेषेण निखिलयामलतन्त्रार्णवावगाहनरुद्रेण आश्रयीकृतगजपतिवीररुद्रेण नीलगिरिसुन्दरचरणारविन्दचञ्चरीकेण वाणीसह-चरीकेण सरस्वतीविलासाद्यनेकस्मृतिनिबन्धनलक्ष्मीधराद्यनेकसाहित्यनिबन्धन-नयविवेकभूषणाद्यनेकगुरुमतनिबन्धनयोगदीपिकाद्यनेकपातञ्जलमतनिबन्धन--महानिबन्धनाख्यमानवधर्मशास्त्रटिकाकर्णावतंससबर्हावतंसाद्यनेककाव्यकल्पकेन आश्रितजनकल्पकेन निग्रहानुग्रहकौशिकेन श्रीमहोपाध्यायलक्ष्मीधरदेशिकेन कृतेयं लक्ष्मीधराख्या सौन्दर्यलहरीस्तुतिव्याख्या। अनया सन्तुष्टा भवतु भगवती भवानी ॥

अस्मदीयानां लक्ष्मीधराचार्याणां पद्यम्——

वयमिह पदविद्यां तन्त्रमान्वीक्षिकीं वा
यदि पथि विपथे वा वर्तयामस्स पन्थाः।
उदयति दिशि यस्यां भानुमान्सैव पूर्वा
न हि तरणिरुदीते दिक्पराधीनवृत्तिः ॥

सायं सम्फुल्लमल्लीसुमसुरभिसुधामाधुरीसाधुरीति-
प्रेङ्खत्पुङ्खानुपुङ्खस्फुरदमरसरिद्वीचिवाचालवाचः।
लोल्लश्रीलक्ष्मणाख्यो गुणमणिजलधिर्भासते भूसुराली-
केलीनालीकपालीदशशतकिरणो विद्वदग्रेसरोऽसौ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



यस्य सप्तमः—

यः कर्णाटवसुन्धराधिपमहास्थाने सुवर्णायितो
यो विद्वन्निकषायितो नृपगृहे वेमाख्यपृथ्वीशितुः।
श्रीमल्लोल्लटभट्टशिष्य इति यो लोल्लाख्यया श्रूयते
श्रीशेषान्वयशेखरस्स हि महादेवो विपश्चिन्महान्॥

तस्योक्तिः—

निकषायितुमीहे वा सुवर्णायितुमेव वा।
सुवर्णायितुमेवेहे निकषो न ह्यलङ्क्रिया॥
तर्कन्यक्कृतवावदूकनिचयं वादित्वमास्तां मम
व्याख्यातृत्वमुदारशिष्यनिवहश्लाघ्यं तथा तिष्ठतु।
स्वर्लोकच्यवमानसिद्धतटिनीकल्लोलसल्लापिना-
मुल्लासा वचसां न कस्य मनसां मत्काश्चमत्कारिणः॥
गतोऽयं शङ्कराचार्यो वीरमाहेश्वरो गतः।
षट्चक्रभेदने को वा जानीते मत्परिश्रमम्॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

# सौन्दर्यलहरीगतपद्यानां वर्णक्रमेण सूची


| | श्लोकसं. |
|---|---|
| अमू ते वक्षोजौ .... | ७३ |
| अराळं ते ... | ५८ |
| अराळा केशेषु ... | ९३ |
| अराळैस्स्वाभाव्यात् .... | ४५ |
| अविद्यानां .... | ३ |
| अविश्रान्तं ... | ६४ |
| असौ नासा .... | ६१ |
| अहस्सूते .... | ४८ |
| कदा काले मातः .... | ९८ |
| कराग्रेण स्पृष्टं ... | ६७ |
| करीन्द्राणां शुण्डान् ... | ८२ |
| कवीनां संदर्भ- ... | ५० |
| कवीन्द्राणां ... | १६ |
| कलङ्कः कस्तूरी .... | ९४ |
| कलत्रं वैधात्रं .... | ९६ |
| किरन्तीमङ्गेभ्यः ... | २० |
| किरीटं वैरिञ्चं ... | २९ |
| कुचौ सद्यस्स्विद्यत् .... | ८० |
| क्वणत्काञ्चीदामा ... | ७ |
| क्षितौ षट्पञ्चाशत् ... | १४ |
| गतास्ते मञ्चत्वं .... | ९२ |
| गते कर्णाभ्यर्णं ... | ५२ |
| गतैर्माणिक्यत्वं ... | ४२ |
| गळे रेखाः .... | ६९ |
| गिरामाहुः .... | ९७ |
| गुरुत्वं विस्तारं .... | ८१ |
| चतुर्भिश्श्रीकण्ठैः ... | ११ |
| चतुष्षष्ट्या ... | ३१ |
| जगत्सूते .... | २४ |
| जपो जल्पः ... | २७ |
| तटित्त्वन्तं ... | ४० |
| तटिल्लेखा- ... | २१ |
| तनुच्छायाभिः .... | १८ |
| तनीयांसं पांसुं .... | २ |
| तनोतु क्षेमं ... | ४४ |
| तव स्तन्यं ... | ७५ |
| तव स्वाधिष्ठाने .... | ३९ |
| तवाज्ञाचक्रस्थं ... | ३६ |
| तवाधारे मूले .... | ४१ |
| तवापर्णे .... | ५६ |
| त्रयाणां ... | २५ |
| त्वदन्यः ... | ४ |
| त्वदीयं सौन्दर्यं ... | १२ |
| त्वया हृत्वा ... | २३ |
| ददाने दीनेभ्यः ... | ९० |
| दृशा द्राघीयस्या ... | ५७ |
| धनुः पौष्पं ... | ६ |
| धुनोतु ध्वान्तं ... | ४६ |


Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri




| | श्लोकसं. |
|---|---|
| नखानां ... | ७१ |
| नखैर्नाकस्त्रीणां ... | ८९ |
| नमोवाकं ब्रूमः ... | ८५ |
| नरं वर्षीयांसं ... | १३ |
| निमेषोन्मेषाभ्यां ... | ५५ |
| निसर्गक्षीणस्य ... | ७९ |
| पदं ते कीर्तीनां ... | ८८ |
| पदन्यास- ... | ९१ |
| पराजेतुं ... | ८३ |
| पवीत्रीकर्तुं ... | ५४ |
| पुरारातेः ... | ९५ |
| प्रकृत्याऽऽरक्तायाः ... | ६२ |
| प्रदीपज्वालाभिः ... | १०० |
| भवानि त्वं दासे ... | २२ |
| भुजाश्लेषात् ... | ६८ |
| भ्रुवौ भुग्ने ... | ४७ |
| मनस्त्वं व्योम ... | ३५ |
| महीं मूलाधारे ... | ९ |
| मुखं बिन्दुं कृत्वा ... | १९ |
| मृणालीमृद्वीनां ... | ७० |
| मृषा कृत्वा ... | ८६ |
| यदेतत्कालिन्दी- ... | ७७ |
| रणे जित्वा ... | ६५ |
| ललाटं ... | ४६ |
| वहत्यम्ब ... | ७४ |
| विपञ्च्या गायन्ती ... | ६६ |

| | श्लोकसं. |
|---|---|
| विभक्तत्रैवर्ण्यं ... | ५३ |
| विरिञ्चिः पञ्चत्वं ... | २६ |
| विशाला कल्याणी ... | ४९ |
| विशुद्धौ ते ... | ३७ |
| शरज्ज्योत्स्नाशुद्धां ... | १५ |
| शरीरं त्वं ... | ३४ |
| शिवश्शक्तिः कामः ... | ३२ |
| शिवश्शक्त्या ... | १ |
| शिवे शृङ्गारार्द्रा ... | ५१ |
| श्रुतीनां ... | ८४ |
| समं देवि ... | ७२ |
| समुन्मीलत् ... | ३८ |
| सरस्वत्याः ... | ६० |
| सरस्वत्या लक्ष्म्या ... | ९९ |
| सवित्रीभिः ... | १७ |
| सुधाधारासारैः ... | १० |
| सुधामप्यास्वाद्य ... | २८ |
| सुधासिन्धोः ... | ८ |
| स्थिरो गङ्गावर्तः ... | ७८ |
| स्फुरद्गण्डाभोग- ... | ५९ |
| स्मरं योनिं ... | ३३ |
| स्मितज्योत्स्नाजालं ... | ६३ |
| स्वदेहोद्भूताभिः ... | ३० |
| हरक्रोध- ... | ७६ |
| हरिस्त्वां ... | ५ |
| हिमानीहन्तव्यं ... | ८७ |


Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



॥ श्रीः ॥

अयि ! वाचकमहोदयाः, किञ्चिदत्रावधेयम् । सौन्दर्यलहरीस्थानां सर्वेषामपि श्लोकानां वीजाक्षरयुतयन्त्रपूजापुरश्चरणनैवेद्यफलानि केरळाङ्गलभाषयोः सम्मुद्रय प्रकाशितान्युपलभ्यन्ते खलु । ऐहिकफलाकाङ्क्षिणामुपासकानां सौकर्यायैतानि संस्कृते परिवर्त्यात्र संयोजितानि ।

## श्रीत्रिपुरसुन्दर्यै नमः

अस्य श्रीसौन्दर्यलहरीस्तोत्रस्य । गोविन्द ऋषिः । अनुष्टुप्छन्दः । श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी देवता । शिवश्शक्त्या युक्त इति बीजम् । सुधासिन्धोर्मध्य इति शक्तिः । जपो जल्पश्शिल्पमिति कीलकम् । ह्रामित्यादि षडङ्गन्यासः ।

### ध्यानम्

लौहित्यनिर्जितजपाकुसुमानुरागां
पाशाङ्कुशौ धनुरिषूनपि धारयन्तीम् ।
ताम्रायतामरुणमाल्यविशेषभूषां
ताम्बूलपूरितमुखीं त्रिपुरां नमामि ॥

लमित्यादिपञ्चोपचाराः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. १.

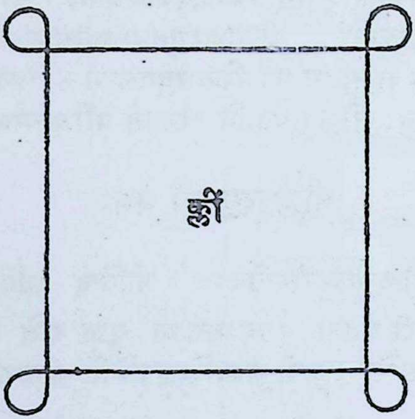


(i) यन्त्रमिदं तण्डुलपिष्टेन स्थण्डिले विलिख्य घृतदीपसंस्थापनपूर्वकं द्वादश दिनानि सम्पूज्य प्रत्यहं श्लोकमिमं सहस्रमावर्तयेत्। अनेन सकलकार्यजयः।

(ii) इदमेव यन्त्रं हेमपट्टतले विलिख्य पूर्वाभिमुखो द्वादश दिनानि सम्पूज्य श्लोकमिमं प्रतिदिनं सहस्रमावर्त्य कण्ठे धारयेत्। अनेन सकलाभिवृद्धिः। उभयत्र नैवेद्यं त्रिमधुरम्। त्रिमधुरं नाम गुडनारिकेलकदलीफलानां मिश्रणेन सम्पादितं द्रव्यम्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. २.

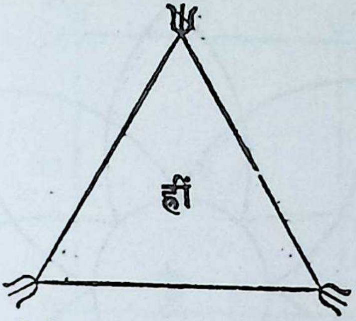


यन्त्रमिदं स्वर्णपट्टे विलिख्य, उत्तराभिमुखः पञ्चपञ्चाशद्दिनानि सम्पूज्य श्लोकमिमं प्रतिवासरं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। अनेन सर्वलोकवश्यता प्रकृतिजयश्च। नैवेद्यं क्षीरपायसम्।

श्लो. ३.

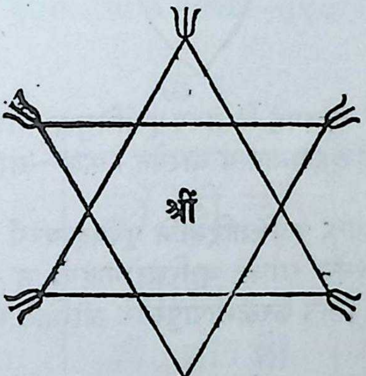


(i) इदं यन्त्रं कनकपट्टतले विलिख्य ईशानाभिमुखः पञ्चदश दिनानि सम्पूज्य श्लोकमिमं प्रत्यहं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। अनेन सर्वैश्वर्यसर्वविद्ये भवतः।

(ii) इदमेव यन्त्रं चतुःपञ्चाशद्दिनानि पूर्ववदभ्यर्च्य प्रतिवासरं श्लोकमिमं द्विसहस्रमावर्त्य साधयेत्। साधको वेदविद्भवेत्। उभयत्र नैवेद्यं—माषापूपः।



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ४.

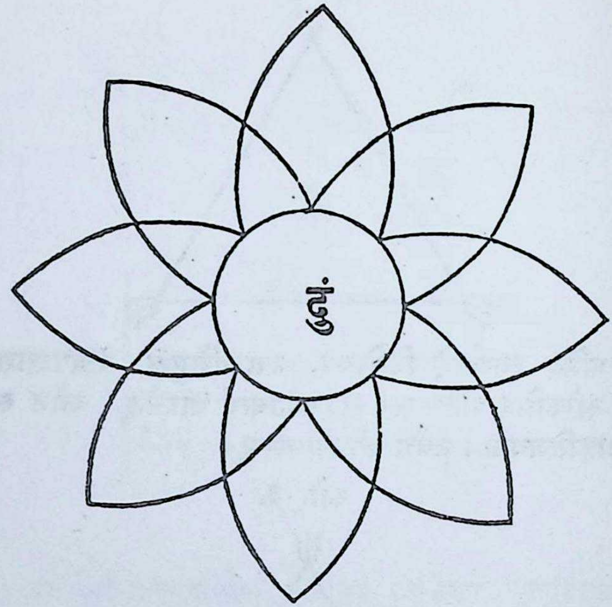


(i) यन्त्रमिदं रजतपट्टे विलिख्य पूर्वाभिमुखः षोडश दिनान्यभ्यर्च्य श्लोकमिमं प्रतिदिनं सहस्रमावर्त्य धारयेत् । फलं—साम्राज्यसिद्धिः ।

(ii) इदमेव यन्त्रं षट्त्रिंशद्दिनानि पूर्ववदभ्यर्च्य श्लोकमिमं प्रत्यहं सहस्रमावर्तयेत् । अनेन साधकं दारिद्र्यरोगादयो न बाधन्ते । उभयत्र नैवेद्यं -हरिद्रान्नम् । अत्र केरळभाषापुस्तके श्रीमिति बीजाक्षरो दृश्यते ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ५.

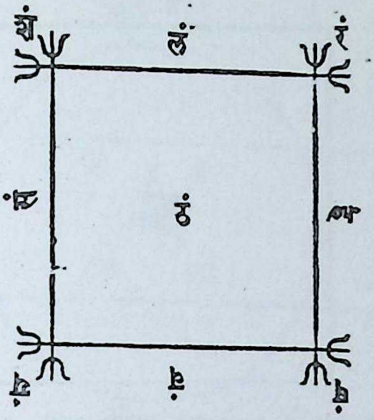


इदं यन्त्रं ताम्रपट्टे विलिख्य वायव्याभिमुखोऽष्टौ दिनानि सम्पूज्य प्रत्यहं श्लोकमिमं द्विसहस्रमावर्त्य शिरसि धारयेत्। फलं सकलजनसम्मोहनं स्त्रीणां पुरुषवश्यता च। नैवेद्यं—गुडपायसम्।

श्लो. ६.

यन्त्रमिदं कनकपट्टतले विलिख्य पूर्वाभिमुखः एकविंशतिदिनानि समाराध्य पद्यमिदं प्रतिदिनं पञ्चशतमावर्त्य धारयेत्। फलं—साधकस्य षण्डत्वनिवृत्त्या पुत्रावाप्तिः। नैवेद्यं—इक्षुखण्डः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ७.

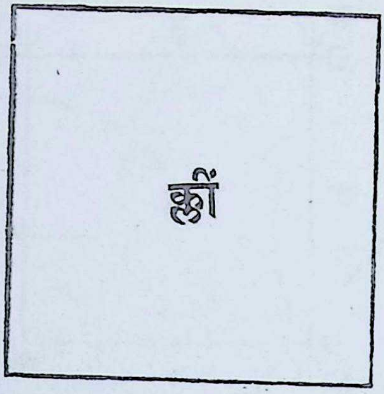


यन्त्रमिदं हाटकपट्टे विलिख्य पूर्वाभिमुखः पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि समभ्यर्च्य श्लोकमिमं प्रतिवासरं सहस्रमावर्त्य शिरसि धारयेत्। भस्म वाऽभिमन्त्र्य धारयेत्। अनेन शत्रुजयः। नैवेद्यं क्षीरपायसम्।

श्लो. ८.

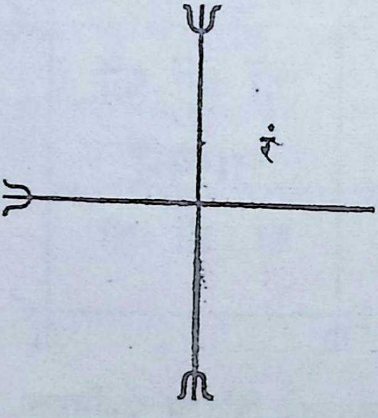


यन्त्रमिदं रक्तचन्दनखण्डे निर्माय द्वादश दिनानि रक्तपुष्पैरभ्यर्च्य पद्यमिदं प्रत्यहं द्विशतोत्तरसहस्रमावर्त्य धारयेत्। फलं—कारागृहनिवृत्तिः सकलकार्यजयश्च। नैवेद्यं कृष्णमरिचः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ९.

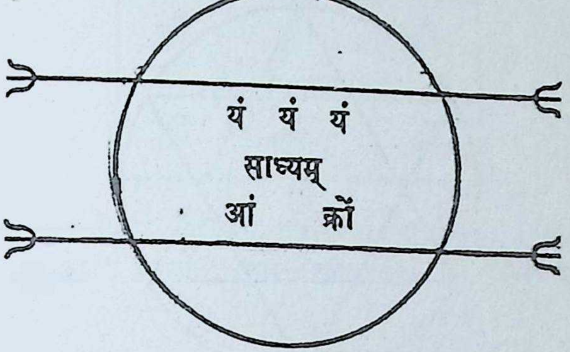


(i) यन्त्रमिदं कलकपट्टे विलिख्य दश दिनान्यभ्यर्च्य प्रत्यहं श्लोकमिमं सहस्रमावर्तयेत्। फलं—देशान्तरगतस्य क्षिप्रागमनम्।

(ii) इदमेव यन्त्रं गन्धचोलिकयालिख्य पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि समाराध्य पद्यमिदं प्रतिवासरं सहस्रमावर्तयेत्। अनेन साधकः पञ्चभूतानि जयिष्यति। उभयत्र नैवेद्यं-क्षीरपायसम्।

श्लो. १०.

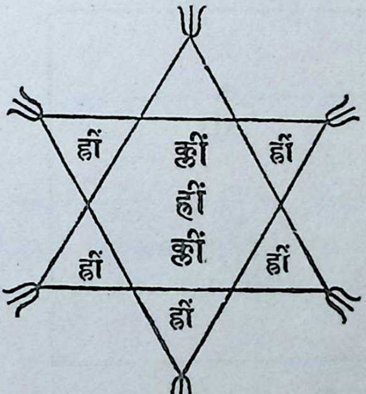


इदं यन्त्रं हाटकपट्टतले विलिख्य षड्दिनान्यभ्यर्च्य प्रतिदिनं श्लोकमिमं सहस्रमावर्त्य रक्तक्षौमतन्तौ निबध्य धारयेत्। फलं—वृष्यं स्त्रीणां रजोदर्शनं च। नैवेद्यं—कदलीफलम्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ११.

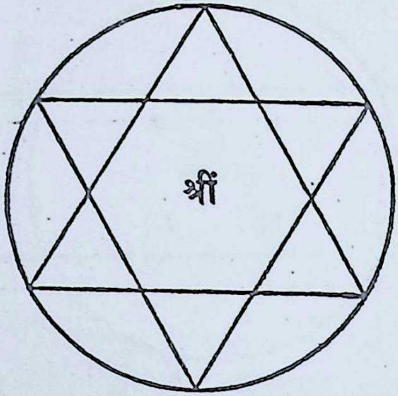


इदं यन्त्रं कनकपट्टतले विलिख्य एकाशीतिदिनानि सम्पूज्य श्लोकमिममनुदिनं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। नवनीतं वाऽभिमन्त्र्य सेवयेत्। अनेन वन्ध्यादोषो निवर्तते। नैवेद्यं—गुडपायसम्।

श्लो. १२.

यन्त्रमिदं जले विलिख्य पञ्चचत्वारिंशद्दिनान्यभ्यर्च्य जलं स्पृष्ट्वा श्लोकमिमं प्रत्यहं सहस्रमावर्त्य पिबेत्। अनेन मूकोऽपि कविर्भवेत्, वशित्वं सिध्येत्। नैवेद्यं—मधु।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. १३.

| | | |
|---|---|---|
| क्लीं | क्लीं | क्लीं |
| | साध्यम् | |
| क्लीं | क्लीं | क्लीं |

इदं यन्त्रं हेमपट्टे विलिख्य षड्दिनानि समाराध्य श्लोकमिममनुदिनं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। फलं—स्त्रीवश्यता। नैवेद्यं—त्रिमधुरम्।

श्लो. १४.

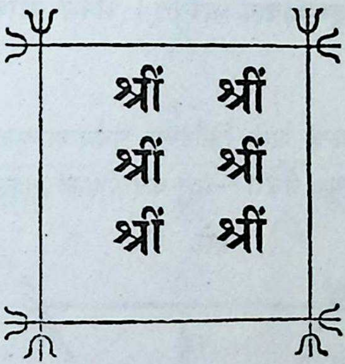


यन्त्रमिदं हाटकपट्टतले विलिख्य पञ्चचत्वारिंशद्दिनान्यभ्यर्च्य श्लोकमिमं प्रतिवासरं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। अनेन वसन्तादिरोगाः दुर्भिक्षं च न बाधेत। नैवेद्यं—क्षीरपायसम्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. १५.

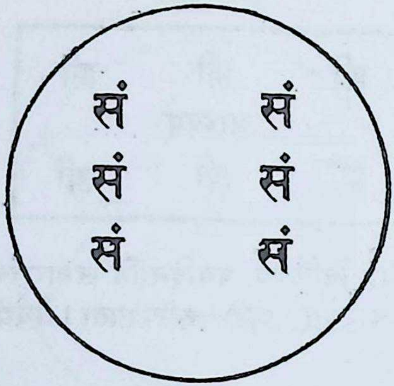


(i) यन्त्रमिदं सुवर्णपट्टे विलिख्य एकचत्वारिंशद्दिनानि सम्पूज्य श्लोकमिमं प्रत्यहं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। अनेन साधकः कविर्विज्ञानी च भवेत्।

(ii) इदमेव यन्त्रं जले विलिख्य पूर्ववत्सम्पूज्य जप्त्वा पिबेत्। फलं—पूर्ववत्। उभयत्र नैवेद्यं—मधु कदलीफलं शर्करा च।

श्लो. १६.

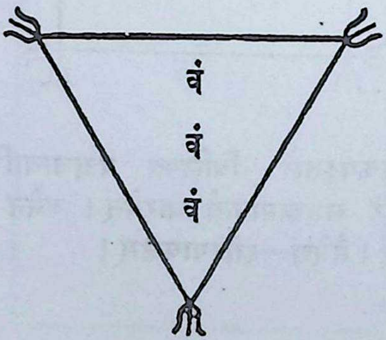


यन्त्रमिदं हेमपट्टतले विलिख्य एकचत्वारिंशदहानि समाराध्य श्लोकमिममनुदिनं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। फलं—वेदशास्त्रादिज्ञानम्। नैवेद्यं—मधु।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. १७.

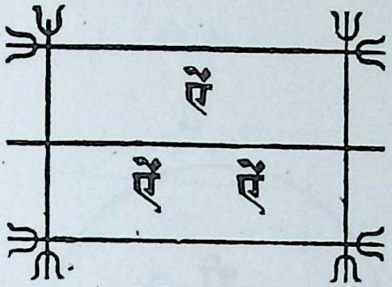


इदं यन्त्रं हाटकपट्टे विलिख्य एकनवतिदिनान्यभ्यर्च्य श्लोकमिममनुदिनं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। अनेन साधकः सकलकलाकोविदो भवेत्। नैवेद्यं—मधु कदलीफलं क्षीरं शर्करा खण्डशर्करा च।

श्लो. १८.

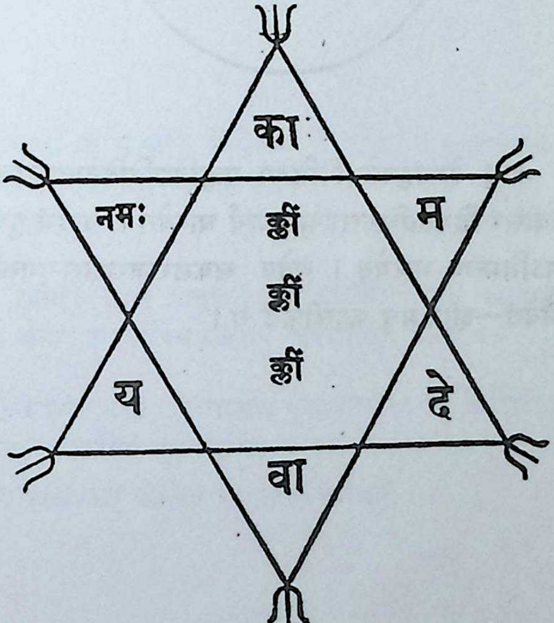


यन्त्रमिदं सुवर्णपट्टतले विलिख्य पञ्चचत्वारिंशद्दिनान्यर्चयित्वा प्रत्यहं श्लोकमिमं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। चन्दनं कुङ्कुमं पुष्पं वाऽभिमन्त्र्य दद्यात् फलं—सकलप्राणिवश्यता। नैवेद्यं—क्षीरपायसं ताम्बूलं च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. १९.

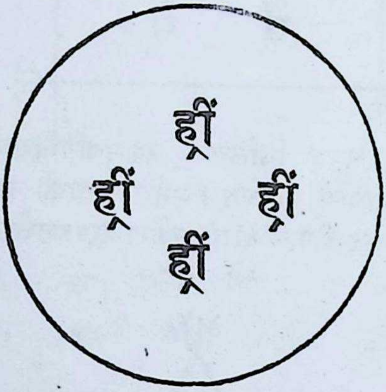


इदं यन्त्रं हेमपट्टतले विलिख्य पञ्चविंशतिदिनान्याराध्य श्लोकमिमं प्रतिवासरं द्विशताधिकसहस्रमावर्त्य धारयेत्। चन्दनं पुष्पं भस्म कुङ्कुमं वाऽभिमन्त्र्य धारयेत्। अनेन सकलराजराक्षसमृगस्त्रीवश्यता भवति। नैवेद्यं—क्षीरं मधु कदलीफलं च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. २०,

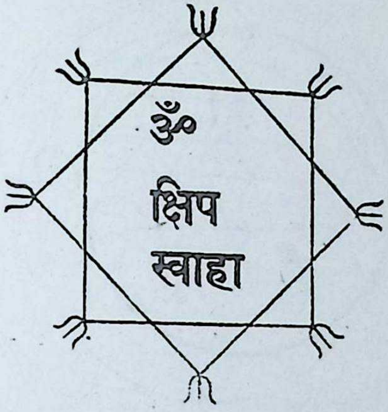


(i) यन्त्रमिदं भस्मनि विलिख्य श्लोकमिमं सहस्रमावर्त्य तद्भस्म दद्यात्। अनेन विषनिवृत्तिर्भवति। इदं भस्म सर्पे लग्नं चेत् स मुह्यात्। ज्वरश्च निवर्तेत।

(ii) इममेव श्लोकं पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि प्रत्यहं द्विसहस्रमावर्त्य साधयेत्। अनेन साधकस्य कदापि विषभीतिर्न जायते।

(iii) इदमेव यन्त्रं मयूरताम्रेण पुन्नागताम्रेण वा मिश्रितसुवर्णपट्ट-तले विलिख्य श्लोकमिमं पूर्ववत्संसाध्य तद्यन्त्रमङ्गुळीयकं कृत्वा धारयेत्। तद्धस्तेन सर्पदष्टे जले प्रोक्षिते विषनिवृत्तिर्भवति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. २१.

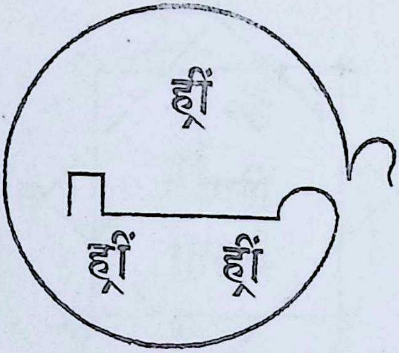


यन्त्रमिदं स्वर्णपट्टे रजतपट्टे ताम्रपट्टे वा विलिख्य पञ्चचत्वारिंशदहानि पूजयित्वा श्लोकमिममनुदिनं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। अनेन सकलजनविरोधनाशः वश्यता च। नैवेद्यं—कदलीफलं मधु गुडं च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. २२.

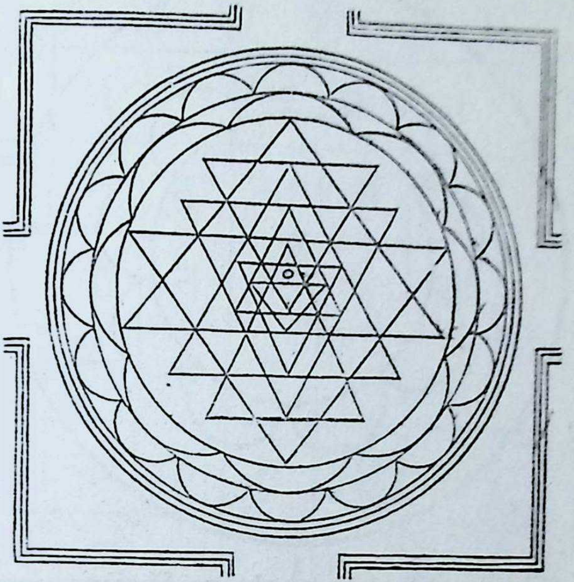

चक्रमिदं सुवर्णपट्टतले विलिख्य कस्मिंश्चित्पुण्यतीर्थे क्षेत्रे देवीसन्निधौ वा उपविश्य पञ्चचत्वारिंशदहानि सम्पूज्य श्लोकमिममहरहस्सहस्रमावर्त्य साधयेत्। अनेन ऐहिकसर्वाभीष्टसिद्धिः सकलैश्वर्यप्राप्तिः साम्राज्यावाप्तिश्च भवति। नैवेद्यं—मधु त्रिमधुरं दधि क्षीरं चित्रान्नं च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri


श्लो. २३.

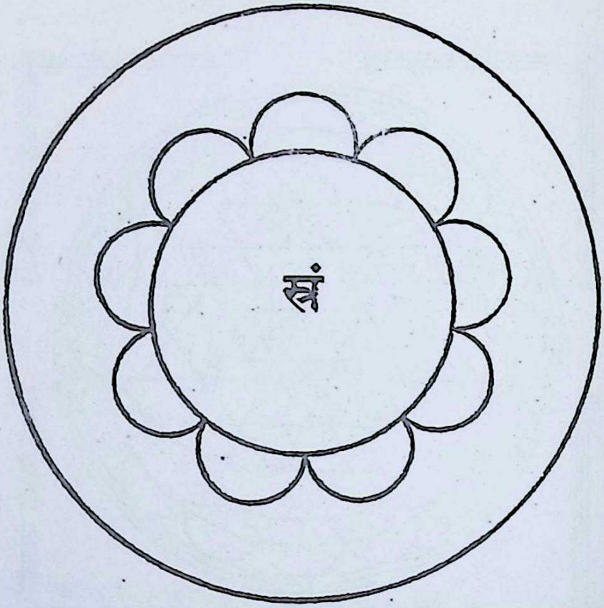


यन्त्रमिदं हेमपट्टे विलिख्य गृहे संस्थाप्य त्रिंशद्दिनान्यभ्यर्च्य प्रत्यहं श्लोकमिमं त्रिसहस्रमावर्तयेत्। फलं—सर्वापन्निवृत्तिः ऋणमोचनं भूतप्रेतशमनं च भवति। नैवेद्यं—क्षीरपायसम्।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. २४.

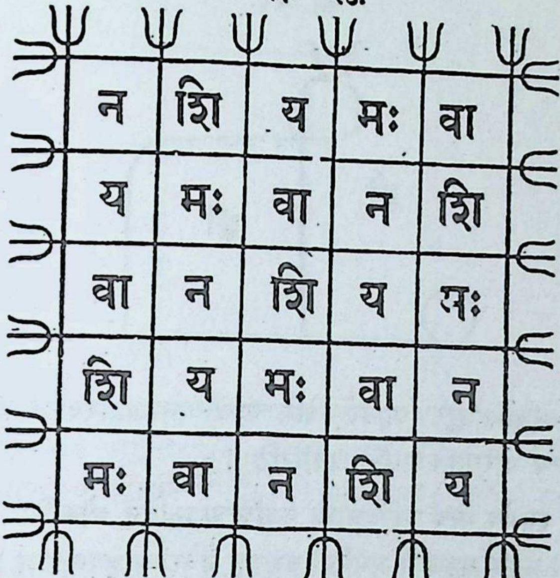


शिवयन्त्रमिदं हाटकपट्टतले विलिख्य त्रिंशद्दिनानि सम्पूज्य श्लोकमिममहरहस्सहस्रमावर्त्य धारयेत् । फलं–भूतप्रेतपिशाचापस्मारादि-निवारणम् । नैवेद्यं—मधु माषापूपः तिलपिष्टं च ।

श्लो. २५.

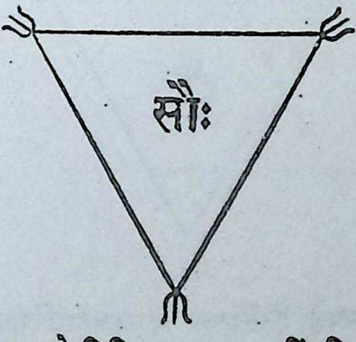


इदं यन्त्रं हेमपट्टतले विलिख्य पञ्चचत्वारिंशद्दिनान्यभ्यर्च्य श्लोकमिमं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। फलं—राजकीयाधिकारः उत्कृष्टपदवीलाभश्च । नैवेद्यं—मधु ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. २६

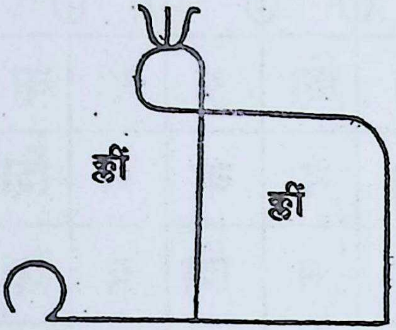


(i) यन्त्रमिदं सुवर्णपट्टतले विलिख्यार्चयित्वामावास्यायां श्लोकमिमं सहस्रमावर्त्य धारयेत् । फलं—सर्वसिद्धिः ।

(ii) इदमेव यन्त्रं षड्दिनानि पूजयित्वाऽनुदितं श्लोकमिमं सहस्रमावर्तयेत् । अनेन शत्रुजयो भवति । उभयत्र नैवेद्यं—गुडपायसम् ।

श्लो. २७.

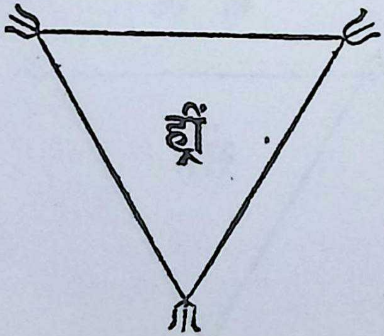


इदं यन्त्रं हेमपट्टे लिखित्वा पञ्चचत्वारिंशदहानि पूजयित्वा श्लोकमिममहरहस्सहस्रमावर्त्य धारयेत् । फलम्-मन्त्रसिद्धिः देवीदर्शनं आत्मज्ञानं च । नैवेद्यं-गुडपायसम् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. २८.

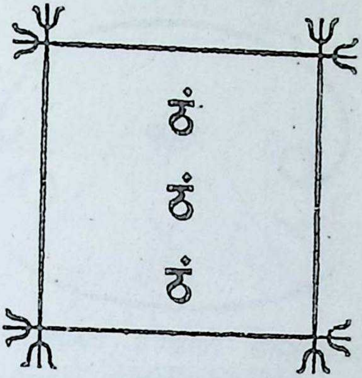


यन्त्रमिदं हाटकपट्टे विलिख्य पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि समाराध्य प्रत्यहं श्लोकमिमं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। फलं—स्त्रीणां सकलकार्यसिद्धिः पुरुषाणामपमृत्युनिवारणं च। नैवेद्यं—क्षीरपायसं त्रिमधुरं ताम्बूलं च।

श्लो. २९.

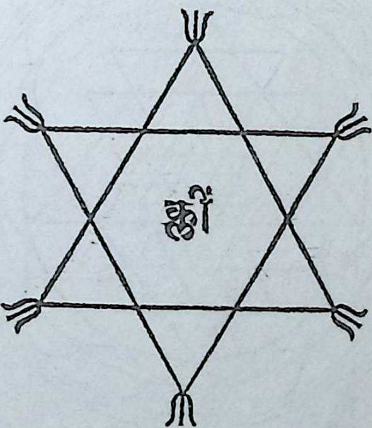


इदं यन्त्रं हेमपट्टे विलिख्य पञ्चचत्वारिंशद्दिनान्यर्चयित्वा श्लोकमिमं प्रतिवासरं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। फलं—दुष्टान् मूर्खांश्च सतः कृत्वा स्ववशीकरणम्। नैवेद्यं—मधु माषापूपश्च।



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ३०.

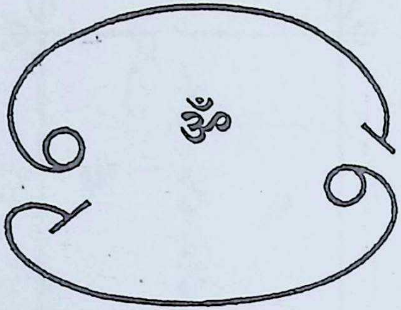


यन्त्रमिदं कनकपट्टतले विलिख्य षण्णवतिदिनानि समाराध्य श्लोकमिममहरहस्सहस्रमावर्त्य धारयेत् । फलं—अणिमाद्यष्टसिद्धिः परकायप्रवेशः अग्निस्तम्भनं च । नैवेद्यं—मधु त्रिमधुरं ताम्बूलं च ।

श्लो. ३१.

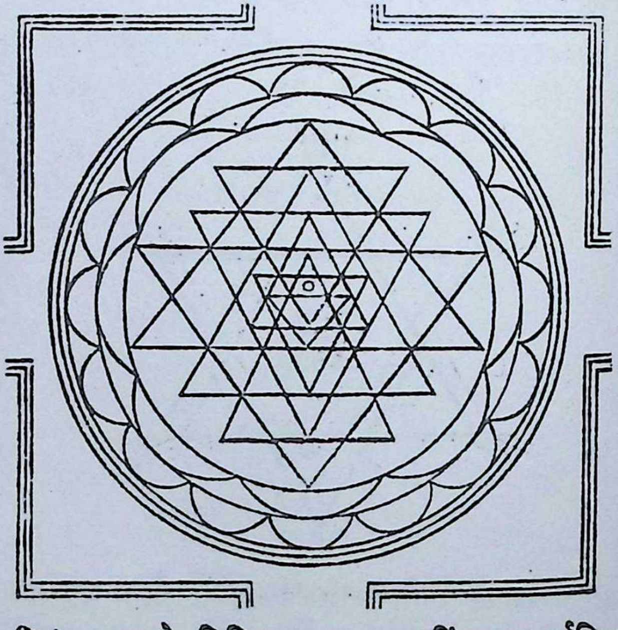

चक्रमिदं हाटकपट्टे विलिख्य पञ्चचत्वारिंशदहान्यर्चयित्वा हस्ते निधाय श्लोकमिममनुदिनं सहस्रमावर्तयेत् । अनेन सकलजनवश्यं राजवश्यं च भवेत् । नैवेद्यं—मधु क्षीरं च ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ३२.

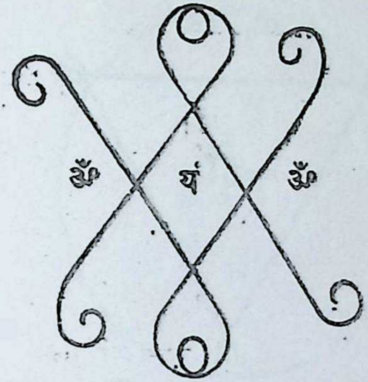


इदं यन्त्रं स्वर्णपट्टतले विलिख्य पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि संपूज्य प्रत्यहं श्लोकमिमं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। फलं—सकलविद्यासिद्धिः रसायनसिद्धिश्च। नैवेद्यं-दध्यन्नं माषापूपश्च। केरळभाषापुस्तके, यमिति बीजाक्षरं न दृश्यते।

श्लो. ३३.

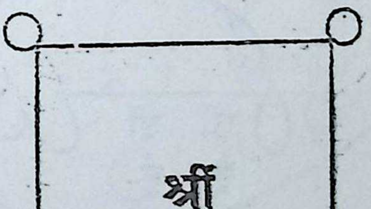


यन्त्रमिदं कनकपट्टतले विलिख्य तत्र रौप्यकं निधाय पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि सम्पूज्य श्लोकमिममनुदिनं सहस्रमावर्तयेत्। फलं-भूरिधनाप्तिः। नैवेद्यं मुद्गान्नं मधु।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ३४.

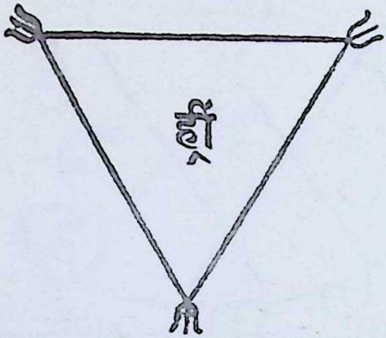


यन्त्रमिदं हेमपट्टे विलिख्य पञ्चचत्वारिंशदहान्यभ्यर्च्य पद्यमिदं प्रत्यहं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत्। अनेन साधकः महाबुद्धिमान् भवेत्। नैवेद्यं–मधु।

श्लो. ३५.

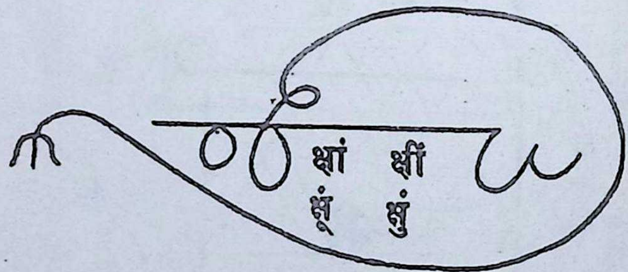


इदं यन्त्रं स्वर्णपट्टतले विलिख्य पञ्चचत्वारिंशद्दिनान्यभ्यर्च्य श्लोकमिमं प्रतिवारं सहस्रमावर्त्य धारयित्वा हरीतकीमभिमन्त्र्य सेवयेत्। अनेन क्षयरोगो निवर्तते। नैवेद्यं—मधु क्षीरपायसं च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri


श्लो. ३६.

यन्त्रमिदं कनककपट्टे विलिख्य पञ्चचत्वारिंशदहान्यर्चयित्वा पद्यमिदमहरहस्सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत्। रोगशान्तये जलं वाऽभिमन्त्र्य पाययेत्। फलं नानाविधकठिणरोगनिवृत्तिः। नैवेद्यं—मधु माषापूपश्च।

श्लो. ३७.

.र

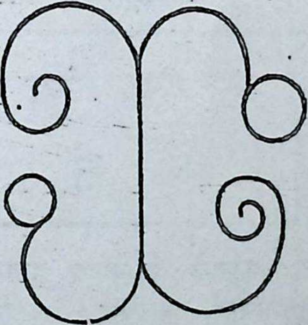

इदं यन्त्रं जातरूपपट्टे विलिख्यार्चयित्वा पद्यमिदं पञ्चसहस्रमावर्त्य धारयेत्। जलं वाभिमन्त्र्य पिबेत्। फलं-ब्रह्मरक्षोबाधानिवृत्तिः। नैवेद्यं-गुडपायसं नारिकेलफलं कदलीफलं च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ३८.

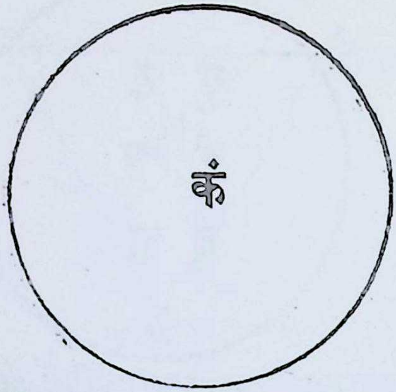


यन्त्रमिदं हेमपट्टे विलिख्य पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि पूजयित्वाऽनुदिनं श्लोकमिमं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत्। जलं वाऽभिमन्त्र्य प्रोक्षयेत्। फलं—बालारिष्टनिवृत्तिः। नैवेद्यं—११ माषापूपाः ताम्बूलं नारिकेलफलं कदलीफलं च।

श्लो. ३९.

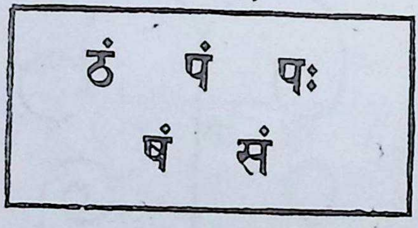


यन्त्रमिदं कनकपट्टतले विलिख्य द्वादश दिनान्यभ्यर्च्य प्रत्यहं श्लोकमिममष्टोत्तरशतमावर्त्य धारयेत्। अनेन दुस्स्वप्नं शाम्यति। नैवेद्यं—क्षीरं क्षीरपायसं मधु च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ४०.

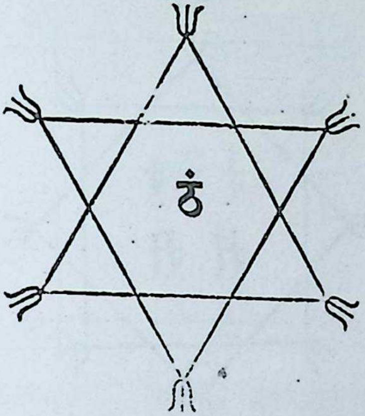


इदं यन्त्रं हेमपट्टे विलिख्य पञ्चचत्वारिंशदहान्यर्चयित्वा पद्यमिदमनुदिनं सहस्रमावर्त्योपधाने निक्षिप्य शयीत। फलं—इष्टार्थस्य स्वप्ने दर्शनम्। नैवेद्यं—मधु क्षीरपायसं ताम्बूलं च।

श्लो. ४१.

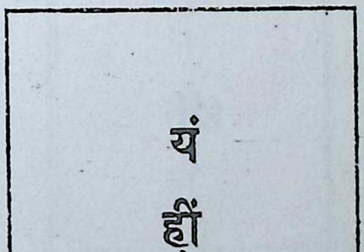


यन्त्रमिदं हेमपट्टतले विलिख्य त्रिंशदहानि पूजयित्वा पद्यमिदमहरहश्चतुसहस्रमावर्त्य धारयेत्। फलं-सकलोदररोगनिवृत्तिः। नैवेद्यं-मधु।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ४२.

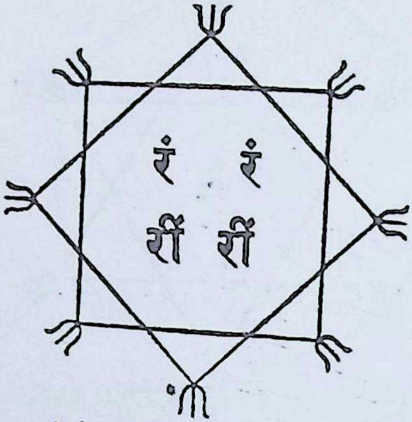


इदं यन्त्रं स्वर्णपट्टे विलिख्य पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि समाराध्य श्लोकमिममनुदिनं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत् । अनेन महोदरव्याधिर्नश्यति । नैवेद्यं-शर्करा ।

श्लो. ४३.

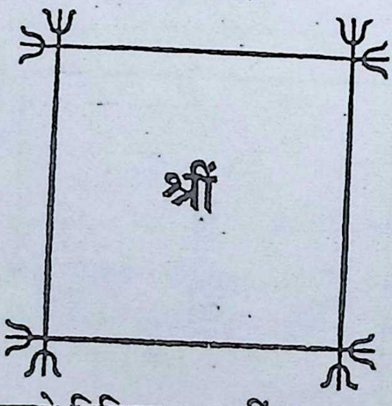


यन्त्रमिदं हाटकपट्टे विलिख्य चत्वारिंशदहान्यभ्यर्च्य पद्यमिदमनुदिनं त्रिसहस्रमावर्त्याङ्गुळीयकं कृत्वा धारयेत् । फलं—सकलजनवश्यता। नैवेद्यं—मधु ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ४४.

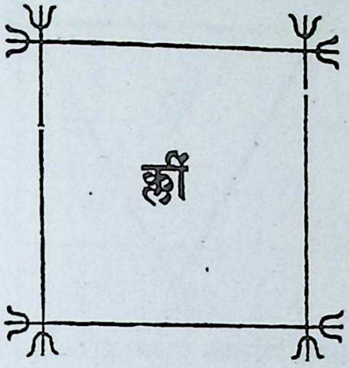


यन्त्रमिदं कनकपट्टतले विलिख्य द्वादशाहान्यर्चयित्वा श्लोकमिमं प्रतिवासरं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। कुंकुमं हरिद्राचूर्णं चाऽभिमन्त्र्य तिलकं धारयेत्। अनेन वश्यता बाधानिवृत्तिश्च भवेत्। नैवेद्यं—गुडपायसम्।

श्लो. ४५.

इदं यन्त्रं स्वर्णपट्टतले विलिख्य चत्वारिंशदहानि समाराध्य पद्यमिदमनुदिनं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत्। फलं—वाक्सिद्धिः। नैवेद्यं—त्रिमधुरं मधु च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri


श्लो. ४६.

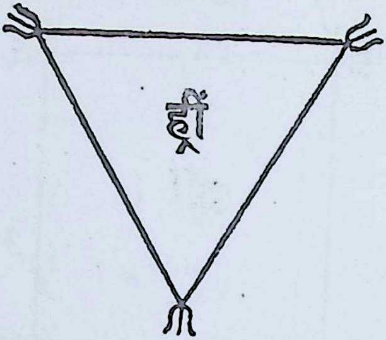


यन्त्रमिदं कनकपट्टे विलिख्य पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि सम्पूज्य प्रत्यहं श्लोकमिमं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। अनेन भर्तृसमागमो गर्भधारणं च भवति। नैवेद्यं—क्षीरपायसं मधु च।

श्लो. ४७.

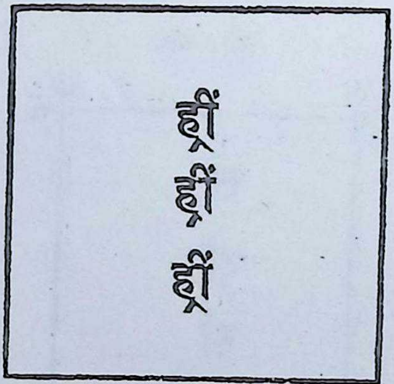


(i) इदं सुवर्णपट्टे विलिख्य पञ्चविंशतिदिनानि सम्पूज्य पद्यमिदमनुदिनं सप्तसहस्रमावर्त्य धारयेत्। अनेन देवता वशमेष्यति।

(ii) भस्म वाऽभिमन्त्र्य धारयेत्। फलं—सकलवश्यता। उभयत्र नैवेद्यं—नारिकेलफलं कदलीफलं मधु च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ४८.

| | | |
|---|---|---|
| बु | गु | च |
| गु | र | कु |
| रा | श | के |

यन्त्रमिदं कनकपट्टतले विलिख्य एकोनविंशतिदिनानि समाराध्य श्लोकमिमं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत् । अनेन नवग्रहदोषशान्तिर्भवति । नैवेद्यं—चित्रान्नं कदलीफलं मधु च ।

श्लो. ४९.

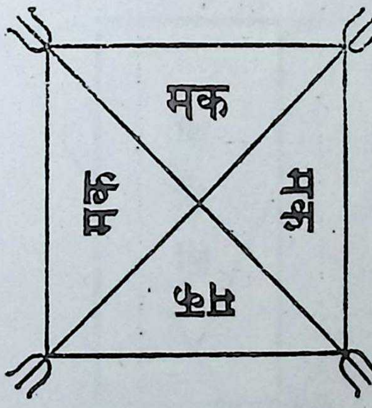


यन्त्रमिदं हरिद्राखण्डे लिखित्वा पञ्चविंशतिदिनान्यभ्यर्च्य श्लोकमिममहरहस्सहस्रमावर्त्य हरिद्राखण्डमग्नौ दग्ध्वा तत्तैलेन पिष्ट्वा पञ्चदशवर्षीयस्य मार्जालदृशो बालकस्य हस्तेन अक्ष्णं लेपयित्वा पश्यतो निधिदर्शनं भवति । नैवेद्यं—मुद्गान्नं मधु च ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri


श्लो. ५०.

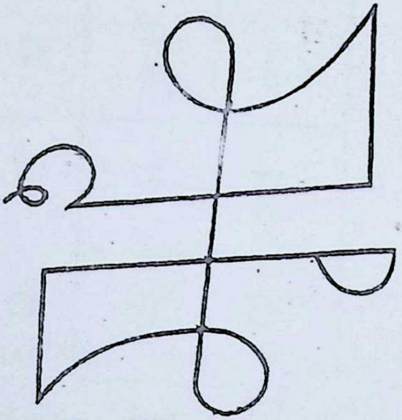

इदं यन्त्रं कनकपट्टतले विलिख्य चत्वार्यहान्यर्चयित्वा पद्यमिनुदिनं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत्। जलं वाऽभिमन्त्र्य सेवेत। एवं कृते मसूरिका न समागमिष्यति। नैवेद्यं—शर्करा खण्डशर्करा गुडं कदलीफलं मधु नारिकेलं च।

श्लो. ५१.

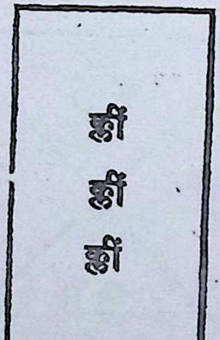


यन्त्रमिदं सुवर्णपट्टे विलिख्य पञ्चचत्वारिंशदहानि सम्पूज्य प्रत्यहं श्लोकमिमं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत्। चन्दने वा विलिख्य पूर्ववत्पूजादिकं कृत्वा तिलकं धारयेत्। फलं—सर्वजनवश्यता। नैवेद्यं—माषापूपः मधु च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ५२.

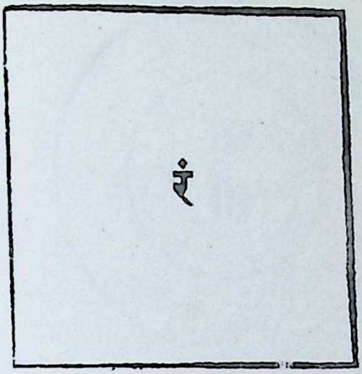


इदं यन्त्रं कनकपट्टतले विलिख्य पञ्चचत्वारिंशदहानि समाराध्य श्लोकमिममनुदिनं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। फलं—कर्णरोगशमनं नेत्ररोगनिवृत्तिश्च। नैवेद्यं—तिलान्नं क्षीरपायसं च।

श्लो. ५३.

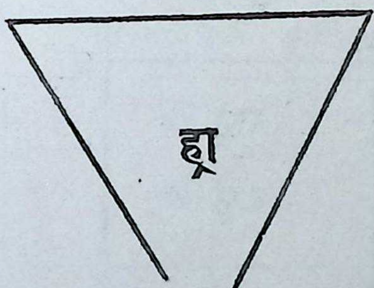


यन्त्रमिदं स्वर्णपट्टे विलिख्य भूमौ संस्थाप्य तत्र दीपं निधाय श्लोकमिमं त्रिसहस्रमावर्तयेत्। अनुकूलतायां दीपं उज्ज्वलेत् न चेत्प्रातिकूल्यम्। नैवेद्यं—गुडापूपः माषापूपः क्षीरपायसं च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri


श्लो. ५४.

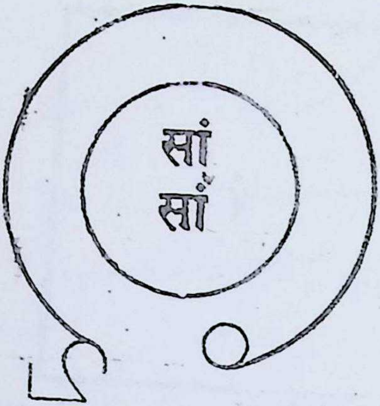


यन्त्रमिदं कनकपट्टतले विलिख्य पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि सम्पूज्य पद्यमिदमनुदिनं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत्। अनेन योनिरोगो निवर्तते। नैवेद्यं—गुडपायसम्।

श्लो. ५५.

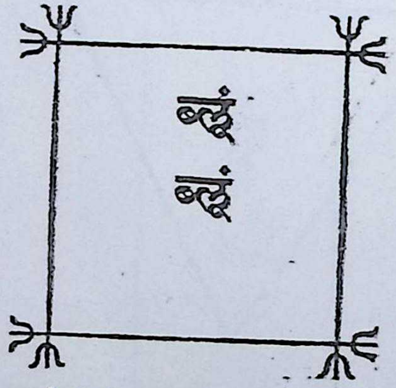


इदं यन्त्र हाटकपट्टे विलिख्य पद्यमिदं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत्। लिङ्गुमफलं वाऽभिमन्त्र्य बध्नीयात्। अनेनाण्डव्याधिश्शाम्यति। नैवेद्यं दलीफलं क्षीरपायसं मधु ताम्बूलं च। अत्र केरळभाषापुस्तके "बंला ला" इति बीजाक्षरभेदो दृश्यते।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ५६.

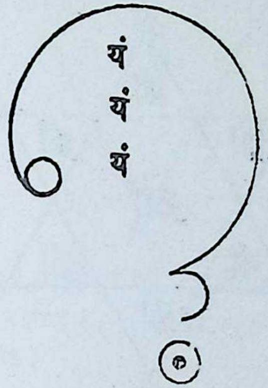


यन्त्रमिदं जातरूपपट्टतले मकरमत्स्यदन्ते वा लिखित्वा पञ्चचत्वारिंशदहान्यभ्यर्च्य श्लोकमिमं प्रत्यहं विंशतिसहस्रमावर्त्य स्वसन्निवेशयेत्। अनेन द्वारपालको धावेत्। मुद्रितं कवाटं स्वयमुद्घाटयेत्। वृष्टिश्च भवेत्। नैवेद्यं—मधु।

श्लो. ५७.

इदं यन्त्रं हेमपट्टे विलिख्य षडहान्यभ्यर्च्य पद्यमिदमनुदिनं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। साधको बहुभाग्यवान् भवेत्। नैवेद्यं—क्षीरपायसं मधु च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ५८.

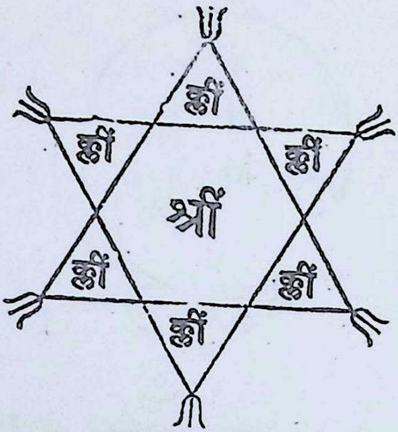


यन्त्रमिदं कुङ्कुमचूर्णे लिखित्वा पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि समाराध्य श्लोकमिममनुदिनं सहस्रवारं जप्त्वा तिलकं धारयेत्। फलं—सकलराजवश्यता सर्वव्याधिहृतिश्च। नैवेद्यं मधु।

श्लो. ५९.

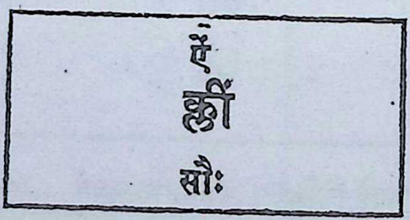


इदं यन्त्रं स्वर्णपट्टतले विलिख्य पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि सम्पूज्य पद्यमिदमनुदिनं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। फलं--सकलजनवश्यता। नैवेद्यं—गुडोदनं मधु च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लो. ६०.

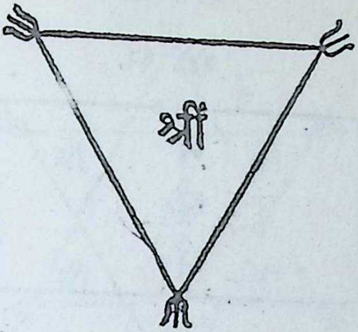


यन्त्रमिदं हाटकपट्टे विलिख्य पञ्चचत्वारिंशदहान्यभ्यर्च्य श्लोकमिम-महरहस्सहस्रमावर्त्य धारयेत्। अनेन साधकः सकलविद्यामाप्नुयात्। नैवेद्यं मधु क्षीरपायसं च।

श्लो. ६१.

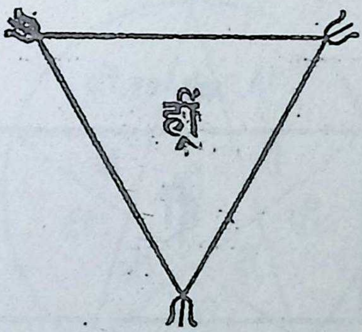


इदं यन्त्रं कनकपट्टे विलिख्याष्टौ दिनानि समाराध्य पद्यमिदमनुदिनं द्वादशसहस्रमावर्त्य स्त्रीणामाभरणे निक्षिपेत्। अनेन सकलपुरुषवश्यता भवेत्। नैवेद्यं—नारिकेलफलं कदलीफलं मधु च।



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ६२.

मं
मं
मं

यन्त्रमिदं हेमपट्टतले लिखित्वाष्टौ दिनानि सम्पूज्य श्लोकमिमं प्रत्यहमष्टसहस्रवारं जप्त्वा रात्रौ निद्राविहीनस्य समीपे स्थापितं चेत् स निद्रां लभते । नैवेद्यं—माषापूपः मधु च ।

श्लो. ६३.

ह्रीं

यन्त्रमिदं हाटकपट्टतले विलिख्य त्रिंशद्दिनान्याराध्य पद्यमिदमनुदिनं त्रिंशत्सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत् । अनेन सर्वोऽपि यथोक्तमाचरेत् । नैवेद्यं—नारिकेलफलम् । कन्नडभाषापुस्तके यन्त्रमिदं न दृश्यते ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ६४.

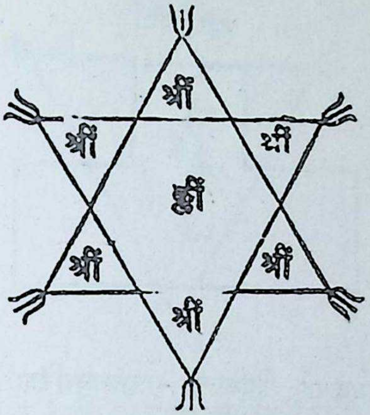


इदं यन्त्रं कुङ्कुमे विरच्याष्टावहानि पूजयित्वा प्रत्यहं श्लोकमिममयुत-वारं जप्त्वा धारयेत्। फलं—सकलजनवश्यता। नैवेद्यं—गुडपायसं मधु च।

श्लो. ६५.

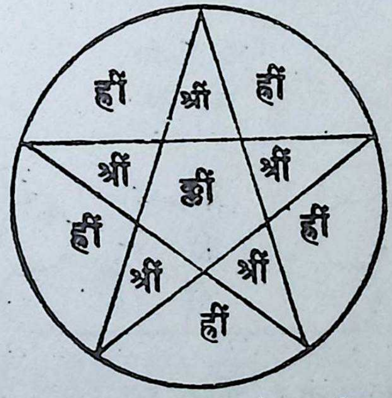


यन्त्रमिदं हेमपट्टतले विलिख्य गुग्गुलेन धूपयित्वा पञ्चचत्वारिंश-द्दिनानि रक्तपुष्पैः श्रीचक्रवदभ्यर्च्य श्लोकमिमं प्रतिवासरं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। अनेन सर्वोऽपि स्ववशगो भवेत्। नैवेद्यं—मधु।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ६६.

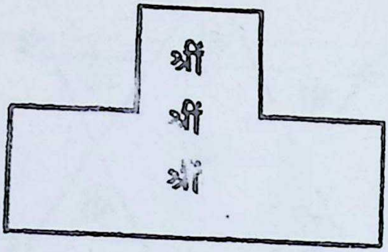


इदं यन्त्रं कनकपट्टे लिखित्वा पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि समाराध्य पद्यमिदमनुदिनं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत्। अनेन साधकः वीणादिसङ्गीतविद्याकुशलो भवेत्। नैवेद्यं—गुडपायसं मधु च।

श्लो. ६७.

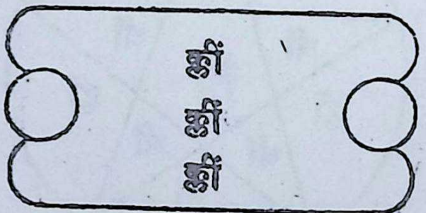


यन्त्रमिदं स्वर्णपट्टतले विलिख्य पत्न्या साकं पञ्चचत्वारिंशदहानि समाराध्य पद्यमिदमनुदिनं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। फलं—सकलस्त्रीवश्यता। नैवेद्यं—मधु क्षीरपायसं ताम्बूलं च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ६८.

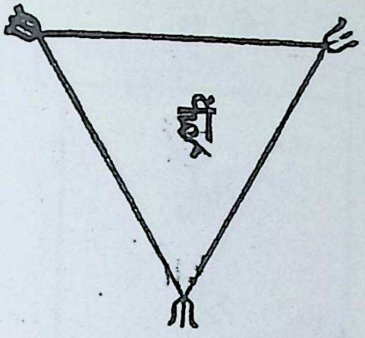


इदं यन्त्रं कुङ्कुमे विलिख्य पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि श्रीचक्रवदभ्यर्च्य प्रत्यहं श्लोकमिमं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत्। फलं सकलराजवश्यता। नैवेद्यं—मधु ताम्बूलं च। केरळभाषापुस्तके यन्त्रमिदं नास्ति।

श्लो. ६९.

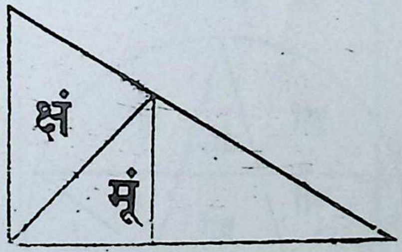


यन्त्रमिदं स्वर्णपट्टतले लिखित्वा पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि समाराध्य प्रत्यहं श्लोकमिमं सहस्रमावर्त्य साधयेत्। चम्पकपुष्पमभिमन्त्र्याभिलषितस्त्रियै दद्यात्। सा वशमेष्यति। नैवेद्यं—मधु। केरळभाषापुस्तके यन्त्रमिदं न दृश्यते।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ७०.

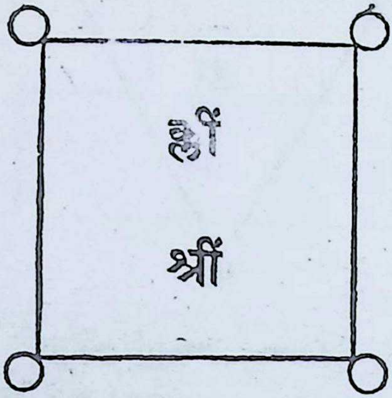


इदं यन्त्रं कनकपट्टे विलिख्य पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि समभ्यर्च्य पद्यमिदमनुदिनं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत् । फलं—सकलपुरुषवश्यता। नैवेद्यं—नारिकेलफलं मधु च ।

श्लो. ७१.

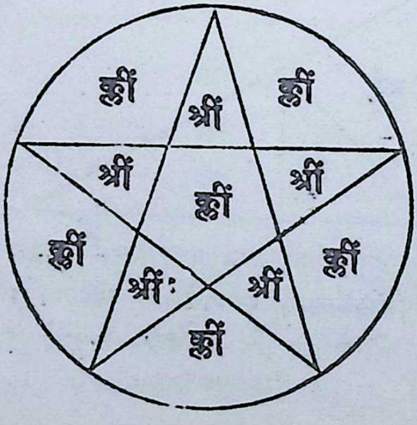


यन्त्रमिदं हाटकपट्टतले विलिख्य पञ्चचत्वारिंशद्दिनानि पूजयित्वा वटवृक्षे उपविश्य पद्यमिदमनुदिनं द्वादशसहस्रमावर्त्य साधयेत् । अनेन यक्षिणी वशगा भवति । नैवेद्यं—मधु ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ७२.

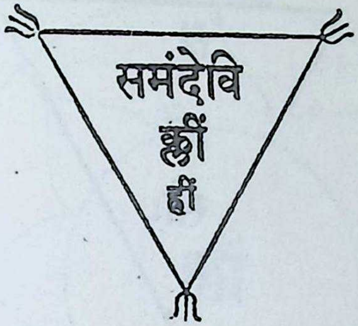


इदं यन्त्रं कनकपट्टतले विलिख्य पञ्चचत्वारिंशदहान्यर्चयित्वा श्लोकमिमं प्रत्यहं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। एवं कृते साधकः रात्रौ यत्र कुत्र वा गन्तुं शक्नुयात्। भयलेशोऽपि नास्ति। नैवेद्यं—मधु।

श्लो. ७३.

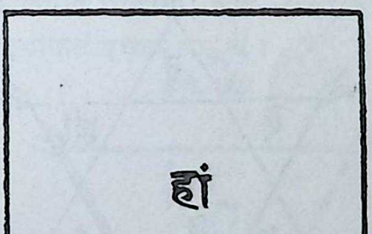


इदं यन्त्रं कनकपट्टे विलिख्य सप्तदिनान्यभ्यर्च्य पद्यमिदमनुदिनं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत्। फलं—स्त्रीणां स्तन्याभावे स्तन्यप्राप्तिः धेनूनां स्थगितस्य पयसो वहिर्निस्सरणं च। नैवेद्यं—मधु क्षीरं च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri


श्लो. ७४.

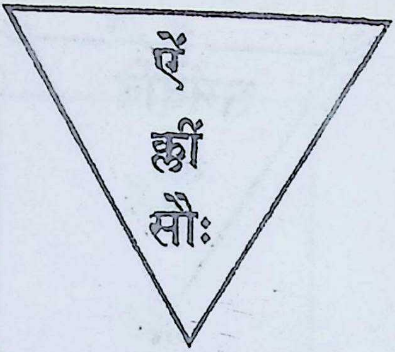


यन्त्रमिदं हेमपट्टतले विलिख्य देवीसन्निधौ पञ्चचत्वारिंशदहानि समाराध्य श्लोकमिमं प्रतिवासरमष्टोत्तरशतमावर्त्य धारयेत्। अनेन साधकः कीर्तिमाप्नुयात्। नैवेद्यं—क्षीरपायसं मधु च।

श्लो. ७५.

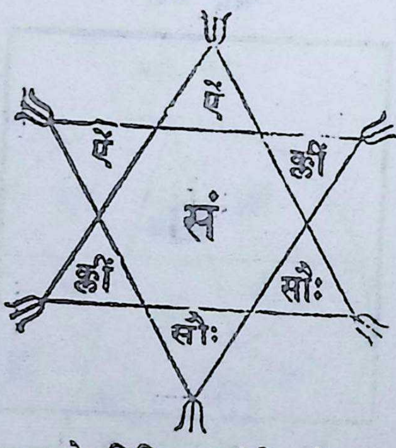


इदं यन्त्रं हाटकपट्टे विलिख्य त्रीणि दिनान्याराध्य श्लोकमिमं प्रत्यहं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत्। अनेन साधकः कविर्भवेत्। नैवेद्यं—कदलीफलं मधु च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ७६.

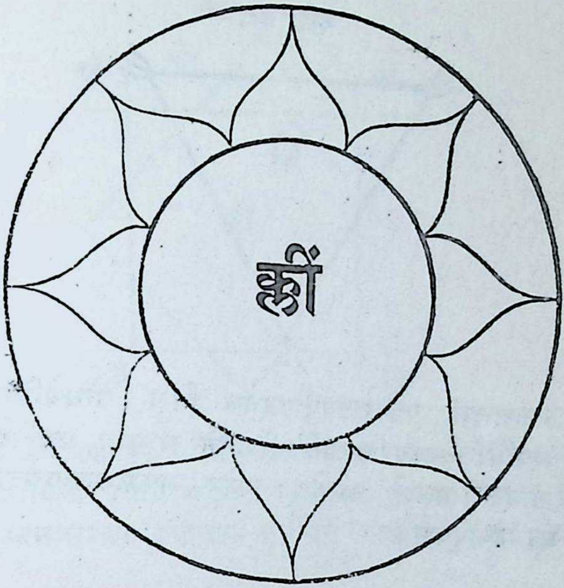


यन्त्रमिदं स्वर्णपट्टतले लिखित्वाऽष्टौ दिनान्यभ्यर्च्य पद्यमिदमनुदिनं द्वादशसहस्रमावर्त्य धारयेत्। फलं—सकलजनवश्यता। नैवेद्यं—नारिकेलफलं कदलीफलं दध्यन्नं मधु च।

श्लो. ७७.

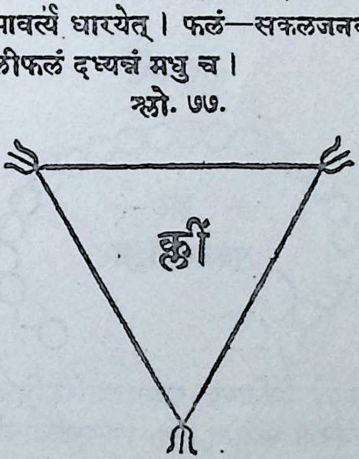


कपिलागोघृतमर्दितरक्तोत्पलेङ्गाले यन्त्रमिदं श्लोकं च विलिख्य दश दिनानि सम्पूज्य श्लोकमिममनुदिनं द्विसहस्रमावर्त्य तिलकं धारयेत्। फलं—राजवश्यता। नैवेद्यं—कदलीफलं मधु च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ७८.

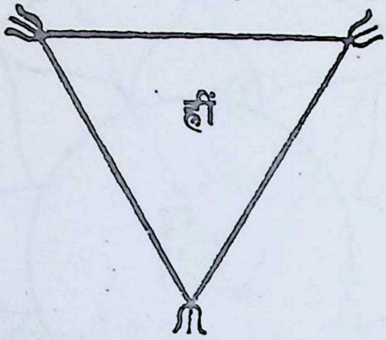


रक्तचन्दनं पन्नीराख्यपुष्पद्रवेण पिष्ट्वा गन्धचेळिकामिश्रिते तस्मिन् यन्त्रमिदं विरच्य चत्वारिंशद्दिनानि सम्पूज्य पद्यमिदमनुदिन-मष्टोत्तरशतमावर्त्य ललाटे धारयेत्, अनेन सकलराजवश्यता भवेत्। नैवेद्यं—मधु माषापूपश्च ।

श्लो. ७९.

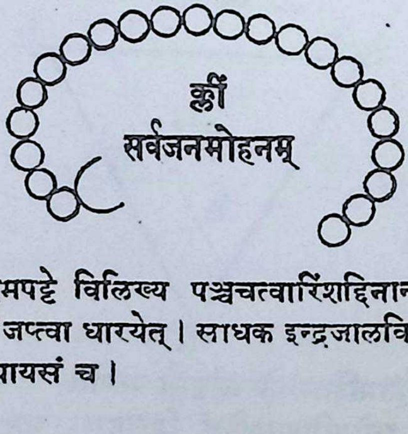


यन्त्रमिदं हेमपट्टे विलिख्य पञ्चचत्वारिंशद्दिनान्यभ्यर्च्य पद्यमिदं प्रत्यहं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत्। साधक इन्द्रजालविद्यानिपुणो भवेत्। नैवेद्यं—मधु क्षीरपायसं च ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ८०.

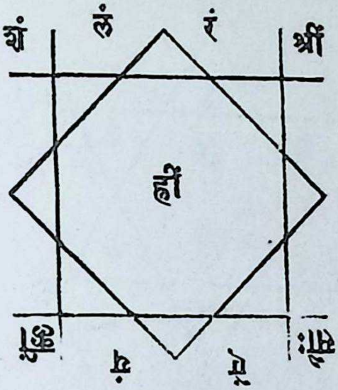


इदं यन्त्रं कनकपट्टतले लिखित्वा प्रथमपुष्पिण्या योनौ संस्थाप्य पञ्चदिनान्यर्चयित्वा पद्यमिदमनुदिनं सहस्रमावर्त्य हस्ते निबध्य तिलकं धारयेत्। अनेन साधक इन्द्रजालं दर्शयितुं समर्थो भवेत्। नैवेद्यं—मधु।

श्लो. ८१.

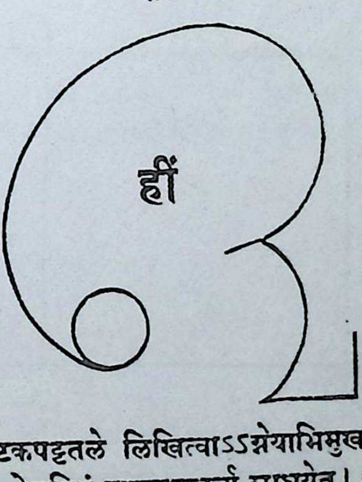


यन्त्रमिदं हाटकपट्टतले लिखित्वाऽऽग्नेयाभिमुखः षोडश दिनानि समाराध्य प्रत्यहं श्लोकमिमं सहस्रमावर्त्य साधयेत्। अनेन अग्निस्तम्भनं कर्तुं शक्यते। नैवेद्यं—गुडपायसं मधु माषापूपश्च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ८२.

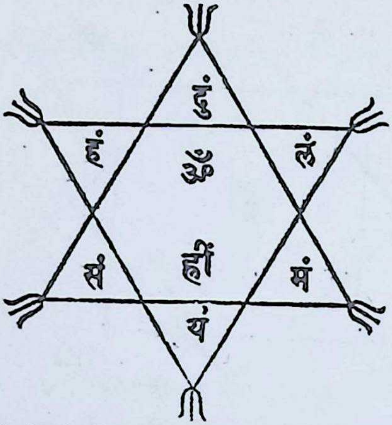


इदं यन्त्रं भूर्जपत्रे लिखित्वा पादुकायां निक्षिप्य चत्वारिंशदहानि सम्पूज्य पद्यमिदमनुदिनं सहस्रवारं जप्त्वा तत्पादुकां धारयेत्। अनेन साधको जले चरितुं समर्थो भवेत्। नैवेद्यं—नारिकेलफलं कदलीफलं मधु च।

श्लो. ८३.

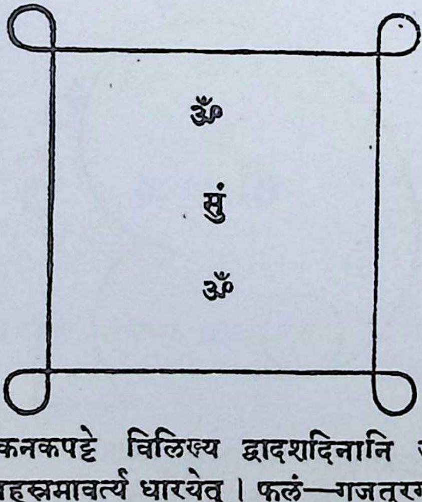


यन्त्रमिदं कनकपट्टे विलिख्य द्वादशदिनानि जपाकुसुमैरभ्यर्च्य पद्यमिदमहरहस्सहस्रमावर्त्य धारयेत्। फलं—गजतुरगसैन्यस्तम्भनम्। नैवेद्यं—गुडपायसं मधु च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ८४.

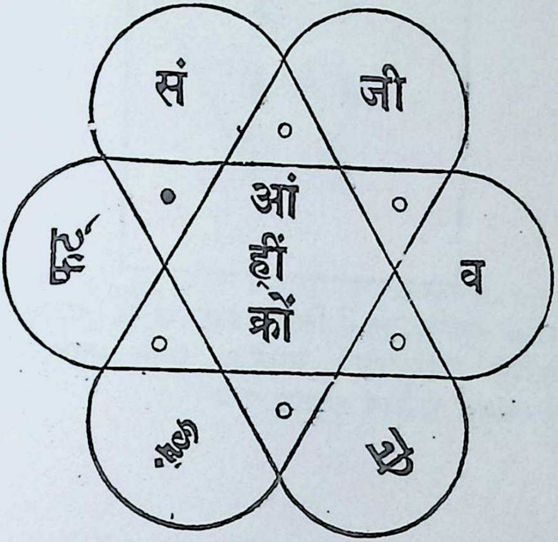


इदं यन्त्रं हेमपट्टतले लिखित्वा संवत्सरमेकमभ्यर्च्य श्लोकमिमं प्रत्यहं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत्। एवं कृते साधकः परकायप्रवेशे शक्तो भवेत्। नैवेद्यं—क्षीरपायसं चित्रान्नं मधु च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri


श्लो. ८५.

| | |
|---|---|
| रं | रं |
| रं | रं |
| रं | रं |

यन्त्रमिदं स्वर्णपट्टतले लिखित्वा द्वादशाहानि रक्तपुष्पैः सम्पूज्य पद्यमिदमनुदिनं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। अनेन भूतबाधानिवृत्तिः। नैवेद्यं—क्षीरपायसं गुडोदकं कदलीफलं च।

श्लो. ८६.

| |
|---|
| यं |
| यं |
| यं |

इदं यन्त्रं हाटकपट्टे विलिख्य एकविंशतिदिनानि सम्पूज्य प्रत्यहं श्लोकमिमं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। कलशोदकमभिमन्त्र्याभिषिञ्चेत्। अनेन समस्तपिशाचबाधानिवृत्तिः। नैवेद्यं—क्षीरपायसं नारिकेलफलं कदलीफलं मधु च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ८७.

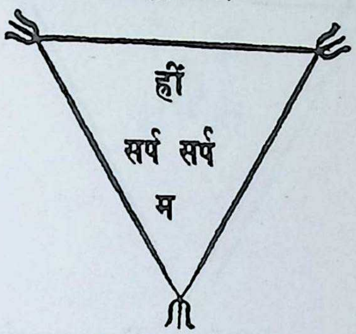


यन्त्रमिदं श्मशानभस्मनि विरच्य दशदिनान्याराध्य पद्यमिदमहरहस्सहस्रमावर्त्य साधयेत्। साधकः सर्पानयने समर्थो भवेत्। नैवेद्यं—क्षीरपायसं मधु कदलीफलं नारिकेलफलं च।

श्लो. ८८.

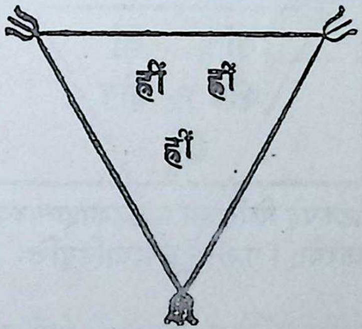


इदं यन्त्रं स्वर्णपट्टे रजतपट्टे वा लिखित्वा पञ्चदशदिनानि समाराध्य श्लोकमिमं प्रत्यहं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत्। साधकः मृगानयने प्रभवति। नैवेद्यं—गुडपायसं नारिकेलफलं कदलीफलं च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लो. ८९.

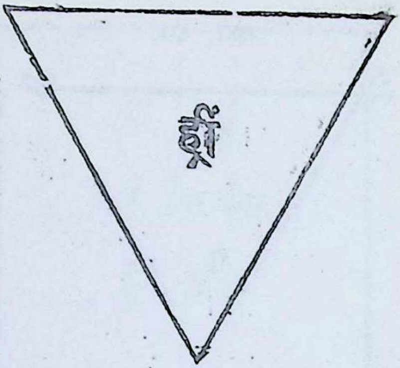


यन्त्रमिदं हाटकपट्टतले लिखित्वा त्रिंशदहान्यर्चयित्वा पद्यमिदमनुदिनं सहस्रमावर्त्य धारयेत् । फलं—सर्वरोगशमनम् । नैवेद्यं-गुडपायसं मधु च ।

श्लो. ९०.

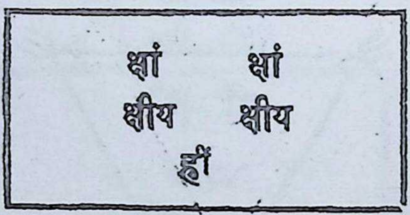


इदं यन्त्रं हाटकपट्टे लिखित्वा पञ्चदशाहान्यभ्यर्च्य श्लोकमिममहरहस्सहस्रमावर्त्य धारयेत् । फलं-क्षुद्बाधानिवृत्तिः नैवेद्यं—क्षीरपायसं मधु च ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ९१.

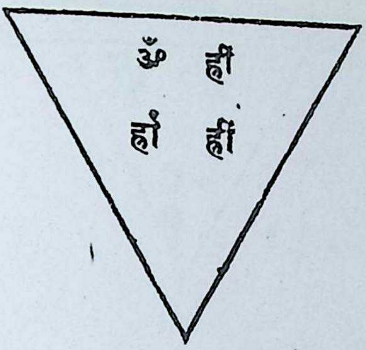


यन्त्रमिदं पद्यं च कनकपट्टतले लिखित्वा पञ्चविंशत्यहानि समाराध्य पद्यमिदमनुदिनं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत्। साधकस्य भूलाभो धनलाभश्च भवति। नैवेद्यं—क्षीरपायसम्।

श्लो. ९२.

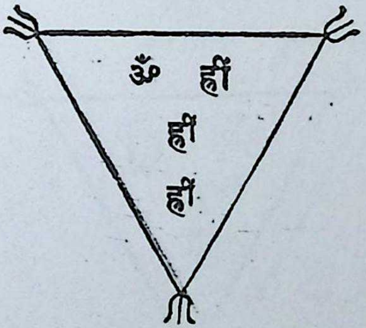


इदं यन्त्रं सुवर्णपट्टे विलिख्य पञ्चविंशतिदिनान्यभ्यर्च्य प्रत्यहं श्लोकमिमं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। अनेन साधको राज्यं लभते। नैवेद्यं—चित्रान्नं क्षीरं क्षीरपायसं ताम्बूलं च।



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ९३.

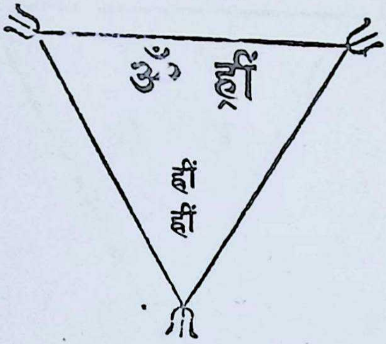


यन्त्रमिदं हेमपट्टतले विलिख्य पञ्चविंशतिदिनानि पूजयित्वा पद्यमिदमनुदिनं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। अनेन सकलाभीष्टसिद्धिर्भवति। नैवेद्यं—मधु।

श्लो. ९४.

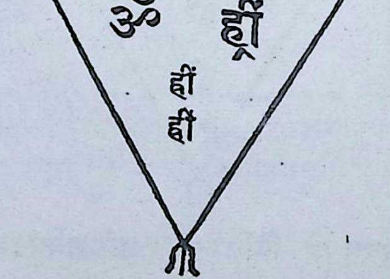


इदं यन्त्रं हाटकपट्टे लिखित्वा पञ्चविंशत्यहान्यभ्यर्च्य श्लोकमिमं प्रतिवासरं सहस्रमावर्तयेत्। फलं—इष्टार्थसिद्धिः। नैवेद्यं—मुद्गान्नं नारिकेलफलं कदलीफलं च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. १५.

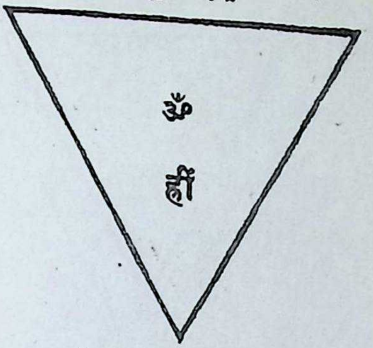


यन्त्रमिदं कनकपट्टतले विलिख्य तिलतैले निक्षिप्य त्र्यहमाराध्य पद्यमिदमनुदिनमष्टोत्तरशतमावर्त्य तत्तैलं व्रणे विलिम्पेत्। फलं-सद्यो-व्रणविरोपणम्। नैवेद्यं—तिलान्नं गुडं च।

श्लो. १६.

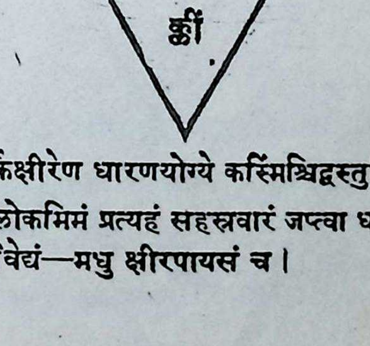


इदं यन्त्रं श्वेतार्कक्षीरेण धारणयोग्ये कस्मिंश्चिद्वस्तुनि लिखित्वाऽष्टौ दिनानि सम्पूज्य श्लोकमिमं प्रत्यहं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत्। साधको विद्यावान् भवेत्। नैवेद्यं—मधु क्षीरपायसं च।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. २७.

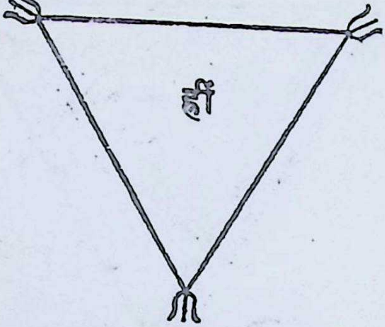


यन्त्रमिदं स्वर्णपट्टे ताम्रपट्टे वा लिखित्वाऽष्टौ दिनानि समाराध्य श्लोकमिममहरहस्सहस्रमावर्त्य धारयेत् । साधको दृढकायो भवेत् । नैवेद्यं—शाल्यन्नं मधु च ।

श्लो. २८.

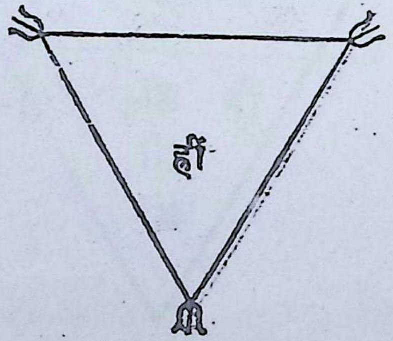


इदं यन्त्रं कनकपट्टतले विलिख्य षोडशदिनान्यर्चयित्वा पद्यमिदमनुदिनं सहस्रवारं जप्त्वा धारयेत् । अनेन स्त्रीणां गर्भधारणं पुरुषाणां बहुवृष्यता च भवेत् । नैवेद्यं—मधु ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्लो. ९९.

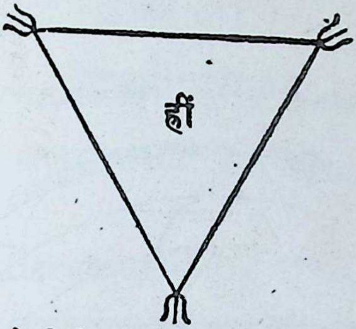


यन्त्रमिदं हेमपट्टे लिखित्वा षोडश दिनान्यभ्यर्च्य प्रत्यहं श्लोकमिमं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। अनेन साधकः शूरो भवेत्। नैवेद्यं—त्रिमधुरं माषापूपः मधु च।

श्लो. १००.

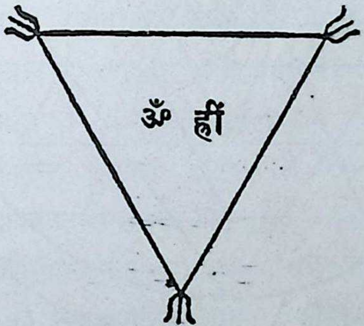


इदं यन्त्रं स्वर्णपट्टतले विलिख्य षोडश दिनान्याराध्य श्लोकमिमं प्रतिवासरं सहस्रमावर्त्य धारयेत्। अनेन सकलकार्यसिद्धिर्भवेत्। नैवेद्यं—नारिकेलफलं कदलीफलं च।

शं भूयात्

॥ श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीचरणारविन्दार्पणमस्तु ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



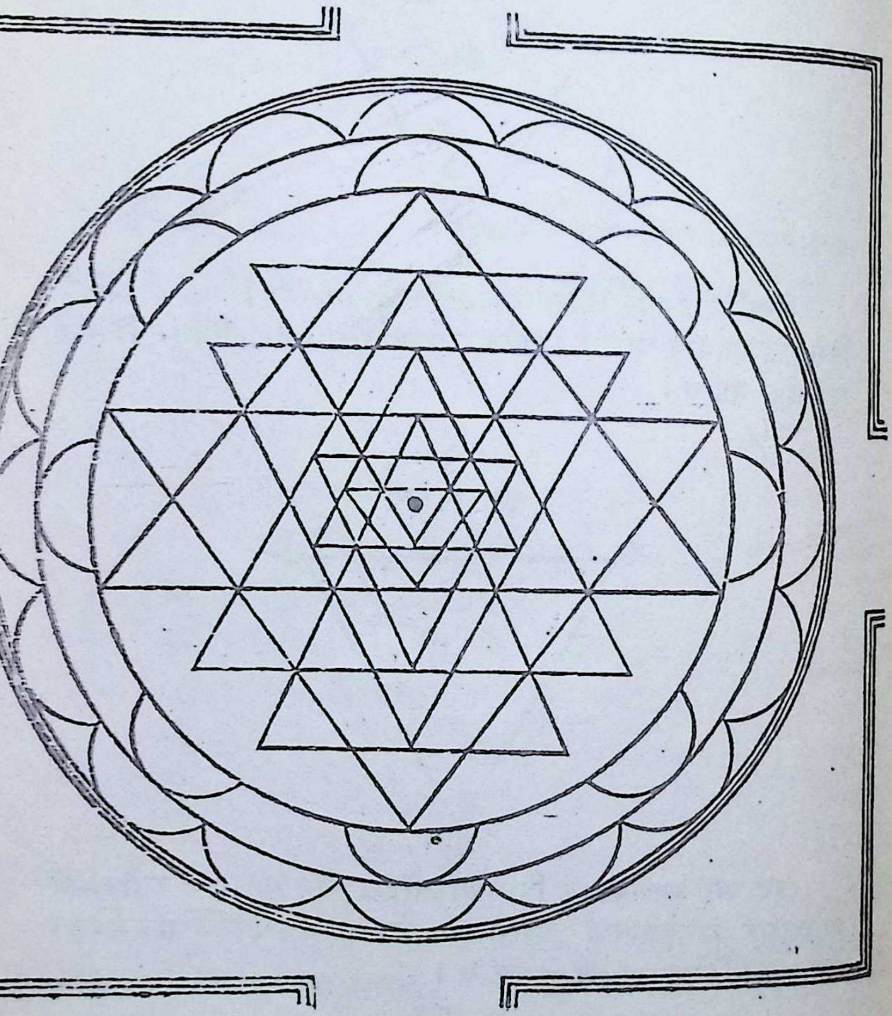

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

॥ श्रियै नमः ॥

# भावनोपनिषत्

## भास्करराजविरचितभाष्यसहिता

श्रीनाथाङ्घ्रिपरागैकोपरागादपरागधीः ।
भावनोपनिषद्भाष्यं भाषते भास्करस्सुधीः ॥

इह खलु श्रीत्रिपुरसुन्दर्याः स्थूलसूक्ष्मपररूपभेदेन त्रिविधायाः उपास्तिरूपाः क्रिया अपि त्रिविधाः कायिकी वाचिकी मानसी चेति । तासां बहिर्यागजपान्तर्यागरूपाणां एकैकस्यामितरयोस्संवलितत्वेऽपि प्राधान्यप्राचुर्याभ्यां कायिकत्वादिव्यपदेशः । एतास्वादिमं द्वयं त्रिपुरातापिन्याद्युपनिषत्सूपदिश्य ततोऽपि रहस्यभूतां कालचक्रान्तर्गतश्रीचक्रस्य भावनानाम्नीं तृतीयामुपास्तिमथर्वनामा वेदपुरुषो योगिजनानुजिघृक्षया प्रकाशयन्नादौ सद्गुरोः पररूपत्वमभिधत्ते 'श्रीगुरुस्सर्वकारणभूता शक्तिः' इत्यादिवाक्यद्वयेन । अत्र चोपनिषदन्ते श्रूयमाणं 'भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति' इति वाक्यं यदाग्नेयादिवाक्यवत् भावनया जीवन्मुक्तिं भावयेदिति विपरिणतं सत् अपूर्वो विधिः । अर्थभावनाकरणीभूतायाश्च भावार्थरूपायाः पररूपभावनायाः स्वर्गवदलौकिकत्वेन * तत्स्वरूपनिरूपणार्थः 'श्रीगुरुः' इत्यादिस्सर्वोऽपि तद्विधेश्शेषः । तेन 'यन्न दुःखेन' इत्यादिवाक्यवत् विध्येकवाक्यतया स्वार्थे प्रामाण्यमस्यावसेयम् । ताश्च भावनाः यद्यपि कादिमतकौलमतभेदेन

* भावनायाः व्यूढावदतात्त्विकत्वेन—ख.



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



द्विलक्षणा * स्तन्त्रेषूपलभ्यन्ते, तथापि प्रकृतोपनिषदि कादिमतानुसारेणैव वर्ण्यन्ते। कादिमतेनान्तः भावनाः प्रतिपादिताः, 'य एवं वेद' इत्युपसंहारात्। तेनास्यामेवोपनिषदि शाखाभेदेन पाठभेददर्शनेऽपि कादिमतीयतन्त्रसूत्राद्युपबृंहणानुगुणं पाठमनुसृत्येहास्माभिर्व्याख्यायते। अत एव प्रयोगविधिलेखनावसरे प्रकृतशाखायामश्रूयमाणोऽप्यंशोऽपेक्षितत्वान्नित्याहृदयतन्त्रराजबिन्दुसूत्रादिभ्य उपसंहृत्य वर्णयिष्यते॥

## श्रीगुरुस्सर्वकारणभूता शक्तिः॥ १॥
## तेन नवरन्ध्ररूपो देहः॥ २॥

इदं च वाक्यद्वयमुपबृंहितं तन्त्रराजे—

गुरुराद्या भवेच्छक्तिस्सा विमर्शमयी मता।
नवत्वं तस्य देहस्य रन्ध्रत्वेनावभासते॥ इति।

अत्र 'आद्या' इति 'सर्वकारणभूता' इत्यस्य विवरणं, कारणस्य कार्यपूर्वभावित्वेनाद्यत्वात्। ईश्वरानुग्रहवशेन जायमानो विवेक एव सर्वसंशयभेदनेन मन्त्रवीर्यप्रकाशनेन तात्त्विकपदार्थानामवकाशप्रदानाद्विमर्शपदाभिधेयो गुरुः। गुर्वभिन्नरन्ध्रवान्।
तदुक्तम्—'गुरुरुपायः' इति शिवसूत्रे वार्तिककृता—

गुरुरेव परा शक्तिरीश्वरानुग्रहात्मिका।
अवकाशप्रदानेन सैव यायादुपायताम्।
अकृत्रिमाहमामर्शस्वरूपाद्यन्तवेदनात्।
परमेष्ठित्वसत्त्वेन परमोपायता गुरोः॥ इति।

---

* मतभेदेन परस्परविलक्षणा—ख.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



मालिनीतन्त्रेऽपि—

स गुरुर्मत्समः प्रोक्तो मन्त्रवीर्यप्रकाशकः ।
आदिमान्त्यविहीनास्तु मन्त्रास्स्युश्शरदभ्रवत् ।
गुरोर्लक्षणमेतावदादिमान्त्यं निवेदयेत् ॥ इति ।

तादृशविवेकाख्यवृत्त्यवच्छिन्नचिच्छक्तिस्तु प्राणशक्तिविहारावसाना सुषुम्नाख्या नाड्येव विमर्शमयीत्युच्यते । श्रीगुरोस्तावद्दिव्यसिद्धमानवभेदेन रूपत्रयम् । तत्रैकैकं पुनस्त्रिविधमिति प्रकाशानन्दनाथादिसुभगानन्दनाथान्तभेदेन नवरूपता तन्त्रे प्रसिद्धा । तद्वासनामाह—तेनेति । षष्ठ्यर्थे तृतीया । तस्याः विमर्शशक्तेः देहः स्वरूपं नवरन्ध्रमयम् । श्रोत्रचक्षुर्नासानां द्वयं द्वयम् । जिह्वागुह्यपायवः एकैकमिति नवभी रन्ध्रैः स्वस्वविषयविमर्शः उपादेयोपदेशग्रहणमनुपादेयमोचनादिकं च भवतीत्यादिसाधर्म्यात्तानि विमर्शरूपाण्येव । वस्तुतः 'धान्येन धनी' इतिवदभेदे तृतीया । तदभिन्नरन्ध्रनवकवान् स्वदेह इत्यर्थः । तन्त्रराजेऽपि तस्येत्यस्य नवत्व एवान्वयः न देहपदेनान्वयः । देहरन्ध्रनवत्वेन गुरोर्नवत्वं भासत इत्यर्थः । स्वदेहगतनवरन्ध्राणि नव नाथा इति यावत् ।

तेषु श्रोत्रद्वयं वाक्च दिव्यौघः । दृग्द्वयमुपस्थश्च सिद्धौघः । इतरे मानवौघ इति सम्प्रदायः । एतद्विमर्शनवकस्य मूलभूता सुषुम्नानाड्येव, सरन्ध्रसुषुम्नामूलभागे श्रोत्रादिनाडीनां मिलितत्वेन सुषुम्नावच्छिन्नचिच्छक्तेरेव तत्तन्नाडीद्वारा तत्तद्विषयावभासकत्वात् । नाडीनामवस्थानप्रकारो यथा—

प्रागुक्तमूलाधारस्य मध्यस्थत्र्यश्रमध्यतः ।
सुषुम्नापृष्ठवंशाख्यवीणादण्डस्य मध्यगा ॥
मूर्धनि ब्रह्मरन्ध्रान्ता नासाग्राद्द्वादशाङ्गुला ।
तन्मूलात्पायुगा प्रोक्ताऽलम्बुसाख्या तु नाडिका ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



त्र्यश्राग्रादुत्थिता नाडी कुहूर्नाम ध्वजान्तगा।
तद्वामदक्षपार्श्वाभ्यां सविश्वोदरवारणे॥
जठरान्ता सर्वगा च प्रोक्ते तद्वदनन्तरे।
हस्तिजिह्वायशस्विन्यौ पादाङ्गुष्ठान्तविस्तृते॥
तथैवेडापिङ्गले द्वे नासारन्ध्रद्वयान्तगे।
गान्धारी च तथा पूषा नेत्रद्वयगते क्रमात्॥
तथैव कर्णगामिन्यौ शङ्खिनी च पयस्विनी।
जिह्वाग्रगा सरस्वत्याख्यैवं नाड्यश्चतुर्दश॥

मूलाधारे नाडीनां स्थितिक्रमो यथा—

मूलाधारे त्र्यश्रमध्ये सुषुम्नालम्बुसे उभे।
प्राक्प्रत्यगास्थिते अन्यास्त्रिकोणाग्रात्प्रदक्षिणाः॥
लेखासु संस्थिता नाड्यः कुहूश्चैव तु वारणा।
यशस्विनी पिङ्गला च पूषानाम्नी पयस्विनी॥
सरस्वती शङ्खिनी च गान्धारी तदनन्तरम्।
इडा च हस्तिजिह्वा च ततो विश्वोदराभिधा॥
रन्ध्रपायुध्वजाशेषपन्नासानेत्रकर्णगाः।
जिह्वाकर्णाक्षिनासाङ्घ्रिजठरान्ताश्चतुर्दश॥ इति।

तेनैतद्रन्ध्रनवककार्यभूतस्वस्वविषयविमर्शनवकसमष्टिं गुर्वभेदेन भावयेदिति सिध्यति। केचित्तु—श्रोत्राद्यवयवानां तत्तन्नाडीनां च तत्तन्नाथाभेदभावनमिच्छन्ति॥

## नवचक्ररूपं श्रीचक्रम्॥ ३॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



देह इत्यनुवर्तते। स्वकीयो देह एव त्रैलोक्यमोहनादिनवचक्र-समष्टिरूपश्रीचक्राभिन्नः। अवान्तरचक्रविभागस्तु आवरणदेवतास्थानैर्व्यक्ती-भविष्यति। तानि च स्थानानि शाखाभेदैर्नैव विवृतानि, रहस्यत्वात्। अत एव तन्त्रराजेऽप्यनुक्तानि, नित्याषोडशिकार्णवे विवृतत्वात्। तदिदमुक्तं बिन्दुसूत्रे 'अपरशिवोदितव्याकुलस्थाननिर्णीतिचणदेशिकप्रसादाधिगतविभाव-नारहस्यमुपह्वरम्' इति। एकश्शिवस्तन्त्रकर्ता प्रसिद्धः। अपरश्शिवो वेदपुरुषः तेनापि व्याकुलतया शाखाभेदेनोक्तानां स्थानानां, निर्णयनसमर्थस्य गुरोः प्रसादादधिगतं यदीयविभावनारहस्यं तादृशदेहरूपं श्रीचक्रं अपरोक्षानु-भवोपायेषु रहस्यं इत्युपह्वरमिति तदर्थः पद्मपादाचार्यैर्वर्णितः। अट्टशूला जनपदाश्शिवशूलाश्चतुष्पथाः' इति भारतश्लोके शिवशब्दस्य वेदपरत्वेनैव प्रयोगात् अपरशिवैश्शाखान्तरैरित्यप्यर्थः सुवचः॥

## वाराही पितृरूपा कुरुकुल्लाबलिदेवता माता॥४ पुरुषार्थास्सागराः॥ ५॥

स्वदेहे ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियबुद्ध्यादिषु संक्रान्ता ये जनकजनन्योरंश-विशेषाः अस्थ्यादिमांसादिरूपास्ते वाराहीत्वेन कुरुकुल्लात्वेन क्रमाद्भावनीयाः। वाराह्याः स्त्रीत्वेपि तन्मुखस्य पुंरूपत्वात्पितृरूपतोपपत्तिः। पश्चिमाद्युत्तरान्तदिक्षु विद्यमाना इक्षुसुराघृतक्षीरसागराः स्वीयधर्मादिपुरुषार्थचतुष्टयरूपाः। तन्त्रराजे-ऽप्युक्तम्—

वलिदेव्यः स्वमायास्स्युः पञ्चमी जनकात्मिका।
कुरुकुल्ला भवेन्माता पुरुषार्थास्तु सागराः॥ इति।

अत्र प्रथमश्चरणश्शाखान्तरमूलकः सर्ववेदान्तप्रत्ययन्यायेनोपास्त्यैक्येऽपि न तस्योपसंहारः, कुरुकुल्लाया एव बलिदेवतात्वविशेषणसामर्थ्यात्। अतस्मि-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



स्तद्बुद्धिं जनयित्वा उन्मार्गप्रवर्तिकाश्शक्तयः स्वमायापदेनोच्यन्त तु इति मनोरमाकारः ॥

## देहो नवरत्नद्वीपः ॥ ६ ॥

## त्वगादिसप्तधातुरोमसंयुक्तः ॥ ७ ॥

## सङ्कल्पाः कल्पतरवस्तेजः कल्पकोद्यानम् ॥

त्वगादिरित्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः, तेन त्वगेका रुधिराद्यस्थ्यन्तास्सप्त लोमानि चेति नवकं नवरत्नात्मकं खण्डनवकमिति सिध्यति। अत्रायं सम्प्रदायलभ्योऽर्थः—रसमांसरोमत्वङ्रुधिरशुक्रमज्जास्थिमेदांसि पुष्यरागनीलवैडूर्यविद्रुममौक्तिकमरकतवज्रगोमेधपद्मरागात्मकनवरत्नमयखण्डरूपाणि प्रतीच्यादिनिर्ऋत्यन्तदिक्षु[1] मध्येऽवस्थितानीति विभावयोदिति । 'सर्वशाखाप्रत्ययमेकं कर्म' 'सर्ववेदान्तप्रत्ययमेकमुपासनम्' इति पूर्वोत्तरमीमांसान्याभ्यां गुणोपसंहारस्यावश्यकतया कालचक्रेश्वर्यादिदेवतानवकाभेदोऽप्येतेष्वेव धातुषु शाखान्तरोक्तो विभावनीयः । तत्प्रकारः प्रयोगविधौ स्पष्टीकरिष्यते । मानसास्सङ्कल्पविशेषा एव सन्तानादिकल्पवृक्षाः, सङ्कल्पपुरस्सरं कर्मसु प्रवृत्त्याऽभिमतफलसिद्धेः । तेषामाधारभूतं तेजो मन एव कल्पकोद्यानम् । 'मनो ज्योतिः'* इति श्रुतिव्यवहारादिह सङ्कल्पविकल्पात्मकं मन एव तेजःपदेनोच्यते ॥

## रसनया भाव्यमाना मधुराम्लतिक्तकटुकषायलवणरसाष्षडृतवः ॥ ९ ॥

---

[1] मध्ये च स्थि.      * तै. सं. १-५-२.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



मधुरादयो यदा रसनयानुभूयन्ते तदा तादृशानुभूयमानत्वविशिष्टेषु तेषु वसन्तादिऋतुत्वभेदभावनं, केवलानां तु तेषां स्वभिन्नपदार्थान्तरनिष्ठत्वेन मनसः पराग्वृत्त्यापत्तेः, अस्या भावनायाः प्रत्यग्वृत्त्यभ्यासरूपत्वेन तदितरनिरोधायोगात्। अत एव रसनाभाव्यत्वविशेषणम्। तेन त्वगादिनिष्ठानां व्यावृत्तिरपि फलति ॥ तन्त्रराजे तु—

रत्नद्वीपो भवेद्देहो नवत्वं तु त्वगादिभिः।
सङ्कल्पाः कल्पतरवः स्वाधारा ऋतवस्स्मृताः ॥

इत्युक्तम्। अत्र स्वाधारपदेन डाकिन्यादियोगिनीषट्काधारभूतानि सुषुम्नान्तर्गतानि षट्चक्राण्युच्यन्ते। सुषुम्नाया इडापिङ्गलात्मकचन्द्रार्कसंयोगेनानुमितकालात्मकतया तद्गतानां चक्राणामृत्वात्मकत्वं युक्तमिति व्याचक्षते। वस्तुतः प्रत्यक्षश्रुत्यनुरोधात्स्वानुभूयमानरसपरत्वमेव स्वाधारपदस्य युक्तम्। ननु भाव्यमान इति शानचा वर्तमानकालकथनात् उपास्तिकाले अनुभूयमानरसाभाव इति चेत्, न, अनुभवानामेव संस्कारात्मना तदानीमपि सत्त्वात्, स्वमात्मा आधारस्समवायी येषामिति व्युत्पत्त्या स्वाधारपदस्य रसानुभवजन्यसंस्कारपरत्वस्यैव सुवचत्वात्, डाकिन्यादीनामितःपूर्वमनुपस्थिततया स्वपदेन तत्परामर्शायोगात्, वैद्यके ऋतुभेदेन रसव्यवस्थायाः कथनेन ऋतुरससंस्कारयोरभेदस्य युक्तत्वाच्च। एवंरीत्योपपत्तौ शाखान्तरमूलकत्वानुमितेरप्रसङ्गाच्च। इहाश्वगजानां परिखामण्टपयोश्च भावनोपसंहारः॥

## ज्ञानमर्घ्यं ज्ञेयं हविः ज्ञाता होता ज्ञातृज्ञानज्ञेयानामभेदभावनं श्रीचक्रपूजनम् ॥१०॥

एतच्चोपबृंहितं तन्त्रराजे—

ज्ञाता स्वात्मा भवेद्ज्ञानमर्घ्यं ज्ञेयं हविः (बहिः) स्थितम्।
श्रीचक्रपूजनं तेषामेकीकरणमीरितम् ॥ इति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



ज्ञानशब्दो घटादिज्ञानपरः, अर्घ्यशब्दः पूजासामग्रीपरः, ज्ञेय(बहिः)शब्दो बाह्यविषयमात्रपरः। यावानिदंताविषयस्स सर्वोऽपि हविष्ट्वेन श्रुतौ निर्दिष्टः; नैवेद्यमिति यावत्। अत एवार्घ्यशब्दस्तदितरविशेषार्घ्यपरतया संकोच्यः। पूज्या देवता तु चिद्रूपा प्रसिद्धत्वान्नोक्ता। अहन्ताविषयो ज्ञाता पूजकः प्रकृतत्वाद्विशिष्य श्रुतावनुक्तोऽपि तन्त्रे निर्दिष्टः। स्वात्मचैतन्याद्भेदेन प्रतीयमानानां ज्ञातृज्ञानज्ञेयानां भेदकनामरूपाननुसन्धानपूर्वकं चिन्मात्ररूपतया विभावनमिह विधीयते। तन्त्रे भावे ल्युडन्तपूजनपदार्थस्तु त्रितयाभेदमात्रं, न त्वभेदविभावनम्। लोके हि विशेषार्घ्यजलबिन्द्वादेर्नैवेद्यस्य स्वात्मनश्च देवतायां समर्पणरूपसम्बन्ध एव पूजा। तद्वत्प्रकृतेऽपि त्रयाणां चिता सह तादात्म्यस्यैव तथात्वमुचितम्। तदनुकूला कृतिर्हि विभावनमत्राभिधीयते। विभावनस्यैव पूजनपदार्थत्वे विभावनपूजनयोरभेदेन विभावनान्तरमापद्येत। तेन करणेल्युडन्तः श्रौतः पूजनशब्दः पूजानुकूलकृतिपर इति द्योतनायैकीकरणमित्युपबृंहितम्॥

## नियतिः शृङ्गारादयो रसा अणिमादयः। कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यपुण्यपापमय्यो ब्राह्म्याद्यष्टशक्तयः॥ ११॥

नियतिः प्रारब्धमेकम्। शृङ्गारादयो नव। आदिपदाद्भयानकरौद्रबीभत्सहास्यवीरकरुणाद्भुतशान्तपरिग्रहः। एतेषां दशानां क्रमेणाणिमादिसिद्धिदशकाभेदः। अत्र क्रमे मूलं विन्दुसूत्रतो ज्ञेयं, शृङ्गारादीत्यादिपदेन गृहीतानां क्रमस्याज्ञातत्वेनान्यतो ग्रहणस्योचितत्वात्। कामाकर्षिण्यादिवक्ष्यमाणवासनानां तु पाठक्रमेण निर्णयसम्भवान्निधिकारोक्तव्युत्क्रमो यावन्मूलदर्शनं न विश्वसनीयः। अत्र मयट्प्रत्ययो ब्रह्ममयं जगदित्यादाविवाभेदार्थकः। यत्तु तन्त्रराजे—

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



श्रीचक्रे सिद्धयः प्रोक्ता रसा नियतिसंयुताः ।
ऊर्मयः पुण्यपापे च ब्राह्म्याद्या मातरस्स्मृताः ॥

इत्युक्तम्, तत्राप्यूर्मिशब्दः कामाद्यरिषड्वर्गपर एव; पुराणेषु कामादेरप्यूर्मिपदेन क्वचिद्व्यवहारदर्शनात् । तेन क्षुधापिपासाशोकमोहजरामरणपरत्वेन परेषां व्याख्यानं प्रत्यक्षश्रुतिविरोधादनादेयम् ॥

## आधारनवकं मुद्राशक्तयः ॥ १२ ॥

## पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पादपाणिपायूपस्थानि मनोविकारः कामाकर्षिण्यादिषोडशशक्तयः ॥ १३ ॥

मूलाधारादिषट्कमूर्ध्वाधस्सहस्रदलकमले द्वे लम्बिकाग्रमेकमिति नवाधाराः । तेषामेव समष्टिरेकेति दश । एतैस्संक्षोभिण्यादित्रिखण्डान्तमुद्राभिमानिशक्तिदशकस्याभेदः । तन्त्रान्तरेषु तृतीयरेखादेवताभावात्तदनुयायिबिन्दुसूत्रोक्तानां आवरणदेवतास्थानानामिह (न) ग्रहणम् । अन्ये तु योगिनीहृदयस्यापि कादिमतानुयायित्वात्तत्र मुद्रादेवतानां शरीरावयवेषु अवस्थानकथनात्तान्येव स्थानानि ग्राह्याणि । एतदुपनिषदुक्तदेवताविभावनस्य पूजान्यासोभयरूपतायाः निधिकारादिसाम्प्रदायिकसम्मतत्वात् । तेन कतिपये न्यासधर्मास्तन्त्रोक्ता इह योजनीया इत्याहुः । तेच 'चतुरश्राद्यरेखायै नम इत्यादितो न्यसेत्' इत्यादयः प्रयोगविधौ उपसंहरिष्यन्ते । प्रत्यावरणमेकैकस्यास्सिद्धेर्मुद्रायाश्च विभावनमग्रे विधास्यते । तत्तच्चक्रेश्वरीविभावनमप्यन्यत्रोक्तमुपसंहार्यम् । पञ्च भूतानि एकादशेन्द्रियाणि च सर्वाशापरिपूरकचक्रस्थदेवताभिन्नाः । अत्र विकारशब्दष्षोडशसङ्ख्यापरः । मनोविकार इत्येकं पदं वा—विकृतं मन इत्यर्थः; 'कृदभिहितो भावो द्रव्यवत्प्रकाशते' इति व्युत्पत्तेः । तेन 'मन इक्षुधनुः' इत्यनेन न पौनरुक्त्यम् ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



**वचनादानगमनविसर्गानन्दहानोपादानोपेक्षाख्यबुद्धयोऽनङ्गकुसुमाद्यष्टौ ॥ १४ ॥**

कर्मेन्द्रियाणां वचनादयो विषयाः पञ्च। हानं त्यागः। उपादानं ग्रहणम्। उपेक्षा औदासीन्यम्। ईदृशबुद्धित्रयं चेत्यष्टौ। इदमेव बुद्धित्रयं दोषपदेनोक्तं तन्त्रराजे—

भूतेन्द्रियमनांस्येव क्रमान्नित्याः कलाः पुनः।
कर्मेन्द्रियार्थदोषाश्च ज्ञेयाः स्युः शक्तयोऽष्टधा ॥

इति। वातपित्थकफा दोषा इत्यन्ये।

**अलम्बुसा कुहूर्विश्वोदरा वारणा हस्तिजिह्वा यशोवती पयस्विनी गान्धारी पूषा शङ्खिनी सरस्वती इडा पिङ्गला सुषुम्ना चेति चतुर्दश नाड्यस्सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दश शक्तयः॥१५**

नाथनवकव्याख्यानावसरे नाडीनां स्वरूपं प्राग्विवृतं, तदभिन्ना मन्वश्रदेवताः। एतासां नाडीनां पूर्वोक्तपृथिव्यादिषोडशकस्य च व्युत्क्रमो भूयानेव निधिग्रन्थे दृश्यते। श्रौतक्रमबोधकप्रत्यक्षश्रुतिमन्तरेणाऽत्रत्यपाठक्रमबाधस्यायोगात्तत्र मूलं चिन्त्यम्॥

**प्राणापानव्यानोदानसमाननागकूर्मकृकरदेवदत्तधनञ्जया दश वायवस्सर्वसिद्धिप्रदादिबहिर्दशारदेवताः ॥ १६ ॥**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



एतद्वायुसंसर्गकोपाधिभेदेन रेचकः पाचक-श्शोषको दाहकः प्लावक इति प्राणमुख्यत्वेन पञ्चधा जठराग्निर्भवति ॥१७॥

क्षारक उद्गारकः क्षोभको जृम्भको मोहक इति नागप्राधान्येन पञ्चविधास्ते मनुष्याणां देहगाः भक्ष्यभोज्यचोष्यलेह्यपेयात्मकं पञ्चविधमन्नं पाचयन्ति ॥१८॥

एता दश वह्निकलास्सर्वज्ञाद्या अन्तर्दशारगा देवताः ॥ १९ ॥

प्राणाद्याः पञ्च महावायवः नागाद्याः उपवायवः पञ्चेत्येवं दशापि सर्वार्थसाधकचक्रस्थदेवताभिरभिन्नाः । तन्त्रराजेऽपि—

नाड्यश्चतुर्दश प्रोक्ताः क्षोभिण्याद्यास्तु शक्तयः ।
वायवो दश सम्प्रोक्ताः सर्वसिद्ध्यादिशक्तयः ॥ इति ॥

एकस्यैवौदर्याग्नेः प्राणादिदशवायुसम्बन्धेनौपाधिकत्वं वाक्यद्वयेन विवृतम् । तृतीयवाक्येन पाचकस्य कार्यम् । चतुर्थवाक्येन सर्वार्थसाधकचक्रस्थदेवताभिरभेद उक्तः । धातुसप्तके दोषत्रये च विद्यमानत्वाद्दशधात्वमग्नेरन्ये मन्यन्ते । तन्त्रराजे तु—



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



वह्नयो दश सम्प्रोक्तास्सर्वज्ञाद्याश्च शक्तयः ॥

इत्यत्र सम्प्रोक्ता इत्यस्य श्रुतौ कथिता रेचकादय इत्येवार्थः। केचित्प्रोक्तपदं वक्ष्यमाणार्थकं मन्यन्ते। तस्मिन्नेव पटले—

वह्निर्वह्निश्शुचिस्तेजः प्रभा दावः शिखी द्युतिः।
दाहो ग्रासः . . . . . . ॥

इति नामदशकस्योत्तरत्र कथनात्। परन्तु प्रयोगे मन्त्रघटकता श्रौतनाम्नामेवोचिता, *"विधिशब्दस्य मन्त्रत्वे" इति दाशमिकाधिकरणन्यायात्॥

## शीतोष्णसुखदुःखेच्छास्सत्वरजस्तमोगुणाः वशिन्यादिशक्तयोऽष्टौ ॥२०॥

शीतोष्णे सुखदुखे चेति द्वन्द्वद्वयम्, इच्छैका, सत्त्वादित्रयमित्यष्टौ वाग्देवताष्टकरूपाः। तन्त्रराजेऽपि—

शीतोष्णसुखदुःखेच्छागुणाः प्रोक्ताः क्रमेण वै।
वशिन्याद्याश्शक्तयस्स्युः . . . . ॥ इति ॥

## शब्दादितन्मात्राः पञ्च पुष्पबाणाः ॥ २१ ॥

## मन इक्षुधनुः ॥ २२ ॥

## राग पाशः ॥ २३ ॥

## द्वेषोऽङ्कुशः ॥ २४ ॥

शब्दस्पर्शरूपरसगन्धास्तन्मात्रपदेनोच्यन्ते। ते च मुखे अभिमुखाः, अन्ते परुषाः, अत एव बाणाभिन्नाः। अविकृतं तु मनः पुण्ड्रेक्षुचापरूपम्, विषयपरामर्शरूपाणामिन्द्रियाणां प्रेरकत्वात्। रागः प्रीतिः षट्त्रिंशदन्तर्गता

* जैमिनिसू. १०-४-२२.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



तत्त्वविशेषः ; न त्विच्छासामान्यम् । तेनारुणावाग्देवताकसनया न पौनरुक्त्यम् । बन्धकत्वेन साम्यात्तस्य पाशाभेदः । द्वेषः क्रोधः ; तस्य द्वेष्यान्निवारकत्वादङ्कुशता । उक्तं च रहस्यनामसाहस्रे––

रागस्वरूपपाशाढ्या क्रोधाकाराङ्कुशोज्ज्वला ।
मनोरूपेक्षुकोदण्डा पञ्चतन्मात्रसायका ॥ इति ॥

तन्त्रराजेऽपि––

. . . . तन्मात्राः पुष्पसायकाः ॥
मनो भवेदिक्षुधनुः पाशो राग उदीरितः ।
द्वेषस्स्यादङ्कुशः प्रोक्तः क्रमेण वरवर्णिनि ॥ इति ॥

## अव्यक्तमहदहङ्काराः कामेश्वरीवज्रेश्वरीभगमालिन्योऽन्तस्त्रिकोणगा देवताः ॥ २५ ॥

अत्र महदव्यक्तशब्दौ बुद्धिप्रकृतितत्त्वपरौ । अव्यक्तादिपदत्रये समाहारद्वन्द्वः । परन्तु न यथासङ्ख्यं त्रितययोरभेदः ; अपि तु 'अव्यक्ताहङ्कृतिमहदाकाराः प्रतिलोमतः कामेश्वर्यादिदेव्यः स्युः' इति तन्त्रोपबृंहणानुरोधेन व्युत्क्रमेण वासनाः ॥

अत्र मुख्यविशेष्या ललिता । विशेष्यतावच्छेदकः कामेश्वरः । अनयोश्च रक्तचरणशुक्लचरणरूपते रक्तशुक्लवर्णौ, अनयोरेव सम्बन्धविशेषः । तस्यैव स्थूलसूक्ष्ममिश्रचरणत्वं चेति त्रिविधं रूपम् । प्रकारत्वेन विषय उपासकः । तस्य मुख्यविशेष्येण सह सम्बन्धः प्रकारतावच्छेदकश्चेत्येकादश पदार्थान् त्रिभिर्वाक्यैर्विवेचयति निरुपाधिकेत्यादिभिः––

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



## निरुपाधिकी संविदेव कामेश्वरः ॥ २६ ॥

उपाधिरहितं शुद्धं चैतन्यमेव बिन्दुरूपः कामेश्वरः; 'संवित्कामेश्वरस्स्मृतः' इत्युपबृंहणात् ॥

## सदानन्दपूर्णा स्वात्मैव परदेवता ललिता ॥२७॥

संविदो निरुपाधिकत्वविशेषणबलात्तदङ्कनिलयायाः परदेवतायाः किञ्चिदुपाधिविशिष्टत्वमात्रेण ततो भिन्नतयोपास्यत्वम्। तादृशश्च स्वात्मैव। स्वाभिन्न एव परदेवता उपास्तिरूपज्ञानविशेषनिरूपितमुख्यविशेष्यताशालिनी। तामेवासाधारणनाम्ना निर्दिशति ललितेति। अत्र सदानन्दपूर्णेत्युपाधिकथनम्। तेनान्तःकरणावच्छिन्नस्य न ललितात्वं, तस्योपासककोटौ प्रवेशात्। अत एव स्वात्मेत्युक्तं स्वस्योपासकस्यात्माऽन्तर्यामीति तदर्थत्वात्। इत्थं च एक एवात्माऽन्तःकरणोपाधिकस्सन्नुपासको भवति। सत्त्वचित्त्वानन्दत्वरूपधर्मत्रयविशिष्टवेषेण ललिता भवत्युपास्या। धर्मत्रयविनिर्मुक्तं धर्मिमात्रमुपास्यदेवताधारभूतः कामेश्वरो भवतीति विवेकः। तदुक्तं रत्नत्रयपरीक्षायाम्-

नित्यं निर्दोषगन्धं निरतिशयसुखं ब्रह्मचैतन्यमेकं
धर्मो धर्मीति भेदद्वितयमिति पृथग्भूय मायावशेन।
धर्मस्तत्रानुभूतिस्सकलविषयिणी सर्वकार्यानुकूला
शक्तिस्स्वेच्छादिरूपा भवति गुणगणस्याश्रयस्त्वेक एव ॥
कर्तृत्वं तत्र धर्मी कलयति जगतां पञ्चसृष्ट्यादिकृत्ये
धर्मः पुंरूपमाप्त्वा सकलजगदुपादानभावं बिभर्ति।
स्त्रीरूपं प्राप्य दिव्या भवति च महिषी स्वाश्रयस्यादिकर्तुः
प्रोक्तौ धर्मप्रभेदावपि निगमविदां धर्मिवद्ब्रह्मकोटी ॥ इति ॥

## लौहित्यमेतस्य सर्वस्य विमर्शः ॥२८॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



सर्वपदेन कामेश्वरो ललिता स्वयं चेति त्रितयम् । एतस्य विमर्शो-ऽनुसन्धानमेव देवीनिष्ठं लौहित्यं, सर्वस्य स्वात्मन्यनुरागात् रागलौहित्ययोर-भेदात् । उक्तं च तन्त्रराजे—

स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा ।
लौहित्यं तद्विमर्शः स्यादुपास्तिरिति भावना ॥ इति ॥

अत्रेदं गुरुमुखैकवेद्यं रहस्यम्—निरुपाधिकपदेन केवलत्वस्य सदानन्द-पूर्णपदेन धर्मविशिष्टत्वस्य च कथनेन विशिष्टकेवलयोरवयवावयविनोरिवायुत-सिद्धयोस्तादात्म्यरूप एव सम्बन्धः न संयोगादिरूपो भेदघटितः । स च त्रिपुरसुन्दरीकामेश्वरयोर्विग्रहात्मकस्थूलरूपद्वयसम्बन्धः कामेश्वराङ्कनिलयत्व-पदेन व्यवह्रियमाणशिवशक्तिसामरस्यात्मको लाक्षाद्रवपटयोरिव संयोगविशेष एवेति वासना । एवमुपाधिविनिर्मुक्तस्यैव शुद्धत्वेन स्फटिके वर्णान्तरोपरागा-भावदशायमेव अभिव्यज्यमानत्वस्य शुक्लत्वस्य शुद्धस्फटिकाभेद एव पर्यवसि-तत्वेन कामेश्वरे शुक्लचरणत्ववासना । अनुसन्धानस्याहमात्मकमानसवृत्तिविशेष-मात्ररूपत्वेन तद्विषयतायाः, विषयतासम्बन्धेन वृत्तेर्वा वृत्तिसम्बन्धेन मनस एव वा रागाभेदेन पर्यवसानाच्चद्विशिष्टायां रक्तचरणत्ववासना । सर्वस्येत्यनेन विषयताया विशेष्यविशेषणतत्सम्बन्धेषु व्याप्तिकथनाच्चरणप्रभयोस्समरसभाव-सम्बन्धरूपमिश्रचरणस्यापि वासना सूचिता भवतीति दिक् । तन्त्रश्लोके 'गुरुराद्या भवेच्छक्तिः' इत्यादिनोक्तानां वासनानामनुसन्धानमुपास्तिपदवाच्य-मिति कथनार्थश्चतुर्थचरणः । अथ वा—उपास्तेरपि त्रीणि रूपाणि; विग्रहादिपूजनं स्थूलरूपं, मानसो जपस्सूक्ष्मं, एषा भावना परं रूपमिति । न पुनरुपास्तिवासनाविभावनविधिरिति भ्रमितव्यम् ॥

## अनन्यचित्तत्वेन च सिद्धिः ॥ २९ ॥

प्रत्यावरणमेकैका सिद्धिरेकैका मुद्रा च बहिर्यागे पूज्यते । तद्वासना-विधानार्थमियं श्रुतिः ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अनन्यचित्तत्वेनेत्यभेदे तृतीया। चकारो मुद्रासङ्ग्रहार्थः। तथा चोपबृंहितं तन्त्रराजे—

सिद्धिस्त्वनन्यचित्तत्वं मुद्रा वैभवभावनम्। इति॥

तत्तदावरणदेवानां स्वशरीरावयवविशेषाभेदेन भावितानामपि स्वात्मानन्यत्वेन चित्ते भावनमेव तत्तदावरणस्था सिद्धिः। 'एता मत्तो न भिद्यन्ते' इति बुद्धिरेव सिद्धिरिति यावत्। सिद्धिपदमुपास्तिफलसिद्धिपरमिति केचित्। तत्पक्षे अव्यवहितपूर्वोक्तभावनायां विषयतावैलक्षण्यप्रयुक्तभेदस्य अनिरासेनोपासना फलतीत्यर्थः। वस्तुतो वक्ष्यमाणतर्पणे विषयवैलक्षण्यनिरासादयं ग्रन्थस्सिद्ध्यादिपर एव। तासामेव वैभवं विभुत्वमपरिच्छिन्नता। तद्भावनमेव तत्तदावरणस्थमुद्राभावनमित्यर्थः॥

# भावनायाः क्रिया उपचाराः॥३०॥

उक्तायाः स्वात्माभेदेन ललिताभावनायाः क्रियाः पुनःपुनःकरणानि धारावाहिन्यो भावना इति यावत्। उपचारसमर्पणस्य भेदघटितत्वेन यथास्थितगन्धादिभावनापक्षे पूर्वविभावितस्य भेदस्य प्रमोषापत्तेस्तदविरोधिनीरेवोपचारभावनाः स्वेच्छया कल्पयेदिति भावः। तदुक्तं तन्त्रराजे—

उपचाराश्चलत्वेऽपि तन्मयत्वाप्रमत्तता॥ इति॥

चलत्वं चाञ्चल्यं समेदभावनास्थैर्याभावः, तादृशस्वभावशीलत्वेऽपि ब्रह्ममयत्वांशे प्रमादाभावोऽतीव सावधानता यथा स्यात्तथा विभावना एवोपचार इति तदर्थः। यद्यपि चलशब्दोऽवश्यंभाविप्रमादस्वप्नाद्यवस्थापरत्वेन मनोरमायां व्याख्यातः, तथाप्यपिशब्दस्वारस्येन जाग्रत्काले सवधानतामात्रावश्यकतापरैव सोक्तिरिति मन्तव्यम्। तादृशोऽप्रमादश्च योगवासिष्ठोक्तशिवपूजायां द्रष्टव्यः। आत्मनो विषयोपभोगजनितानन्दस्य सर्वस्य स्वात्माभेदेनानुसन्धानं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



प्रारब्धलब्धसुखदुःखस्यापि कर्मक्षयकारकत्वेन परिणामसुखावहत्वात्कटुकषाय-वस्तुकृतस्वाङ्गोद्वर्तनादेरिव भावनया सपर्यारूपतैवेति तत्रत्यो निष्कर्षः। 'सपर्यापर्यायस्तव भवतु यन्मे विलसितम्'* इत्यादयो भगवत्पादादीनामुक्तयो-ऽप्यमुमेवार्थं वदन्ति। परन्त्वीदृशपूजाया अहोरात्रकालसाध्यत्वेन प्रकृते विधित्सितायाश्च भावनाया उत्तरत्र मुहुर्तादिकालनियमविधिना विरोधादन्ये उप-चाराः कल्पनीयाः। तत्प्रकारो यथा—स्वे महिम्नि प्रतिष्ठितिविभावनमासनम्। 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि'† इति श्रुत्या पादरूपे वियदादिप्रपञ्चे अस्तिभाति-प्रियांशमात्रभावनारूपाभिरद्भिर्नामरूपमलक्षालनं पाद्यम्। तस्यैव सूक्ष्मप्रपञ्चस्य एकदेशत्वाविशेषाध्यस्तत्वेनापि परिकल्पनया उक्तरीत्या मलनिरासोऽर्घ्यम्। भावनारूपजलस्यापि कबलीकार आचमनम्। सत्त्वचित्त्वानन्दत्वाद्यखिलाङ्गा-वयवाभेदेन भावनाजलसम्पर्कः स्नानम्। तेष्वेवावयवेषूक्तजलसम्पर्केण प्रसक्ताया वृत्तिविषयतायाः प्रच्छन्नभावनं वस्त्रम्। निर्विषयत्वनिरञ्जनत्वाद्यनेकब्रह्मलिङ्ग-भूततदभिन्नधर्मविभावनमाभरणम्। स्वशरीरान्तर्गतपार्थिवनाभसवायवीयतैजस-भागानां चन्द्रमण्डलस्थामृतस्य तन्मण्डलस्य च जडभागापनयनपूर्वकं सच्चि-दानन्दमात्रावशेषेण ब्रह्ममयत्वविभावनानि गन्धादिताम्बूलान्ताण्युपचाराः उक्तं नित्याहृदये—

अर्चयेत् त्वन्मयैरेव नैवेद्यादिभिरर्चयेत्। इति।

पञ्चभूतमयं विश्वं तन्मयी सा सनातनी॥ इति च।

प्रकृतभावनाङ्गमन्त्रे परापश्यन्तीत्यादिनिखिलशब्दानां स्वीयानां नादद्वारा ब्रह्म-ण्युपसंहारविभावना स्तोत्रम्। चित्तवृत्तीनां विषयेष्वितस्ततो धावमानानां विषय-गतजडतानिरासपूर्वकं ब्रह्मणि विलापनं प्रदक्षिणम्। विषयेभ्यः परावर्तनेन वृत्तीनां ब्रह्मैकप्रवणता नमस्कार इति। यद्यपि 'बाह्यान्तःकरणानां एकरूप-स्थितिरासनं' इत्यादीनि वाक्यानि मूलेऽपि क्वचिद्दृश्यन्ते। तथापि तेषु कति-

---

* सौन्दर्यलहरी. † तै. आ. ३-१२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



पयानामुपचाराणां प्रकृतभावनानुगुण्याभावाद्बहुषु पुस्तकेष्वनुपलम्भात्तन्त्रेषु तदुपबृंहणादर्शनाच्च तान्यस्माभिरिह नादृतानि ॥

**अहं त्वमस्ति नास्ति कर्तव्यमकर्तव्यमुपासितव्यमिति विकल्पानामात्मनि विलापनं होमः ॥ ३१ ॥**

सन्ति श्रीचक्रे पूर्वभावितेभ्यो अन्या अप्यनन्ताश्शक्तयः—

**अन्यास्तु शक्तयश्चक्रगामिन्यो यास्त्वनन्तनः ।**
**तास्तु विश्वविकल्पानां हेतवः समुदीरिताः ॥**

इत्यादिना तन्त्रे वर्णिताः । तासां त्रिपुरसुन्दर्यभेदभावनाफलिकां होमवासनामाह—अहमित्यादिना । तेन नैवेद्याङ्गहोमस्य उपचाराद्बहिः पार्थक्येन कथनस्य नासाङ्गत्यम् । तथा च विसर्जनात्मकोपचारपराण्येव 'अहम्' इत्यारभ्य त्रीणि वाक्यानीति पर्यवसन्नम् । युष्मदस्मत्प्रत्यययोरहं त्वमित्यनेन ग्रहणम् । 'अस्ति नास्ति' इत्यनेन लौकिकयोर्विधिनिषेधयोः, 'कर्तव्यमकर्तव्यं' इत्यनेन वैदिकयोः कर्मकाण्डस्थयोः, 'उपासितव्यम्' इत्यनेन वेदशिरस्थविधेर्ग्रहणम् । 'नोपासीत' इति निषेधस्योपनिषत्स्वदर्शनादेव तदनुल्लेखः । एतत्सप्तकेन वृत्तिसामग्र्युपलक्ष्यते । ईदृशविकल्पानामप्यात्मस्वरूपत्वमात्माविशेषविभावनमेव होमभावना ॥

**होमो विश्वविकल्पानां स्वात्मन्यस्तमयो दृढम् ।**

इत्युपबृंहणात् । विकल्पानां निर्व्युत्थानविलापनपूर्वकं तद्धेतुशक्तिकदम्बस्य देवतायां विलीनतां भावयेदिति फलितार्थः ॥

**भावनाविषयाणामभेदभावना तर्पणम् ॥ ३२ ॥**

श्रीगुर्वादिविशेषहोमान्ता यावन्तः पदार्था इह भाविता ये च भावयिष्यन्ते तेषां सर्वेषामपि परस्पराभेदभावनेन विषयतावैलक्षण्यप्रयुक्तभेदभावनस्यापि

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



निगरणेन निर्विकल्पतुरीयाखण्डविषयतामापाद्य तस्या अपि त्यागेन स्वात्ममात्रावशेषः तर्पणवासना । यद्यपि—

**ताम्बूलमर्चना स्तोत्रं तर्पणं च नमस्क्रिया ।**

इति परिगणितमुपचारान्तरमेव तर्पणं, तथापि तदिहावरणदेवतो[1]पचाररूपत्वाद्विसर्जनैकदेश एव स्वेतरभावननिरोधकत्वात्तर्पणतापि ।

**एषामन्योन्यसंभेदभावनं तर्पणं स्मृतम् ।**

इति तन्त्रराजे एषामित्यस्य न्यासजपहोमानामिति संकुचितं निषिक्तो व्याख्यानं श्रुतिविरोधादनादेयम् ॥

एतावता प्रबन्धेन देहरूपश्रीचक्रस्य स्वात्ममात्रावशेषतामुक्त्वा तेन सह बहिरङ्गसम्बन्धशालिनः प्रपञ्चस्यापि स्वात्मनि विलापनमाह—

## पञ्चदशतिथिरूपेण कालस्य परिणामावलोकनं पञ्चदश नित्याः ॥

स च प्रपञ्चस्त्रिविधः—कालरूपो देशरूप उभयरूपश्चेति । तत्राद्यो यथा—चन्द्रमण्डलनिष्ठसादाख्यकलातिरिक्ताः 'दर्शा दृष्टा दर्शता'* इत्यादिश्रुतिपरिगणिताः पञ्चदश कलास्सन्ति तावत् प्रतिपदादिपूर्णिमान्ततिथिरूपास्ता एव च कामेश्वर्यादिचित्रान्तनित्याभिरभिन्नाः । सादैव तु ललिता । ईदृशस्य च नित्यं परिवर्तमानस्य कालरूपतिथिचक्रस्यान्तरेव श्रीचक्रं तिष्ठति, न वहिः । द्वितीयो यथा—भूगोलस्योत्तरभागे स्थितो मेरुः तद्दक्षिणतो जम्बूप्लक्षशाल्मलिकुशक्रौञ्चशाकपुष्कराख्यास्सप्त द्वीपाः । तेषामन्तरालेषु भूगोलस्य वलयाकारा लवणेक्षुसुरा सर्पिर्मधुक्षीराख्याः षट् समुद्राः, पुष्कराद्बहिर्मधुरोदस्समुद्रस्सप्तमः । ततोऽपि दक्षिणतः परं व्योमेत्येवं षोडश देवताः ।

[1] पसंहार· * तै. ब्रा. ३-१०-१.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



तेषु मेर्वादिव्योमान्तेषु क्रमेण ललितादिचित्रान्ताः नित्याः युगप्रथमवर्षे तिष्ठन्ति। द्वितीये तु वर्षे जम्बूद्वीपादिमेर्वन्तेषु च गच्छन्ति। तृतीये तु लवणसागरादि-जम्बूद्वीपान्तेष्वित्यादिरीत्या षोडशवर्षे परव्योमादिमधुरसमुद्रान्तदेशेषु ललिताद्याष्षोडश नित्यास्तिष्ठन्ति। एवं षोडशभिष्षोडशभिर्वर्षैर्नित्यानामेकैका परिवृत्तिः। ईदृशदेशरूपचक्रस्याप्यन्तरेव श्रीचक्रं न बहिः। तृतीयो यथा—भूगोलस्योपर्यधश्च वलयिताश्चन्द्रबुधशुक्ररविभौमगुरुशनिनक्षत्रकक्षा अष्टौ तत्तदन्तरालान्यष्टौ इति षोडश देशाः कालचक्ररूपास्सन्ति। तेषु स्थानेषु देशपरिवृत्तिविपरीतक्रमतष्षोडश नित्याः परिवर्तन्ते। अस्यापि चक्रस्यान्तरेव श्रीचक्रं न बहिः। अस्य त्रिविधस्यापि चक्रस्य पारमार्थिकरूपं नित्याचक्रमेव। ब्रह्मातिरिक्तस्य सर्वस्य देशकालावच्छिन्नतदभेदात्सर्वोऽपि प्रपञ्चो नित्यारूप एव। तासां स्वात्माभेदभावनैव ह्यत्र विधीयते—

> अथ षोडशनित्यानां स्वात्मत्वे वासनां शृणु।
> यया तन्मयतासिद्धिः प्रत्यक्षा भवति ध्रुवम्॥

इत्युपक्रम्य 'गुरुराद्या भवेच्छक्तिः' इत्यादिना ललितायाः साङ्गोपाङ्गायाः स्वात्मत्ववासनामुक्त्वा, अन्ते—

> तिथिरूपेण कालस्य परिणामावलोकनम्।
> नित्याः पञ्चदशान्यास्स्युः इति प्रोक्तास्तु वासनाः॥

इत्युपसंहारस्य तन्त्रराजे दर्शनात्। सा च प्रपञ्चोपसंहारफलिकैव तिथिरूपेणेति त्रिविधचक्रोपलक्षणद्वारा प्रपञ्चपरम्। प्रपञ्चात्मकतया काल एव परिणतोऽस्तीति विभावनमेवान्यासां पञ्चदशनित्यानां विभावनमित्यर्थः। तासां त्रिपुरसुन्दर्यभेदस्य क्लृप्तत्वात्तदनुक्तिः भावनाविषयपदेनोक्तानां वक्ष्यमाणानां क्रोडीकारेण पूर्ववाक्य एवाभेदभावनाया विहितत्वाद्वा। वस्तुतस्तु सर्वा अपि तिथयः षट्छताधिकैकविंशतिसहस्रसङ्ख्याश्वासात्मककालरूपाः। तत्समष्टिविग्रहवती ललिता। अन्याः पञ्चदश व्यष्टिविशेषेण प्रत्येकं

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



चत्वारिंशदधिकचतुर्दशशतश्वासरूपा भवन्ति । तास्तथा विभावयेदित्यर्थः । एतत्पक्षद्वयभावना आवरणपूजातः कार्येति केचित् । बाह्यपूजायां तत्रैव स्थानक्लृप्तेः सर्वविलापोत्तरं भावनान्तरानवकाशादिति तदाशयः । वस्तुतस्तु स्वात्ममात्रपरत्वेन मनसस्तम्भे सति श्वासस्तम्भस्यावश्यंभावादेवताया रश्मिविलापनस्य विसर्जनकाल एवोचितत्वान्मनःपवनोभयस्तम्भस्यैवोत्तरत्र कालविधानायैहैवावसरसद्भावान्निरर्थकवाक्यापकर्षस्यायुक्तत्वाच्चेहैव नित्याभावना युक्तेति द्रष्टव्यम् ॥

एवमान्तरबाह्यनिखिलप्रपञ्चविलापनपूर्वकस्वात्ममात्रावशेषभावनायाः अहर्निशं धारावाहिकतावश्यकतां ध्वनयन् तदशक्तेषूत्तममध्यमाधमसाधकभेदेन त्रिविधं कालेनियममाह—

**एवं मुहूर्तत्रितयं मुहूर्तद्वितयं मुहूर्तमात्रं वा भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति स एव शिवयोगीति गद्यते ॥ ३४ ॥**

एवमित्यनेन अव्यवहितपूर्वोक्ता स्वात्ममात्रविषयिणी श्वासस्तम्भसहिता निर्विकल्पकवृत्तिरुच्यते । तदभिन्नभावनायां परः तत्रैवासक्तः भावनेतरव्यापारशून्यः धारावाहिकभावनावानिति यावत् । स जीवन्मुक्तिरूपफलभाक् अचिरादेव जायते । जैगीषव्यादयश्शिवयोगित्वेन ये व्यवह्रियन्ते तेऽप्येताद्दशभावनाशालित्वादेवेति तत्पदप्रवृत्तिनिमित्तमीद्दशभावनेत्यर्थः ।

**कादिमतेनान्तश्चक्रभावनाः प्रतिपादिताः ॥ ३५ ॥**

**य एवं वेद सोऽथर्वशिरोऽधीते ॥ ३६ ॥**

वेदत्रयं बहिरङ्गकर्मप्रतिपादकम् । अथर्वणवेदस्तु अन्तरङ्गकर्माण्येव प्रचुरं प्रतिपादयति । तस्यापि शिरोरूपेयमुपनिषत्तु ततोऽप्यन्तरङ्गतमां भावनां वक्ति ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अस्यां या अन्तश्चक्रभावनाः कथितास्ताः कादिनामकशक्तिमतरीत्यैव, न तु कौलमतेन। अस्या उपनिषद ईदृशभावनाप्रतिपादकत्वमिति पदशो वाक्यशश्च यो वेद स एवाथर्वशिरोध्ययनवान्; न तु शब्दमात्राध्ययनवान्। अध्ययनकरणकभावनाया अर्थबोधभाव्यकत्वादिति भावः। 'योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते' इति श्रुत्यन्तरे सकलपदस्वारस्याच्च शब्दमात्रपाठादपि किञ्चिद्भद्रमस्त्येवेति लभ्यत इति शिवम्॥

इति भावनोपनिषदोऽथर्वणशिरसोऽतनोद्भाष्यम्।
भास्कररायो विदुषां तुष्ट्यै जीवन्मुमुक्षूणाम्॥

---

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

# देवीस्तोत्रपञ्चकम्

## (१) लघुस्तुतिः

ऐन्द्रस्येव शरासनस्य दधती मध्येललाटं प्रभां
शौक्लीं कान्तिमनुष्णगोरिव शिरस्यातन्वती सर्वतः ।
एषासौ त्रिपुरा हृदि द्युतिरिवोष्णांशोस्सदाहस्स्थिताव्
छिन्द्यान्नस्सहसा पदैस्त्रिभिरघं ज्योतिर्मयी वाङ्मयी ॥ १

या मात्रा त्रपुसीलतातनुलसत्तन्तुस्थितिस्पर्धिनी
वाग्बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम् ।
शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमाः
ज्ञात्वेत्थं न पुनस्स्पृशन्ति जननीगर्भेऽर्भकत्वं नराः ॥ २

दृष्ट्वा सम्भ्रमकारि वस्तु सहसा ऐऐ इति व्याहृतं
येनाकूतवशादपीह वरदे बिन्दुं विनाप्यक्षरम् ।
तस्यापि ध्रुवमेव देवि तरसा जाते तवानुग्रहे
वाचस्सूक्तिसुधारसद्रवमुचो निर्यान्ति वक्त्राम्बुजात् ॥ ३

यन्नित्ये तव कामराजमपरं मन्त्राक्षरं निष्कलं
तत्सारस्वतमित्यवैति विरलः कश्चिद्बुधश्चेद्भुवि ।
आख्यानं प्रतिपर्व सत्यतपसो यत्कीर्तयन्तो द्विजाः
प्रारम्भे प्रणवास्पदप्रणयितां नीत्वोच्चरन्ति स्फुटम् ॥ ४

यत्सद्यो वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्टप्रभावं बुधैः
तार्तीयं तदहं नमामि मनसा त्वद्बीजमिन्दुप्रभम् ।
अस्त्यौर्वोऽपि सरस्वतीमनुगतो जाड्याम्बुविच्छित्तये
गोशब्दो गिरि वर्तते सुनियतं योगं विना सिद्धिदः ॥ ५



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



एकैकं तव देवि बीजमनघं सव्यञ्जनाव्यञ्जनं
कूटस्थं यदि वा पृथक्क्रमगतं यद्वा स्थितं व्युत्क्रमात् ।
यं यं काममपेक्ष्य येन विधिना केनापि वा चिन्तितं
जप्तं वा सफलीकरोति सततं तं तं समस्तं नृणाम् ॥ ६
वामे पुस्तकधारिणीमभयदां साक्षस्रजं दक्षिणे
भक्तेभ्यो वरदानपेशलकरां कर्पूरकुन्दोज्ज्वलाम् ।
उज्जृम्भाम्बुजपत्रकान्तनयनस्निग्धप्रभालोकिनीं
ये त्वामम्ब न शीलयन्ति मनसा तेषां कवित्वं कुतः ॥ ७
ये त्वां पाण्डुरपुण्डरीकपटलस्पष्टाभिरामप्रभां
सिञ्चन्तीममृतद्रवैरिव शिरो ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम् ।
अश्रान्ता विकटस्फुटाक्षरपदा निर्याति वक्त्राम्बुजात्
तेषां भारति भारती सुरसरित्कल्लोललोलोर्मिवत् ॥ ८
ये सिन्दूरपरागपिञ्जपिहितां त्वत्तेजसाऽऽद्यामिमां
उर्वीं चापि विलीनयावकरसप्रस्तारमग्नामिव ।
पश्यन्ति क्षणमप्यनन्यमनसस्तेषामनङ्गज्वर-
क्लान्तस्त्रस्तकुरङ्गशावकदृशो वश्या भवन्ति स्फुटम् ॥ ९
चञ्चत्काञ्चनकुण्डलाङ्गदधरामाबद्धकाञ्चीस्रजं
ये त्वां चेतसि तद्गते क्षणमपि ध्यायन्ति कृत्वा स्थिराम् ।
तेषां वेश्मसु विभ्रमादहरहः स्फारीभवन्त्यश्चिरं
माद्यत्कुञ्जरकर्णतालतरलाः स्थैर्यं भजन्ते श्रियः ॥ १०
आर्भट्या शशिखण्डमण्डितजटाजूटां नृमुण्डस्रजं
बन्धूकप्रसवारुणाम्बरधरां प्रेतासनाध्यासिनीम् ।
त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनामापीनतुङ्गस्तनीं
मध्ये निम्नवलित्रयाङ्किततनुं त्वद्रूपसंवित्तये ॥ ११

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



जातोऽप्यल्पपरिच्छदे क्षितिभुजां सामान्यमात्रे कुले
निश्शेषावनिचक्रवर्तिपदवीं लब्ध्वा प्रतापोन्नतः ।
यद्विद्याधरवृन्दवन्दितपदश्श्रीवत्सराजोऽभवत्
देवि त्वच्चरणाम्बुजप्रणतिजः सोऽयं प्रसादोदयः ॥ १२
चण्डि त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते बिल्वादिलोल्लुण्ठन-
त्रुट्यत्कण्टककोटिभिः परिचयं येषां न जग्मुः कराः ।
ते दण्डाङ्कुशचक्रचापकुलिशश्रीवत्समत्स्याङ्कितैः
जायन्ते पृथिवीभुजः कथमिवाम्भोजप्रभैः पाणिभिः ॥ १३
विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे क्षीराज्यमध्वासवैः
त्वां देवि त्रिपुरे परापरमयीं सन्तर्प्य पूजाविधौ ।
यां यां प्रार्थयते मनःस्थिरधियां तेषां त एव ध्रुवं
तां तां सिद्धिमवाप्नुवन्ति तरसा विघ्नैरविघ्नीकृताः ॥ १४
शब्दानां जननी त्वमत्र भुवने वाग्वादिनीत्युच्यसे
त्वत्तः केशववासवप्रभृतयोऽप्याविर्भवन्ति स्फुटम् ।
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे ब्रह्मादयस्तेऽप्यमी
सा त्वं काचिदचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिः परा गीयसे ॥ १५
देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिः स्वराः
त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः ।
यत्किञ्चिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गादिकं
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः ॥ १६
लक्ष्मीं राजकुले जयां रणभुवि क्षेमङ्करीमध्वनि
क्रव्याद्द्विपसर्पभाजि शबरीं कान्तारदुर्गे गिरौ ।
भूतप्रेतपिशाचजम्बुकभये स्मृत्वा महाभैरवीं
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदस्तारां च तोयप्लवे ॥ १७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कलामालिनी
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी।
शक्तिश्शङ्करवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि ॥ १८

आईपल्लवितैः परस्परयुतैर्द्वित्रिक्रमाद्यक्षरै
काद्यैः क्षान्तगतैस्स्वरादिभिरथ क्षान्तैश्च तैस्सस्वरैः।
नामानि त्रिपुरे भवन्ति खलु यान्यत्यन्तगुह्यानि ते
तेभ्यो भैरवपत्नि विंशतिसहस्रेभ्यः परेभ्यो नमः ॥ १९

बोद्धव्या निपुणं बुधैस्स्तुतिरियं कृत्वा मनस्तद्गतं
भारत्यास्त्रिपुरेत्यनन्यमनसा यत्राद्यवृत्ते स्फुटम्।
एकद्वित्रिपदक्रमेण कथितस्तत्पादसङ्ख्याक्षरैः
मन्त्रोद्धारविधिर्विशेषसहितस्सत्सम्प्रदायान्वितः ॥ १०

सावद्यं निरवद्यमस्तु यदि वा किं वानया चिन्तया
नूनं स्तोत्रमिदं पठिष्यति जनो यस्यास्ति भक्तिस्त्वयि।
सञ्चिन्त्यापि लघुत्वमात्मनि दृढं सञ्जायमानं हठात्
त्वद्भक्त्या मुखरीकृतेन रचितं यस्मान्मयापि ध्रुवम् ॥ २१

इति लघुस्तवः

## (२) चर्चास्तवः

सौन्दर्यविभ्रमभुवो भुवनाधिपत्य-
सङ्कल्पकल्पतरवस्त्रिपुरे जयन्ति।
एते कवित्वकुमुदप्रकरावबोध-
पूर्णेन्दवस्त्वयि जगज्जननि प्रणामाः ॥ १

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



देवि स्तुतिव्यतिकरे कृतबुद्धयस्ते
वाचस्पतिप्रभृतयोऽपि जडीभवन्ति ।
तस्मान्निसर्गजडिमा कतमोऽहमत्र
स्तोत्रं तव त्रिपुरतापनपत्नि कर्तुम् ॥ २
मातस्तथापि भवतीं भवतीव्रताप-
विच्छित्तये स्तवमहार्णवकर्णधारः ।
स्तोतुं भवानि स भवच्चरणारविन्द-
भक्तिग्रहः किमपि मां मुखरीकरोति ॥ ३
सूते जगन्ति भवती भवती बिभर्ति
जागर्ति तत्क्षयकृते भवती भवानि ।
मोहं भिनत्ति भवती भवती रुणद्धि
लीलायितं जयति चित्रमिदं भवत्याः ॥ ४
यस्मिन्मनागपि नवाम्बुजपत्रगौरीं
गौरीं प्रसादमधुरां दृशमादधासि ।
तस्मिन्निरन्तरमनङ्गशरावकीर्ण-
सीमन्तिनीनयनसन्ततयः पतन्ति ॥ ५
पृथ्वीभुजोऽप्युदयनप्रभवस्य तस्य
विद्याधरप्रणतिचुम्बितपादपीठः ।
तच्चक्रवर्तिपदवीप्रणयस्स एषः
त्वत्पादपङ्कजरजःकणजः प्रसादः ॥ ६
त्वत्पादपङ्कजरजःप्रणिपातपूर्वैः
पुण्यैरनल्पमतिभिः कृतिभिः कवीन्द्रैः ।
क्षीरक्षपाकरदुकूलहिमावदाता
कैरप्यवापि भुवनत्रितयेऽपि कीर्तिः ॥ ७



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



कल्पद्रुमप्रसवकल्पितचित्रपूजां
उद्दीपितप्रियतमामदरक्तगीतिम् ।
नित्यं भवानि भवतीमुपवीणयन्ति
विद्याधराः कनकशैलगुहागृहेषु ॥ ८

लक्ष्मीवशीकरणकर्मणि कामिनीनां
आकर्षणव्यतिकरेषु च सिद्धमन्त्रः ।
नीरन्ध्रमोहतिमिरच्छिदुरप्रदीपो
देवि त्वदङ्घ्रिजनितो जयति प्रसादः ॥ ९

देवि त्वदङ्घ्रिनखरत्नभुवो मयूखाः
प्रत्यग्रमौक्तिकरुचो मुदमुद्वहन्ति ।
सेवानतिव्यतिकरे सुरसुन्दरीणां
सीमन्तसीम्नि कुसुमस्तबकायितं यैः ॥ १०

मूर्ध्नि स्फुरत्तुहिनदीधितिदीप्तिदीप्तं
मध्ये ललाटममरायुधरश्मिचित्रम् ।
हृच्चक्रचुम्बि हुतभुक्कणिकानुकारि
ज्योतिर्यदेतदिदमम्ब तव स्वरूपम् ॥ ११

रूपं तव स्फुरितचन्द्रमरीचिगौरं
आलोकते शिरसि वागधिदैवतं यः ।
निस्सीमसूक्तिरचनामृतनिर्झरस्य
तस्य प्रसादमधुराः प्रसरन्ति वाचः ॥ १२

सिन्दूरपांसुपटलच्छुरितामिव द्यां
त्वत्तेजसा जतुरसस्नापितामिवोर्वीम् ।
यः पश्यति क्षणमपि त्रिपुरे विहाय
व्रीडां मृडानि सुदृशस्तमनुद्रवन्ति ॥ १३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



मातर्मुहूर्तमपि यः स्मरति स्वरूपं
लाक्षारसप्रसरतन्तुनिभं भवत्याः ।
ध्यायन्त्यनन्यमनसस्तमनङ्गतप्ताः
प्रद्युम्नसीम्नि सुभगत्वगुणं तरुण्यः ॥ १४
योऽयं चकास्ति गगनार्णवरत्नमिन्दुः
योऽयं सुरासुरगुरुः पुरुषः पुराणः ।
यद्वामम्र्धमिदमन्धकसूदनस्य
देवि त्वमेव तदिति प्रतिपादयन्ति ॥ १५
इच्छानुरूपमनुरूपगुणप्रकर्ष-
सङ्कर्षिणि त्वमभिमृश्य यदा बिभर्षि ।
जायेत स त्रिभुवनैकगुरुस्तदानीं
देवश्शिवोऽपि भुवनत्रयसूत्रधारः ॥ १६
ध्यातासि हैमवति येन हिमांशुरश्मि-
मालामलद्युतिरकल्मषमानसेन ।
तस्याविलम्बमनवद्यमनन्तकल्पं
अल्पैर्दिनैस्सृजसि सुन्दरि वाग्विलासम् ॥ १७
आधारमारुतनिरोधवशेन येषां
सिन्दूररञ्जितसरोजगुणानुकारि ।
दीप्तं हृदि स्फुरति देवि वपुस्त्वदीयं
ध्यायन्ति तानिह समीहितसिद्धिसार्थाः ॥ १८
ये चिन्तयन्त्यरुणमण्डलमध्यवर्ति
रूपं तवाम्ब नवयावकपङ्कपिङ्गम् ।
तेषां सदैव कुसुमायुधबाणभिन्न-
वक्षःस्थला मृगदृशो वशगा भवन्ति ॥ १९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



त्वामैन्दवीमिव कलामनुफालदेशं
उद्भासिताम्बरतलामवलोकयन्तः ।
सद्यो भवानि सुधियः कवयो भवन्ति
त्वं भावनाहितधियां कुलकामधेनुः ॥ २०
शर्वाणि सर्वजनवन्दितपादपद्मे
पद्मच्छदद्युतिविडम्बितनेत्रलक्ष्मि ।
निष्पापमूर्तिजनमानसराजहंसि
हंसि त्वमापदमनेकविधां जनस्य ॥ २१
उत्तप्तहेमरुचिरे त्रिपुरे पुनीहि
चेतश्चिरन्तनमघौघवनं लुनीहि ।
कारागृहे निगलबन्धनयन्त्रितस्य
त्वत्संस्मृतौ झडिति मे निगलास्त्रुटन्ति ॥ २२
त्वां व्यापिनीति सुमना इति कुण्डलीति
त्वां कामिनीति कमलेति कलावतीति ।
त्वां मालिनीति ललितेत्यपराजितेति
देवि स्तुवन्ति विजयेति जयेत्युमेति ॥ २३
उद्दामकामपरमार्थसरोजखण्ड-
चण्डद्युतिद्युतिमपासितषड्विकाराम् ।
मोहद्विपेन्द्रकदनोद्यतबोधसिंह-
लीलागुहां भगवतीं त्रिपुरां नमामि ॥ २४
गणेशवटुकस्तुता रतिसहायकामान्विता
स्मरारिवरविष्टरा कुसुमबाणबाणैर्युता ।
अनङ्गकुसुमादिभिः परिवृता च सिद्धैस्त्रिभिः
कदम्बवनमध्यगा त्रिपुरसुन्दरी पातु नः ॥ २५

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



रुद्राणि विद्रुममयीं प्रतिमामिव त्वां
ये चिन्तयन्त्यरुणकान्तिमनन्यरूपाम् ।
तानेत्य पक्ष्मलदृशः प्रसभं भजन्ते
कण्ठावसक्तमृदुबाहुलतास्तरुण्यः ॥ २६

त्वद्रूपैकनिरूपणप्रणयिताबन्धो दृशोस्त्वद्गुण-
ग्रामाकर्णनरागिता श्रवणयोस्त्वत्संस्मृतिश्चेतसि ।
त्वत्पादार्चनचातुरी करयुगे त्वत्कीर्तितं वाचि मे
कुत्रापि त्वदुपासनव्यसनिता मे देवि मा शाम्यतु ॥ २७

त्वद्रूपमुल्लसितदाडिमपुष्परक्तं
उद्भावयेन्मदनदैवतमक्षरं यः ।
तं रूपहीनमपि मन्मथनिर्विशेषं
आलोकयन्त्युरुनितम्बतटास्तरुण्यः ॥ २८

ब्रह्मेन्द्ररुद्रहरिचन्द्रसहस्ररश्मि-
स्कन्दद्विपाननहुताशनवन्दितायै ।
वागीश्वरि त्रिभुवनेश्वरि विश्वमातः
अन्तर्बहिश्च कृतसंस्थितये नमस्ते ॥ २९

यस्तोत्रमेतदनुवासरमीश्वरायाः
श्रेयस्करं पठति वा यदि वा शृणोति ।
तस्येप्सितं फलति राजभिरीड्यतेऽसौ
जायेत स प्रियतमो मदिरेक्षणानाम् ॥ ३०

इति चर्चास्तवः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

# (३) घटस्तवः

आनन्दमन्थरपुरन्दरमुक्तमाल्यं
मौलौ हठेन निहितं महिषासुरस्य ।
पादाम्बुजं भवतु मे विजयाय मञ्जु-
मञ्जीरशिञ्जितमनोहरमम्बिकायाः ॥ १
देवि त्र्यम्बकपत्नि पार्वति सति त्रैलोक्यमातश्शिवे
शर्वाणि त्रिपुरे मृडानि वरदे रुद्राणि कात्यायनि ।
भीमे भैरवि चण्डि शर्वरिकले कालक्षये शूलिनि
त्वत्पादप्रणताननन्यमनसः पर्याकुलान्पाहि नः ॥ २
देवि त्वां सकृदेव यः प्रणमति क्षोणीभृतस्तं नम-
न्त्याजन्मस्फुरदङ्घ्रिपीठविलुठत्कोटीरकोटिच्छटाः ।
यस्त्वामर्चति सोऽर्च्यते सुरगणैर्यस्तौति स स्तूयते
यस्त्वां ध्यायति तं स्मरार्तिविधुरा ध्यायन्ति वामभ्रुवः ॥ ३
उन्मत्ता इव सग्रहा इव विषव्यासक्तमूर्छा इव
प्राप्तप्रौढमदा इवार्तिविरहग्रस्ता इवार्ता इव ।
ये ध्यायन्ति हि शैलराजतनयां धन्यास्त एवाग्रतः
त्यक्तोपाधिविवृद्धरागमनसो ध्यायन्ति तान्सुभ्रुवः ॥ ४
ध्यायन्ति ये क्षणमपि त्रिपुरे हृदि त्वां
लावण्ययौवनधनैरपि विप्रयुक्ताः ।
ते विस्फुरन्ति ललितायतलोचनानां
चित्तैकभित्तिलिखितप्रतिमाः पुमांसः ॥ ५
एतं किं नु दृशा पिबाम्युत विशाम्यस्याङ्गमङ्गैर्निजैः
किं वाऽमुं निगराम्यनेन सहसा किं वैकतामाश्रये ।
यस्येत्थं विवशो विकल्पललिताकूतेन योषिज्जनः
किं तन्न करोति देवि हृदये यस्य त्वमावर्तसे ॥ ६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



विश्वव्यापिनि यद्वदीश्वर इति स्थाणावनन्याश्रयः
शब्दश्शक्तिरिति त्रिलोकजननि त्वय्येव तथ्यास्थितिः ।
इत्थं सत्यपि शक्नुवन्ति यदिमाः क्षुद्रा रुजो बाधितुं
त्वद्भक्तानपि न क्षिणोषि च रुषा तद्देवि चित्रं महत् ॥ ७

इन्दोर्मध्यगतां मृगाङ्कसदृशच्छायां मनोहारिणीं
पाण्डूत्फुल्लसरोरुहासनगतां स्निग्धप्रदीपच्छविम् ।
वर्षन्तीममृतं भवानि भवतीं ध्यायन्ति ये देहिनः
ते निर्मुक्तरुजो भवन्ति रिपवः प्रोज्झन्ति तान्दूरतः ॥ ८

पूर्णेन्दोश्शकलैरिवातिबहलैः पीयूषपूरैरिव
क्षीराब्धेर्लहरीभरैरिव सुधापङ्कस्य पिण्डैरिव ।
प्रालेयैरिव निर्मितं तव वपुर्ध्यायन्ति ये श्रद्धया
चित्तान्तर्निहितार्तितापविपदस्ते सम्पदं बिभ्रति ॥ ९

ये संस्मरन्ति तरलां सहसोल्लसन्तीं
त्वां ग्रन्थिपञ्चकमिदं तरुणार्कशोणाम् ।
रागार्णवे बहलरागिणि मज्जयन्तीं
कृत्स्नं जगद्दधति चेतसि तान्मृगाक्ष्यः ॥ १०

लाक्षारसस्नपितपङ्कजतन्तुतन्वीं
अन्तस्स्मरत्यनुदिनं भवतीं भवानि ।
यस्तं स्मरप्रतिममप्रतिमस्वरूपाः
नेत्रोत्पलैर्मृगदृशो भृशमर्चयन्ति ॥ ११

स्तुमस्त्वां वाचमव्यक्तां हिमकुन्देन्दुरोचिषम् ।
कदम्बमालां बिभ्राणामापादतललम्बिनीम् ॥ १२

मूर्ध्नीन्दोस्सितपङ्कजासनगतां प्रालेयपाण्डुत्विषं
वर्षन्तीममृतं सरोरुहभुवो वक्त्रेऽपि रन्ध्रेऽपि च ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अच्छिन्ना च मनोहरा च ललिता चातिप्रसन्नापि च
त्वामेवं स्मरतस्स्मरारिदयिते वाक्सर्वतो वल्गति ॥ १३
ददातीष्टान्भोगान्क्षपयति रिपून्हन्ति विपदो
दहत्याधीन्व्याधीन् शमयति सुखानि प्रतनुते ।
हठादन्तर्दुःखं दलयति पिनष्टीष्टविरहं
सकृद्ध्याता देवी किमिव निरवद्यं न कुरुते ॥ १४
यस्त्वां ध्यायति वेत्ति विन्दति जपत्यालोकते चिन्तय-
त्यन्वेति प्रतिपद्यते कलयति स्तौत्याश्रयत्यर्चति ।
यश्च त्र्यम्बकवल्लभे तव गुणानाकर्णयत्यादरात्
तस्य श्रीर्न गृहदपैति विजयस्तस्याग्रतो धावति ॥ १५
किं किं दुःखं दनुजदलिनि क्षीयते न स्मृतायां
का का कीर्तिः कुलकमलिनि ख्याप्यते न स्तुतायाम् ।
का का सिद्धिस्सुरवरनुते प्राप्यते नार्चितायां
कं कं योगं त्वयि न चिनुते चित्तमालम्बितायाम् ॥ १६
ये देवि दुर्धरकृतान्तमुखान्तरस्थाः
ये कालि कालघनपाशनितान्तबद्धाः ।
ये चण्डि चण्डगुरुकल्मषसिन्धुमग्नाः
तान्पासि मोचयसि तारयसि स्मृतैव ॥ १७
लक्ष्मीवशीकरणचूर्णसहोदराणि
त्वत्पादपङ्कजरजांसि चिरं जयन्ति ।
यानि प्रणाममिलितानि नृणां ललाटे
लुम्पन्ति दैवलिखितानि दुरक्षराणि ॥ १८
रे मूढाः किमयं वृथैव तपसा कायः परिक्लिश्यते
यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः किमितरे रिक्तीक्रियन्ते गृहाः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



भक्तिश्चेदविनाशिनी भगवतीपादद्वयी सेव्यतां
उन्निद्राम्बुरुहातपत्रसुभगा लक्ष्मीः पुरो धावति ॥ १९
याचे न कञ्चन न कञ्चन वञ्चयामि
सेवे न कञ्चन निरस्तसमस्तदैन्यः ।
श्लक्ष्णं वसे मधुरमद्मि भजे वरस्त्रीः
देवी हृदि स्फुरति मे कुलकामधेनुः ॥ २०
नमामि यामिनीनाथलेखालङ्कृतकुन्तलाम् ।
भवानीं भवसन्तापनिर्वापणसुधानदीम् ॥ २१

इति वटस्तवः

## (४) अम्बास्तवः

यामामनन्ति मुनयः प्रकृतिं पुराणीं
विद्येति यां श्रुतिरहस्यविदो वदन्ति ।
तामर्धपल्लवितशङ्कररूपमुद्रां
देवीमनन्यशरणश्शरणं प्रपद्ये ॥ १
अम्ब स्तवेषु तव तावदकर्तृकाणि
कुण्ठीभवन्ति वचसामपि गुम्भनानि ।
डिम्भस्य मे स्तुतिरसावसमञ्जसापि
वात्सल्यनिघ्नहृदयां भवतीं धिनोतु ॥ ३
व्योमेति बिन्दुरिति नाद इतीन्दुलेखा-
रूपेति वाग्भवतनूरिति मातृकेति ।
निस्स्यन्दमानसुखबोधसुधास्वरूपा
विद्योतसे मनसि भाग्यवतां जनानाम् ॥ २



Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



आविर्भवत्पुलकसन्ततिभिश्शरीरैः
निस्स्यन्दमानसलिलैर्नयनैश्च नित्यम् ।
वाग्भिश्च गद्गदपदाभिरुपासते ये
पादौ तवाम्ब भुवनेषु त एव धन्याः ॥ ४

वक्त्रं यदुद्यतमभिष्टुतये भवत्याः
तुभ्यं नमो यदपि देवि शिरः करोति ।
चेतश्च यत्त्वयि परायणमम्ब तानि
कस्यापि कैरपि भवन्ति तपोविशेषैः ॥ ५

मूलालवालकुहरादुदिता भवानि
निर्भिद्य षट्सरसिजानि तटिल्लतेव ।
भूयोऽपि तत्र विशसि ध्रुवमण्डलेन्दु-
निस्स्यन्दमानपरमामृततोयरूपा ॥ ६

दग्धं यदा मदनमेकमनेकधा ते
मुग्धः कटाक्षविधिरङ्कुरयाञ्चकार ।
धत्ते तदाप्रभृति देवि ललाटनेत्रं
सत्यं ह्रियैव मुकुलीकृतमिन्दुमौलेः ॥ ७

अज्ञातसम्भवमनाकलितान्ववायं
भिक्षुं कपालिनमवाससमद्वितीयम् ।
पूर्वं करग्रहणमङ्गलतो भवत्याः
शम्भुं क एव बुबुधे गिरिराजकन्ये ॥ ८

चर्माम्बरं च शवभस्मविलेपनं च
भिक्षाटनं च नटनं च परेतभूमौ ।
वेतालसंहतिपरिग्रहता च शम्भोः
शोभां बिभर्ति गिरिजे तव साहचर्यात् ॥ ९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



कल्पोपसंहरणकेलिषु पण्डितानि
चण्डानि खण्डपरशोरपि ताण्डवानि ।
आलोकनेन तव कोमलितानि मातः
लास्यात्मना परिणमन्ति जगद्विभूत्यै ॥ १०

जन्तोरपश्चिमतनोस्सति कर्मसाम्ये
निश्शेषपाशपटलच्छिदुरा निमेषात् ।
कल्याणि देशिककटाक्षसमाश्रयेण
कारुण्यतो भवति शाम्भववेधदीक्षा ॥ ११

मुक्ताविभूषणवती नवविद्रुमाभा
यच्चेतसि स्फुरसि तारकितेव सन्ध्या ।
एकस्स एव भुवनत्रयसुन्दरीणां
कन्दर्पतां व्रजति पञ्चशरीं विनापि ॥ १२

ये भावयन्त्यमृतवाहिभिरंशुजालैः
आप्यायमानभुवनाममृतेश्वरीं त्वाम् ।
ते लङ्घयन्ति ननु मातरलङ्घनीयां
ब्रह्मादिभिस्सुरवरैरपि कालकक्षाम् ॥ १३

यस्स्फाटिकाक्षगुणपुस्तककुण्डिकाढ्यां
व्याख्यासमुद्यतकरां शरदिन्दुशुभ्राम् ।
पद्मासनां च हृदये भवतीमुपास्ते
मातस्स विश्वकवितार्किकचक्रवर्ती ॥ १४

बर्हावतंसयुतबर्बरकेशपाशां
गुञ्जावलीकृतघनस्तनहारशोभाम् ।
श्यामां प्रवालवदनां सुकुमारहस्तां
त्वामेव नौमि शबरीं शबरस्य जायाम् ॥ १५

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अर्घेन किं नवलताललितेन मुग्धे
क्रीतं विभोः परुषमर्धमिदं त्वयेति ।
आलीजनस्य परिहासवचांसि मन्ये
मन्दस्मितेन तव देवि जडीभवन्ति ॥ १६

ब्रह्माण्डबुद्बुदकदम्बकसङ्कुलोऽयं
मायोदधिर्विविधतत्त्वतरङ्गमालः ।
आश्चर्यमम्ब झडिति प्रलयं प्रयाति
त्वद्ध्यानसन्ततिमहाबडबामुखाग्नौ ॥ १७

दाक्षायणीति कुटिलेति कुहारिणीति
कात्यायनीति कमलेति कलावतीति ।
एका सती भगवती परमार्थतोऽपि
सन्दृश्यसे बहुविधा ननु नर्तकीव ॥ १८

आनन्दलक्षणमनाहतनाम्नि देशे
नादात्मना परिणतं तव रूपमीशे ।
प्रत्यङ्मुखेन मनसा परिचीयमानं
शंसन्ति नेत्रसलिलैः पुलकैश्च धन्याः ॥ १९

त्वं चन्द्रिका शशिनि तिग्मरुचौ रुचिस्त्वं
त्वं चेतनासि पुरुषे पवने बलं त्वम् ।
त्वं स्वादुतासि सलिले शिखिनि त्वमूष्मा
निस्सारमेव निखिलं त्वदृते यदि स्यात् ॥ २०

ज्योतींषि यद्दिवि चरन्ति यदन्तरिक्षं
सूते पयांसि यदहिर्धरणीं च धत्ते ।
यद्वाति वायुरनलो यदुदर्चिरास्ते
तत्सर्वमम्ब तव केवलमाज्ञयैव २१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



सङ्कोचमिच्छसि यदा गिरिजे तदानीं
वाक्तर्कयोस्त्वमसि भूमिरनामरूपा ।
यद्वा विकासमुपयासि यदा तदानीं
त्वन्नामरूपगणनास्सुकरा भवन्ति ॥ २२

भोगाय देवि भवतीं कृतिनः प्रणम्य
भ्रूकिङ्करीकृतसरोजगृहास्सहस्रम् ।
चिन्तामणिप्रचयकल्पितकेलिशैले
कल्पद्रुमोपवन एव चिरं रमन्ते ॥ २३

हर्तुं त्वमेव भवसि त्वदधीनमीशे
संसारतापमखिलं दयया पशूनाम् ।
वैकर्तनी किरणसंहतिरेव शक्ता
घर्मं निजं शमयितुं निजयैव वृष्ट्या ॥ २४

शक्तिश्शरीरमधिदैवतमन्तरात्मा
ज्ञानं क्रिया करणमानसजालमिच्छा ।
ऐश्वर्यमायतनमावरणानि च त्वं
किं तन्न यद्भवसि देवि शशाङ्कमौलेः ॥ २५

भूमौ निवृत्तिरुदिता पयसि प्रतिष्ठा
विद्याऽनले मरुति शान्तिरतीवकान्तिः ।
व्योम्नीति याः किल कलाः कलयन्ति विश्वं
तासां हि दूरतरमम्ब पदं त्वदीयम् ॥ २६

यावत्पदं पदसरोजयुगं त्वदीयं
नाङ्गीकरोति हृदयेषु जगच्छरण्ये ।
तावद्विकल्पजटिलाः कुटिलप्रकाराः
तर्कग्रहास्समयिनां प्रलयं न यान्ति ॥ २७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



निर्देवयानपितृयानविहारमेके
कृत्वा मनः करणमण्डलसार्वभौमम् ।
ध्याने निवेश्य तव कारणपञ्चकस्य
पर्वाणि पार्वति नयन्ति निजासनत्वम् ॥ २८
स्थूलासु मूर्तिषु महीप्रमुखासु मूर्तेः
कस्याश्चनापि तव वैभवमम्ब यस्याः ।
पत्या गिरामपि न शक्यत एव वक्तुं
सापि स्तुता किल मयेति तितिक्षितव्यम् ॥ २९
कालाग्निकोटिरुचिमम्ब षडध्वशुद्धौ
आप्लावनेषु भवतीममृतौघवृष्टिम् ।
श्यामां घनस्तनतटां शकलीकृताघां
ध्यायन्त एव जगतां गुरवो भवन्ति ॥ ३०
विद्यां परां कतिचिदम्बरमम्ब केचित्
आनन्दमेव कतिचित्कतिचिच्च मायाम् ।
त्वां विश्वमाहुरपरे वयमामनामः
साक्षादपारकरुणां गुरुमूर्तिमेव ॥ ३१
कुवलयदलनीलं बर्बरस्निग्धकेशं
पृथुतरकुचभाराक्रान्तकान्तावलग्नम् ।
किमिह बहुभिरुक्तैस्त्वत्स्वरूपं परं नः
सकलजननि मातस्सन्ततं सन्निधत्ताम् ॥ ३२

इत्यम्बास्तवः

## (५) सकलजननीस्तोत्रम्

अजानन्तो यान्ति क्षयमवशमन्योन्यकलहैः
अमी मायाग्रन्थौ तव परिलुठन्तस्समयिनः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



जगन्मातर्जन्मज्वरभयतमःकौमुदि वयं
नमस्ते कुर्वाणाश्शरणमुपयामो भगवतीम् ॥ १
वचस्तर्कागम्यस्वरसपरमानन्दविभव-
प्रबोधाकाराय द्युतितुलितनीलोत्पलरुचे ।
शिवाद्याराध्याय स्तनभरविनम्राय सततं
नमस्तस्मै कस्मैचन भवतु मुग्धाय महसे ॥ २
अनाद्यन्ताभेदप्रणयरसिकापि प्रणयिनी
शिवस्यासीर्यत्त्वं परिणयविधौ देवि गृहिणी ।
सवित्री भूतानामपि यदुदभूश्शैलतनया
तदेतत्संसारप्रणयनमहानाटकमुखम् ॥ ३
ब्रुवन्त्येके तत्त्वं भगवति सदन्ये विदुरसत्
परे मातः प्राहुस्तव सदसदन्ये सुकवयः ।
परे नैतत्सर्वं समभिदधते देवि सुधियः
तदेतत्त्वन्मायाविलसितमशेषं ननु शिवे ॥ ४
लुठद्गुञ्जाहारस्तनभरनमन्मध्यलतिकां
उदञ्चद्घर्माम्भःकणगुणित*वक्त्राम्बुजरुचम् ।
शिवं पार्थत्राणप्रवणमृगयाकारगुणितं
शिवामन्वग्यान्तीं शरणमहमन्वेमि शबरीम् ॥ ५
मिथःकेशाकेशिप्रथननिधनास्तर्कघटना
बहुश्रद्धाभक्तिप्रणतिविषयाश्शास्त्रविधयः ।
प्रसीद प्रत्यक्षीभव गिरिसुते देहि शरणं
निरालम्बं चेतः परिलुठति पारिप्लवमिदम् ॥ ६
शुनां वा वह्नेर्वा खगपरिषदो वा यदशनं
कदा केन क्वेति क्वचिदपि न कश्चित्कलयति ।

*नीलोत्पलरुचिम् इति पाठान्तरम्.

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



अमुष्मिन् विश्वासं विजहिहि ममाहाय वपुषि
प्रपद्येथाःश्वेतत्सकलजननीमेव शरणम् ॥ ७
तडित्कोटिज्योतिर्द्युतिदलितषड्ग्रन्थिगहनं
प्रविष्टं स्वाधारं पुनरपि सुधावृष्टिवपुषा ।
किमप्यष्टात्रिंशत्किरणसकलीभूतमनिशं
भजे धाम श्यामं कुचभरनतं बर्बरकचम् ॥ ८
चतुष्पत्रान्तष्षड्दलपुटभगान्तस्त्रिवलय-
स्फुरद्विद्युद्वह्निद्युमणिनियुताभद्युतिलते ।
षडश्रं भित्त्वाऽऽदौ दशदलमथ द्वादशदलं
कलाश्रं च द्व्यश्रं गतवति नमस्ते गिरिसुते ॥ ९
कुलं केचित्प्राहुर्वपुरकुलमन्ये तव बुधाः
परे तत्सम्भेदं समभिदधते कौलमपरे ।
चतुर्णामप्येषामुपरि किमपि प्राहुरपरे
महामाये तत्त्वं तव कथममी निश्चिनुमहे ॥ १०
षडम्भारण्यानीं प्रलयरविकोटिप्रतिरुचा
रुचा भस्मीकृत्य स्वपदकमलप्रह्वशिरसाम् ।
वितन्वनश्शैवं किमपि वपुरिन्दीवररुचिः
कुचाभ्यामानम्रस्तव पुरुषकारो विजयते ॥ ११
प्रकाशानन्दाभ्यामविदितचरीं मध्यपदवीं
प्रविश्यैतद्द्वन्द्वं रविशशिसमाख्यं कबलयन् ।
प्रपद्योर्ध्वे नादं लयदहनभस्मीकृतकुलः
प्रसादात्ते जन्तुश्शिवमकुलमम्ब प्रविशति ॥ १२
मनुष्यास्तिर्यञ्चो मरुत इति लोकत्रयमिदं
भवाम्भोधौ मग्नं त्रिगुणलहरीकोटिलुठितम् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



कटाक्षश्चेद्यत्र क्वचन तव मातः करुणया
शरीरी सद्योऽयं व्रजति परमानन्दतनुताम् ॥ १३
प्रियङ्गुश्यामाङ्गीमरुणतरवासःकिसलयां
समुन्मीलन्मुक्ताफलवहलनपथ्यसुभगाम् ।
स्तनद्वन्द्वस्फारस्तबकनमितां कल्पलतिकां
सकृद्ध्यायन्तस्त्वां दधति शिवचिन्तामणिपदम् ॥ १४
षडाधारावर्तैरपरिमितमन्त्रोर्मिपटलैः
लसन्मुद्राफेनैर्बहुविधचलद्दैवतझषैः ।
क्रमस्रोतोभिस्त्वं वहसि परनादामृतनदी
भवानि प्रत्यग्रा शिवचिदमृताब्धिप्रणयिनी ॥ १५
महीपाथोवह्निश्वसनवियदात्मेन्दुरविभिः
वपुर्भिर्ग्रस्ताशैरपि तव कियानम्ब महिमा ।
अमून्यालोक्यन्ते भगवति न कुत्राप्यणुतमां
अवस्थां प्राप्तानि त्वयि तु परमव्योमवपुषि ॥ १६
कलामाज्ञां प्रज्ञां समयमनुभूतिं समरसं
गुरुं पारम्पर्यं विनयमुपदेशं शिवपदम् ।
प्रमाणं निर्वाणं प्रकृतिमभिभूतिं परगुहां
विधिं विद्यामाहुस्सकलजननीमेव मुनयः ॥ १७
प्रलीने शब्दौघे तदनु विरते बिन्दुविभवे
ततस्तत्त्वे चाष्टध्वनिभिरनपायिन्यधिगते ।
श्रिते शाक्ते पर्वण्यनुकलितचिन्मात्रगहनां
स्वसंवित्तिं योगी रसयति शिवाख्यां भगवतीम् ॥ १८
परानन्दाकारां निरवधिशिवैश्वर्यवपुषं
निराकारां ज्ञानप्रकृतिमपरिच्छिन्नकरुणाम् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



सवित्रीं लोकानां निरतिशयधामास्पदपदां
भवो वा मोक्षो वा भवतु भवतीमेव भजताम् ।। १९
जगत्काये कृत्वा तदपि हृदये तच्च पुरुषे
पुमांसं बिन्दुस्थं तदपि वियदाख्ये च गहने ।
तदेतज्ज्ञानाख्ये तदपि परमानन्दगहने
महाव्योमाकारे त्वदनुभवशीलो विजयते ।। २०
विधे वेद्ये विद्ये विविधसमये वेदगुलिके
विचित्रे विश्वाद्ये विनयसुलभे वेदजननि ।
शिवज्ञे शूलस्थे शिवपदवदान्ये शिवनिधे
शिवे मातर्मह्यं त्वयि वितर भक्तिं निरुपमाम् ।। २१
विधेर्मुण्डं हृत्वा यदकुरुत पात्रं करतले
हरिं शूलप्रोतं यदगमयदंसाभरणताम् ।
अलंचक्रे कण्ठं यदपि गरलेनाम्ब गिरिशः
शिवस्थायाश्शक्तेस्तदिदमखिलं ते विलसितम् ।। २२
विरिञ्चयाख्या मातस्सृजसि हरिसंज्ञा त्वमवसि
त्रिलोकीं रुद्राख्या हरसि विदधासीश्वरदशाम् ।
भवन्ती नादाख्या विहरसि च पाशौघदलनी
त्वमेवैकाऽनेका भवसि कृतिभेदैर्गिरिसुते ।। २३
मुनीनां चेतोभिः प्रमृदितकषायैरपि मनाक्
अशक्यं संस्प्रष्टुं चकितचकितैरम्ब सततम् ।
श्रुतीनां मूर्धानः प्रकृतिकठिनाः कोमलतरे
कथं ते विन्दन्ते पदकिसलये पार्वति पदम् ।। २४
तडिद्वल्लीं नित्यामृतसरितं पाररहितां
मलोत्तीर्णां ज्योत्स्नां प्रकृतिमगुणग्रन्थिगहनाम् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



गिरां दूरां विद्यामविनतकुचां विश्वजननीं
अपर्यन्तां लक्ष्मीमभिदधति सन्तो भगवतीम् ॥ २५

शरीरं क्षित्यम्भःप्रभृतिरचितं केवलमचित्
सुखं दुःखं चायं कलयति पुमांश्चेतन इति ।
स्फुटं जानानोऽपि प्रभवति न देही रहयितुं
शरीराहङ्कारं तव समयबाह्यो गिरिसुते ॥ २६

पिता माता भ्राता सुहृदनुचरस्सद्म गृहिणी
वपुः क्षेत्रं मित्रं धनमपि यदा मां विजहति ।
तदा मे भिन्दाना सपदि भयमोहान्धतमसं
महाज्योत्स्ने मातर्भव करुणया सन्निधिकरी ॥ २७

सुता दक्षस्यादौ किल सकलमातस्त्वमुदभूः
सदोषं तं हित्वा तदनु गिरिराजस्य दुहिता ।
अनाद्यन्ता शम्भोरपृथगपि शक्तिर्भगवती
विवाहाज्जायाऽसीत्यहह चरितं वेत्ति तव कः ॥ २८

कणास्त्वद्दीप्तीनां रविशशिकृशानुप्रभृतयः
परं ब्रह्म क्षुद्रं तव नियतमानन्दकणिका ।
शिवादि क्षित्यन्तं त्रिवलयतनोस्सर्वमुदरे
तवास्ते भक्तस्य स्फुरसि हृदि चित्रं भगवति ॥ २९

पुरः पश्चादन्तर्बहिरपरिमेयं परिमितं
परं स्थूलं सूक्ष्मं सकलमकलं गुह्यमगुहम् ।
दवीयो नेदीयस्सदसदिति विश्वं भगवती
सदा पश्यन्त्याख्यां वहसि भुवनक्षोभजननीम् ॥ ३०

प्रविश्य त्वन्मार्गं सहजदयया देशिकदृशा
षडध्वध्वान्तौघच्छिदुरगणनातीतकरुणाम् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



परामाज्ञाकारां सपदि शिवयन्तीं शिवतनुं
स्वमात्मानं धन्याश्चिरमुपलभन्ते भगवतीम् ॥ ३१
मयूखाः पूष्णीव ज्वलन इव तद्दीप्तिकणिकाः
पयोधौ कल्लोलाः प्रतिहतमहिम्नीव पृषतः ।
उदेत्योदेत्याम्ब त्वयि सह निजैस्सात्त्विकगुणैः
भजन्ते तत्त्वौघाः प्रशममनुकल्पं परवशाः ॥ ३२
विधुर्विष्णुर्ब्रह्मा प्रकृतिरणुरात्मा दिनकरः
स्वभावो जैनेन्द्रस्सुगतमुनिराकाशमलिनः ।
शिवश्शक्तिश्चेति श्रुतिविषयतां तामुपगतां
विकल्पैरेभिस्त्वामभिदधति सन्तो भगवतीम् ॥ ३३
शिवस्त्वं शक्तिस्त्वं त्वमसि समया त्वं समयिनी
त्वमात्मा त्वं दीक्षा त्वमयमणिमादिर्गुणगणः ।
अविद्या त्वं विद्या त्वमसि निखिलं त्वं किमपरं
पृथक्तत्त्वं त्वत्तो भगवति न वीक्षामह इमे ॥ ३४
त्वयासौ जानीते रचयति भवत्यैव सततं
त्वयैवेच्छत्यम्ब त्वमसि निखिला यस्य तनवः ।
जगत्साम्यं शम्भोर्वहसि परमव्योमवपुषः
तथाप्यर्धं भूत्वा विहरसि शिवस्येति किमिदम् ॥ ३५
असङ्ख्यैः प्राचीनैर्जननि जननैः कर्मविलयात्
सकृज्जन्मन्यन्ते गुरुवपुषमासाद्य गिरिशम् ।
अवाप्याज्ञां शैवीं शिवतनुमपि त्वां विदितवान्
नयेयं त्वत्पूजास्तुतिविरचनेनैव दिवसान् ॥ ३६
यत्षट्पत्रं कमलमुदितं तस्य या कर्णिकाख्या
योनिस्तस्याः प्रथितमुदरे यत्तदोङ्कारपीठम् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri



तस्याप्यन्तः कुचभरनतां कुण्डलीति प्रसिद्धां
श्यामाकारां सकलजननीं सन्ततं भावयामि ॥ ३७

भुवि पयसि कृशानौ मारुते खे शशाङ्के
सवितरि यजमानेऽप्यष्टधा शक्तिरेका ।
वहसि कुचभराभ्यां याऽवनम्रापि विश्वं
सकलजननि सा त्वं पाहि मामित्यवाच्यम् ॥ ३८

इति पञ्चस्तव्यां सकलजननीस्तवः पञ्चमः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0.In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal